श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी

- आचार्य गौर कृष्ण शास्त्री

श्रीगोपालभट्टगोस्वामी

●

लेखक
आचार्य डा. गौरकृष्ण गोस्वामी शास्त्री, काव्य पुराण दर्शनतीर्थ
(सेवानिर्वृत राजपत्रित-चिकित्साधिकारी)

●

अभिनव चैतन्य आयुर्वेदिक औषधालय
श्रीराधारमणपरिसर
श्रीवृन्दावन
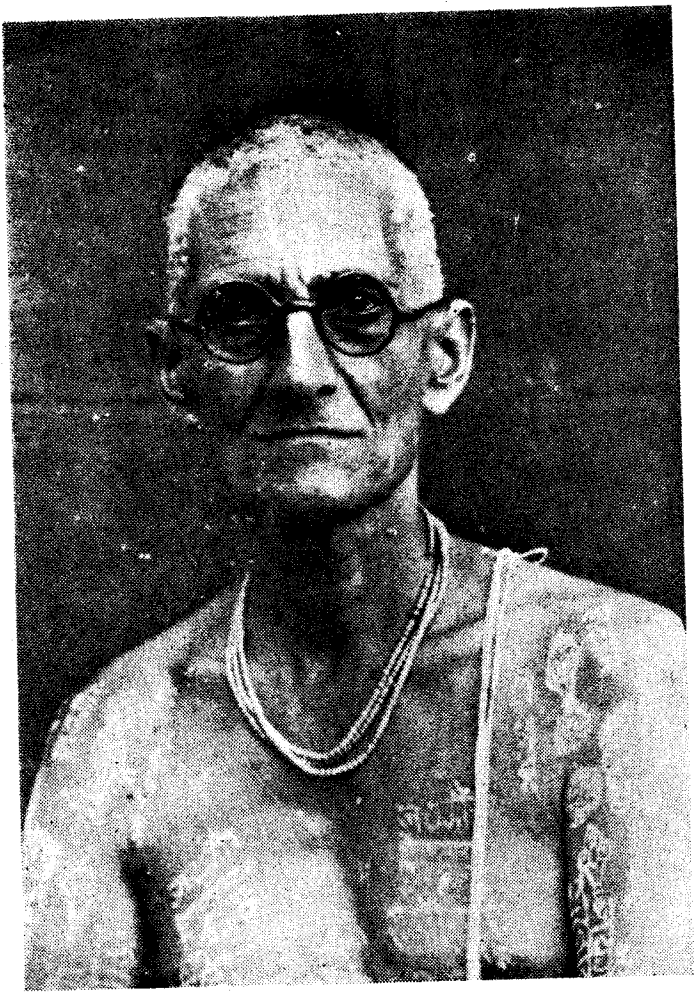
नित्य नवनिभृत-निकुञ्जगत श्रीमन्माध्वगौड़ेश्वर-सम्प्रदायाचार्यवर्य श्रीदामोदराचार्य गोस्वामी, वैष्णव शास्त्री के कोमल कर कमलों में-
आविर्भाव-कार्तिक कृष्णा चतुर्थी २०४३ वै० तिरोभाव-
श्रावण शुक्ला त्रयोदशी २०२८ वै०

आपके सत्य दर्शन का नित्य निर्दिष्ट निर्देशन।
किया अविलम्ब आलम्बन उसीका पद प्रदर्शन है॥
न कुछ है ज्ञान गुण गरिमा प्रखर पाण्डित्य की प्रतिमा।
भवत्पदपद्मयुग सम्बल सुगम साधन अनुक्षण है॥
सुकृति कृति संस्कृति स्वर्णिम सुमन सरसिज सहज सुरभित।
स्तवक-स्तव सार सम्वलयित पितः! सादर समर्पित है॥

—गौरकृष्ण

श्रीगौर-वन्दना

शुक्लाम्वरधरं देवं शुक्लगन्धानुलेपनम् ।
शुक्लरूपधरोपेतं तं श्रीविष्णुं नमाम्यहम् ।।१।।

दिव्यद् दूर्वादलश्यामं राजीवायतलोचनम् ।
लोकाभिरामं श्रीरामं धनुर्वाणधरं भजे ।।२।।

अमन्दानन्दमन्दारमिन्दिरोन्मदमन्दिरम् ।
वंशीन्यस्तकरद्वन्दं वन्दे तं नन्दनन्दनम् ।।३।।

श्रीराधाभावसम्पृक्तं राधाभावप्रसारकम् ।
राधाकृष्णयुगाभिन्नं गौरचन्द्रमुपास्महे ।।४।।

गङ्गाकूलकलानन्दं श्रीधरफलभक्षकम् ।
श्रीवासाङ्गणनृत्यन्तं गौरसुन्दरमाश्रये ।।५।।

वन्दे तं कृष्णचैतन्यं विष्णुखट्वाधिरुढकम् ।
नित्यानन्दान्विताद्वैतविग्रहं षड्भुजं प्रभुम् ।।६।।

जगन्माधवत्रातारं रघुनन्दनसौख्यदम् ।
केशवार्यजयम्वन्दे काजीप्रेमप्रदं परम् ।।७।।

नवीननीरदश्यामं पीताम्वरधरं वरम् ।
गोपालभट्टसंसेव्यं राधिकारमणं श्रये ।।८।।

यः जपेत् प्रयतः स्तोत्रं मानवः शुद्ध चेतसा ।
पापास्तस्य विलीयन्ते चान्ते गौरपदं लभेत ।।

—श्रीदामोदराचार्य गोस्वामी

अक्षयनवमी २००९ वैक्रमीय

ग्रन्थ प्रकाशन के अन्यतम धन्यवादार्ह सहयोगी—

आचार्य श्रीभूति गोस्वामी, वृन्दावन

श्रीसन्त के. पी. रामानुजदास, राधाकुण्ड

श्रीसाँवलदास भालोटिया, दिल्ली

श्रीगौराङ्ग परिवार, वाराणसी

श्रीप्रेमनाथ अग्रवाल, कलकत्ता

अन्येचापि महाभागाः सहायाः ग्रन्थनिर्मित्तौ ।
तेऽन्येचान्ये प्रसीदन्तु नामतः न स्मृता इह ॥

मर्यादापरिधिः विधिःस्वरभृतां पापात्मनां पारिधिः
आधिव्याधिविषौषधिप्रतिनिधिः सिद्धान्तसारावधिः ।
सौन्दर्यस्मितशेवधिः विधिहराराध्यः सतां सन्निधिः
श्रीचैतन्यदयानिधिः विजयते लावण्यलीलाम्बुधिः ॥

—गौरकृष्णः

विषयानुक्रमणिका

प्रागवृत्त—

परिशिष्ट—

वंशवृक्ष—

प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, षष्ठ एवं सप्तम सरणियों (थामों) का।

चित्रसंग्रह–सूची— ।

गोविन्द जय जय गोपाल जय जय।
राधारमण हरि गोविन्द जय जय॥

भूमिका—

यह विषय अब विद्वत्समाज में प्रतिष्ठित हो चुका है कि वृन्दावन और उसकी रसोपासना का मध्यकाल में प्रथम प्रखर उन्मेष महाप्रभु चैतन्य द्वारा हुआ। राधाभाव की प्राणप्रतिष्ठा, मादनाख्य महाभाव का विमर्श तथा श्रीराधा विग्रह की उपासना चैतन्य या माध्वगौड़ेश्वर सम्प्रदाय की अपूर्व देन है। चैतन्यदेव द्वारा प्रेरित, शक्ति-निपातित श्रीभूगर्भ, लोकनाथ, मधुपण्डित, रूप, सनातन, प्रबोधानन्द-सरस्वती तथा श्रीगोपालभट्ट ने अपनी सान्द्र रसनिष्ठा से वृन्दावन, व्रजभूमि को पुनरुज्जीवित किया। शैल्पिक, साहित्यिक, अभिलेखीय प्रमाणों से यह तथ्य अब उजागर हो चुके हैं कि धर्मदेश की इस चिन्मय धरा पर रसयुग का अभिनव सूत्रपात, व्रज-वृन्दावन की वास्तविक संस्कृति, मानव की सर्वोत्तम रस संस्कृति का उत्कर्ष इस सम्प्रदाय के आभोग में हुआ था।

श्रीकृष्णभक्ति सम्प्रदाय ही नहीं श्रीरामभक्ति उपासना पद्धति भी चैतन्य-रस संस्कृति धारा से प्रभावित हुई है। इस रस संस्कृति का विकास और विस्तार देश के विभिन्न भागों में तो हुआ ही विदेशों तक में हुआ। चैतन्य सम्प्रदाय के आन्दोलन का यह दुर्धर्ष महोज्वल रसावेग विश्व को व्याप्त करने और रसोन्मत्त करने के उपक्रम में है।

सम्प्रदाय प्रवर्त्तक श्रीमन्महाप्रभु चैतन्यदेव ने प्रेमवारि की जो अविच्छिन्न सुवर्षा की उससे मानव रसार्द्र हुआ प्रेम की अपार तरलता, द्रवता और सङ्गीत मधुरिमा उनमें आकण्ठ भरी थी और उनमें राधाभाव का चरम प्रकाश था। उनकी इस प्रेमरस कथा ने सहृदय साधकों को आकण्ठ मग्न कर दिया। प्रेमरस का ऐसा महाकर्ष उनके द्वारा स्फुरित हुआ कि मानव चेतना अनुभूति का अनुभव करने लगी, साहित्य मधुरिमा से और कलायें लालित्य से परिमण्डित होगईं। आचरण के महनीय सभ्यता की पुनर्प्रतिष्ठा हुई और वह भी नये भक्ति विज्ञान के आयाम में।

इस सम्प्रदाय में प्रकाण्ड पाण्डित्यपूर्ण शास्त्र संरचना के साथ उसका अनुसारी तथा मौलिक भक्ति साहित्य विनिर्मित हुआ। विशाल ग्रन्थराशि के निर्माण से

भक्तिरस की साङ्गोपाङ्ग प्रतिष्ठा हुई। मानव मन के पार्थिव तत्त्व को इतना परिष्कृत, प्राञ्जलित और रस सुपुञ्जित किया गया कि उसकी महोज्वल सुन्दरता एवं वैशिष्टता की ओर अगणित सहृदय चित्त प्रवृत्त होकर निविड मायान्धकार और दुर्दान्त चाक्यचिक्य से निर्वृत्त हो गये। विरक्ति की विस्तृत वसुन्धरा पर अनन्य अनुरक्ति प्रवृत्ति का उद्भुत महाप्रासाद कलात्मक चरमता में उपस्थित हुआ।

इस सम्प्रदाय के साधकों ने एक अभेदात्मक दृष्टि से भारतीय भूमि के प्रत्येक क्षेत्र को रसाप्लावित किया जिसके द्वारा राष्ट्रचिति का विलक्षण शृङ्गार हुआ।

चैतन्य सम्प्रदाय के प्रमुख प्रसारक आचार्यों में श्रीपादनित्यानन्द, अद्वैताचार्य, पण्डित गदाधर, स्वरूपदामोदर, श्रीनिवास तथा नरोत्तम ठाकुर थे जिन्होंने चैतन्य मत का प्रचार-प्रसार उनके अनुयायियों की अटूट श्रद्धा, प्रबल भक्ति भावना, प्रकाण्ड पाण्डित्य, विनयशीलता, सहृदयता, उत्कट वैराग्य एवं तितिक्षा द्वारा ही सम्भव हुआ।

दुर्दान्त विदेशी आक्रमणकारियों और अधर्मीय संस्कृति के प्रसरित प्रचन्डाघातों से देश की मूलभूत महान् संस्कृति सम्पदा विनष्ट होती जा रही थी समग्र भारतभूमि अन्तः संघर्षों से विचूर्णित और क्रूर वाह्याक्रायों से विमर्दित हो आर्त्त चीत्कार कर रही थी। नैराश्य की सघन शून्य कालिमा अन्तःकरणों पर आच्छन्न थी। पीड़ित मानव और मानवता के महाप्रभु चैतन्य अश्रुतपूर्व त्राणकर्ता बने। उनके कृपापात्र वैष्णवाचार्यों और परिकर पार्षदों ने चैतन्य दृष्टि को सुनियोजित रूप से प्रस्तुत किया। एक सर्वथा नवीन साधन-पद्धति-सृष्ट साहित्य और संस्कृति सरणि का माङ्गलिक अभिषेक सम्पन्न हुआ। दुष्ट राजनीति की यक्ष संस्कृति को सुष्टु रस की रक्ष संस्कृति की ढाल पर लिया गया। यह थी वास्तविक उद्‌बुद्ध वैष्णवचेतना।

वृन्दावन के षट् गोस्वामी श्रीरूप, सनातन, गोपालभट्ट, रघुनाथदास, रघुनाथभट्ट, जीव और उनके आनुगत्य में अनन्यव्रती रसारूढ महामानव वैष्णवगण अन्तर्हित सम्पूर्ण भक्ति भावना से जनकल्याण के लिये कटिबद्ध हुये। ये महामानव केवल रसद्रष्टा ही नहीं भविष्यद्रष्टा भी थे। उनके मन, प्राण जीव कल्याण भावना से व्यथित तथा परिचालित थे, अहिंसक रस-विभावित-संस्कृति की मानव कल्पना कर नहीं सकता। इसकी सिद्धि विशुद्ध वैष्णवता से ही होती है और इस वैष्णवता को सर्वसम्पन्न करनेका कार्य किया गौरसुन्दर महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्य और उनके अनुगत महानुभावों ने। कितने-कितने वैभव-सम्पन्न उच्चतम पदों पर आसीन प्रकाण्ड-प्रतिभा और दुर्धर्ष विद्याधुरीण व्यक्ति राष्ट्रचिति की चिन्तना कर विरक्त हो इस

महारस साधना में अनुरक्त हुये । श्रीरूप गोस्वामी गौडाधिपति हुसेनशाह के प्रधान-मन्त्री दवीर खास और श्रीसनातन गोस्वामी वित्त-मन्त्री साकर-मल्लिक, ये दाक्षिणात्य धनाढ्य ब्राह्मणवंश में उत्पन्न हुये थे । इनके पीछे सम्पन्नता की परम्परायें थीं, स्वयं प्रखर दार्शनिक, प्रकाण्ड विद्वान् और अनेक भाषाविद् थे । श्रीरघुनाथदास एक धनिक कायस्थकुलोद्भव जमीदार के पुत्र थे । उससमय सात लाख मुद्रा राजस्व देते थे, श्रीरघुनाथभट्ट प्रकाण्ड रसवेत्ता और भागवत के प्रख्यात वक्ता थे । ऐसे ही वैष्णव शास्त्रों के वरिष्ठ विद्वान् श्रीरङ्गनाथ के प्रधान अर्चक परिवाररीय वेङ्कटभट्ट के पुत्र थे श्रीगोपालभट्ट । सारस्वत-समाज के सर्वोच्च श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती इन्हीं के पितृव्य थे । जिन्हें अपनी दक्षिण यात्रा में श्रीमन्महाप्रभु चैतन्यदेव ने पात्रसात् किया था ।

श्रीगोपालभट्ट वृन्दावन के षड् गोस्वामियों में अन्यतम थे इन्होंने श्रीवृन्दावन की चिन्मय रसभूमि में अर्द्ध शताब्दी से अधिक निवास कर वैष्णवाचार का विश्व-कोश—भगवद्भक्तिविलास श्रीचैतन्यदेव के उपदिष्ट सूत्रों को उपबृंहित रूप में प्रस्तुत करते हुये गुम्फित किया । यह स्मृति ग्रन्थ चैतन्य सम्प्रदाय ही नहीं अन्य वैष्णव सम्प्रदायों के आचार पक्ष का नितान्त नियामक बना । कहने का तात्पर्य यह है कि वैसे तो चैतन्य सम्प्रदाय में अनेक सर्जक, प्रचारक, प्रसारक हुये किन्तु इन षड् गोस्वामियों का वर्चस्व अप्रतिम है और इनमें भी सेवा, उपासना, आराधना तथा मधुर रस-साधना तथा सङ्गठनात्मक पक्ष की दृष्टि से श्रीराधारमण प्राकट्यकर्त्ता युगद्रष्टा श्रीगोपालभट्ट का सदा श्लाघनीय स्थान रहा है ।

श्रीवृन्दावन में माध्वगौड़ेश्वर सम्प्रदाय के सात देवालयों का प्राचीन उल्लेख है । ये देवालय अपने शैली, शिल्प-स्थापत्य के कारण ही नहीं अपितु अपने अनुषंग में निष्पन्न महान् प्रतिमाओं के कारण भी व्रज-वृन्दावन में महनीय रहे हैं । वृन्दावन में सर्वप्रथम श्रीसनातन गोस्वामी ने श्रीमदनमोहनजी, श्रीमधु पण्डित ने श्रीगोपीनाथजी श्रीगोपालभट्ट ने श्रीराधारमणजी, श्रीलोकनाथ ने श्रीराधाविनोदीलालजी, श्रीहरिराम व्यास ने श्रीयुगलकिशोरजी, श्रीजीव गोस्वामी ने श्रीराधादामोदरजी तथा परवर्त्ती काल में श्रीश्यामानन्द ने श्रीश्यामसुन्दर का मन्दिर विनिर्मित कराया ।

वृन्दावन धाम है, श्रीवन है, श्रीराधा और श्रीकृष्ण यहाँ के एकमात्र आराध्य हैं । यहाँ श्रीराधा, कृष्ण, रासरसिक और रासरासेश्वरी अनन्त ललित लीलाओं में रसावेष्टित रहते हैं । यह सम्पूर्ण भारत का धर्म केन्द्र है, मानव के मानवत्व और उसके अन्तः आरोहित रसाक्रान्त और अन्तः प्रसारित धरती की नाभि है । विश्व-मानव की उच्चतम सभ्यता और महानतम संस्कृति का श्रीधाम वृन्दावन केन्द्र विन्दु

है। मन्दिर अर्थात् देवालय स्वधर्म, स्वदेश, स्वराष्ट्र, स्वराज्य आदि की सुरक्षा के सुदृढ दुर्ग रहे हैं, हमारे समाज और हमारी संस्कृति की रक्षा परम्परा रही है। ये ललित कलाओं, स्थापत्य, मूर्त्ति, नृत्य-सङ्गीत, चित्र आदि विद्याओं के पोषक, सम्बर्द्धक शास्वत संस्थान हैं। ये हैं जन जन की संस्थायें, आचरण की पवित्रता और दैहिक मानसिक तथा सर्वोपरि आध्यात्मिक सुन्दरता, लालित्य, रसनियसिकारी प्राणसम्मोहनकारी महासागर हैं। ये देवागार निज के निजस्व की मधुरिमा के विद्युत्गृह और आनन्द के ऊर्जा सञ्चालक केन्द्र के साथ राष्ट्रीय एकता के आधारभूत स्थान रहे हैं। यह वह दिव्य स्थली है जहाँ देश विदेशों के अगणित भावप्रवीण मानव गोपी, सखा, सहचरी, मञ्जरी भाव में अपने अन्तश्चिन्तित वपु का सन्दर्शन कर लीला राज्य में विचरण करते हुये आनन्द रसार्णव में सौन्दर्य सार का आस्वादन करते हैं। यह वह दिव्यभूमि है जहाँ भारतीय धर्म साधना के अन्यतम आचार्य अपनी क्षेत्रीयता और भाषा को ठुकरा कर प्रेम की भाषा और प्रेमक्षत्र में आकर समरस हुये हैं। भिन्न-भिन्न भंगिमायों में दृष्टिभेद किन्तु भगवत्विग्रह सेवा में अभेद। शील, सौख्य, पवित्रता और आचरण की सभ्यता का संस्कार देने वाले अध्यात्म पुरुष का प्रदेय जीवन विधायक होता है।

ध्यातव्य है कि श्रीमन्महाप्रभु चैतन्यदेव ने श्रीलोकनाथ, भूगर्भ, काशीश्वर, रूप, सनातन, प्रबोधानन्द, गोपालभट्ट को जिस उद्देश्य से वृन्दावन भेजा था उनमें यह भी था कि वृन्दावन के विलुप्त तीर्थों का समुद्धार, वैष्णव ग्रन्थों का प्रणयन और वैष्णवाचार की प्राण-प्रतिष्ठा। यही हुआ, वृन्दावन इन विरक्त वैष्णव-वेशाश्रित शोधकर्त्ताओं का कार्यक्षेत्र बना।

यह कितना गवेषणात्मक महत्त्वपूर्ण विषय है कि आधुनिक युग में जर्मन के पुरातत्त्वविद् प्रोफेसर हर्टले के सहयोग से मथुरा के 'सोंख-खेड़े' की खुदाई वर्त्तमान विधि विधाओं और साधन सुविधाओं से कराई गई। देशकी प्रचुर पुरासम्पदा प्रकाश में आई, इतिहास अनावृत हुआ। इन सम्पन्न वीतरागी कन्था करङ्कधारी चैतन्य के ऐकान्तिक अनुगतजनों के समीप कोई सुविधा न थी वृन्दावन वन्य पशु एवं दुर्दान्त-जनों से आक्रान्त था विधर्मियों की ताण्डवविभीषिका के साथ प्रतिपद आक्रमण की सम्भावनायें भी सामने थी किन्तु प्रेरणा थी परात्पर पुरुष श्रीचैतन्य की और उनकी उन पर अविचल विश्वास और ऐकान्तिक निष्ठा थी। उन्होंने मुगल शासन की शासकीय सत्ता स्थली के परिपार्श्व में सतत प्रयास और अथक परिश्रम से असम्भव को सम्भव कर दिखाया। कैसा उत्कट महासङ्कल्प और अध्यवसाय था? प्राचीन-काल से ही राजनीति, राष्ट्रनीति, धर्म, समाज और अर्थनीतियों को देवायतनोंके माध्यम से अपने आचार्यों के निपुण नेतृत्व में सञ्चालित किये जाने का विधान था।

देश के स्वाधीनता संग्राम, मानवमुक्ति और विश्वबन्धुत्त्व के ये मन्दिर 'आनन्दमठ' बने थे। संजीवनी संस्कृति के स्थान पर विभंजनी विकृति ने हमें घेर लिया। ये देवालय राष्ट्रीय समन्वय के साक्षात् प्रतीक प्राण केन्द्र हैं। बंगाल का वैष्णव भूल जाता है कि यह श्रीकृष्ण लीला भूमि उसकी अपनी धरती से भिन्न है। उसको श्रीराधारमण विग्रह में राधाभाव-मिलिततनु श्रीगौरसुन्दर के दर्शन होते हैं। दक्षिण से आये श्रीसम्प्रदायानुयायी भक्त को श्रीरंगनाथ के स्वरूप का साक्षात्कार होता है और यहाँ ही महाकवि तुलसी उनमें अपने धनुर्धारी श्रीराम का दर्शन प्राप्त कर नतमस्तक हो उठते हैं।

इन्हीं मन्दिरों की सत्प्रेरणा पर लोकनाट्य, रासलीलानुकरण और ध्रुपद, धमार का हृदयहारी कल गायन हुआ था। महान् मुगल सम्राट् अकबर को इन्हीं आचार्यों ने आकृष्ट कर 'सुलहकुल' के सूत्र दिये थे। देश के विभिन्न भागों के महाराजा, राजा, राव, रावल, भूस्वामी, धनाढ्य और जन साधारण के सहयोग से विना किसी जाति, वर्ण, वर्ग, भाषा, प्रान्तगत भेद के उन्हें संभारने सजाने में योगदान के लिये आह्वानित किया था।

इन मन्दिरों और आचार्यों का इतिहासमात्र वृन्दावन का इतिहास नहीं है। ये हमारे जातिय जीवन का राष्ट्र जीवन में निहित अक्षुण्ण आध्यात्मिक संचेतना का भी इतिहास है। जिसप्रकार भारतवर्ष समन्वयात्मक विश्व शान्ति का केन्द्र माना जाता है उसीप्रकार वृन्दावन विश्व-वन्धुत्व सौन्दर्य का शास्वत केन्द्र है।

श्रीराधारमण विग्रह प्राकट्यकर्त्ता और श्रीमन्महाप्रभु चैतन्यदेव के अन्यतम अनन्यनिष्ठ पार्षद श्रीगोपालभट्टगोस्वामी की शिष्य परम्परा में श्रीदामोदरदासगोस्वामी वंशोद्भूत डाक्टर श्रीगौरकृष्ण गोस्वामी ने प्रस्तुत ग्रन्थ को प्रणीत कर सम्प्रदायगत सत्यनिष्ठ सेवा की है वह स्तुत्य और सराहनीय है।

उन्होंने देश की रस-संस्कृति के क्रमवद्ध इतिहास लेखन के लिये भी अनालोचित सामिग्री प्रस्तुत की है। इस कृति में वैष्णवाचार के पुरोधा श्रीगोपालभट्ट के जीवन और व्यक्तित्त्व, कृतित्त्व और काव्य सौष्ठव का भी अनुसन्धानपूर्वक विवेचनात्मक परिचय दिया गया है। व्रज-संस्कृति के प्रदेय की अच्छी चर्चा भी इस कृति में उपलब्ध हुई है।

श्रीगोपालभट्ट के पितृव्य-प्राध्यापक एवं भगवदवतार श्रीचैतन्यदेव के परम प्रिय पार्षद श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती को मायावादी प्रकाशानन्द सरस्वती से अभिन्न मानते हुये उनका नीलाचल में प्रभु का सान्निध्य प्राप्त करना सम्वन्धित अनेक ठोस अन्त:साक्ष्य दिये हैं।

प्रबोधानन्द के नामस्वरूप रहस्य पर लेखक ने विचारपूर्वक अपनी मान्यता के साथ सुकृतिजनवन्द्य श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती की कृतिततियां में यत्र तत्र सर्वत्र

प्रस्फुटित श्रीराधिका के समुज्वल सान्द्र सर्वोत्कृष्ट सुधा सौन्दर्य स्वरूप की भी पाण्डित्यपूर्ण परिवर्णना की है।

लेखक ने सरस्वतीपाद के विवदमान ग्रन्थ रचनात्मक पक्ष को इस कृति में पूर्णतः प्रस्तुत नहीं किया है, यह उनकी वैष्णवाचार सहिष्णुता ही मानी जायगी। इस सम्बन्ध में मेरी अपरिवर्त्तनीय मान्यतायें हैं जिन्हें मैं 'चैतन्य सम्प्रदाय, सिद्धान्त और साहित्य' में परिव्यक्त कर चुका हूं।

श्रीगोपीनाथदास गोस्वामी, दामोदरदास गोस्वामी, श्रीनिवासाचार्य तथा परवर्त्तीकाल के परिकर, नाद और विन्दु परम्पराओं के आचार्य तथा सृजनधर्माओं का रसाकृष्ट विवरण दिया गया है। यह विवरण व्रज साहित्य तथा संस्कृति के अनुसन्धाताओं के लिये पूर्ण उपयोगी और अध्ययन के लिये नवीन क्षेत्र खोलता है।

ध्यातव्य है कि भक्तिमती गोस्वामिनी प्रमदापक्ष के योगदान के उल्लेख का प्रायः अभाव रहा है किन्तु विद्वान् लेखक ने अपने अनुसन्धान तथा उदार दृष्टि से उस पक्ष का प्रथमवार संक्षिप्त इतिहास विवृत्त कर एक महत्त्वपूर्ण कदम उठाया है।

श्रीराधारमणीय गोस्वामियों के इतिवृत्तों से विदित होता है कि वे चैतन्य-दृष्टि सम्पन्न नैष्टिक सदाचारी आराधक तो थे ही समाज निर्माता तथा स्वराष्ट्रोद्धारक भी थे। देश के नव निर्माण और मानव सभ्यता के रचनात्मक विकास में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका थी। संक्षेप में ही सही पर एक धारावाहिक चित्रावलि हमारे दृष्टि पथ में मुखर होकर आती है।

इन गोस्वामीगणों के आनुगत्य और प्रदीक्षित परम्परा में शताधिक प्रतिभायें उभरी जिन्होंने देश विदेश में व्रज-संस्कृति का उन्मेष किया। आधुनिक हिन्दी भाषा और साहित्य के युग निर्माता भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र तक श्रीराधारमणजी के अनन्य उपासक और इसी वंशोद्भव श्रीराधाचरण गोस्वामी के अन्यतम सहचर थे।

इसीप्रकार लखनऊ के नवाव वाजिद अली शाह के मित्र और उच्च पदाधिकारी श्रीशाह कुन्दनलाल (ललितकिशोरी) तथा श्रीफुन्दनलाल (ललितमाधुरी) ने अपना सर्वस्व त्यागकर श्रीवृन्दावन आ इन्हीं श्रीराधारमणीय गोस्वामियों के आनुगत्य में 'लघुरसकलिका', 'अभिलाषमाधुरी' जैसे भक्ति भावनाभरित महाग्रन्थ हिन्दी जगत् को दिये। लोकनाट्य, रासलीलानुकरण का सम्पोषण किया 'ललित-निकुञ्ज' नामक श्वेतप्रस्तरीय विशाल मन्दिर निर्माण कर अनन्यनिष्ठ भावना से स्वेष्ट श्रीराधारमण की उपासना की।

भक्तमाल टीकाकार श्रीप्रियादासजी के गुरु श्रीमनोहरदास वङ्ग-प्रान्तीय थे और श्रीगोपालभट्ट परिकर परम्पराश्रित हो विरक्त वेश में श्रीवृन्दावन आकर श्रीराधारमण मन्दिर के भण्डारी बने। 'श्रीराधारमणरससागर' जैसे सशक्त व्रज-काव्य का निर्माण भी किया। सृजनधर्माओं को श्रीराधारमणीय गोस्वामीगण वेहद

पोषण देते थे सुकवि गोपाल के एक अप्रकाशित हस्तलिखित ग्रन्थ में वर्णित श्रीगोपीलालगोस्वामीजी के प्रसंग से इस तथ्य का प्रमाण मिलता है—

पालये विपुल जीव जन को करत जैसें,
करोगे हमारो तो मैं उर में अभिलाषूंगो।
पास रहि रावरी पुनीत मजलिस बीच,
नाना भाँति कवित पुनीत कह भाषूंगो।
और ग्रन्थ परम पुरातन 'गुपाल' कहैं,
मरजी के मूजिम प्रकासि भ्रम नाषूंगो।
अलङ्कार नायिका अनेक भेद काव्यन के,
सुनाई महाराज को प्रसन्न नित राषूंगो॥

श्रीगोपालभट्ट-प्रवर्त्तित विशुद्ध वैष्णव विधि विधान और सदाचार संहिता विधान की माध्वगौडेश्वर सम्प्रदाय में एक अक्षुण्ण परम्परा रही है। इस परिवार की ही सर्वतः मान्य सेवा परिपाटी और उपासना, आराधना पद्धति का विश्व भर के चैतन्यमन्दिर, देवालय अनुगमन करते हैं। श्रीराधारमणीय गोस्वामीगण केवल अर्चक और उपासक ही नहीं थे वे उदार दृष्टि सम्पन्न सच्चे प्रगतिशील प्रगति भावापन्न जन भी थे।

श्रीडाक्टर गोस्वामीजी ने अपने इस ग्रन्थ में इन सम्पूर्ण सूत्रों का समुज्वल सङ्कलन किया है। आज से पौने दोसौ वर्ष पूर्व वृन्दावन के सुप्रसिद्ध रससिद्ध कवि श्रीगोपाल कविराय ने श्रीराधारमणीय गोस्वामियों के विषय में दो छन्द निवेदित किये हैं वे इस ग्रन्थ के तथ्यों की पूर्णतः पुष्टि करते हैं—

सोभामान सरस सजीले सीलवन्त सब,
सुन्दर सुघर सेत सागर समन के।
ओप आंन उपकारी अतिही अनाथन के,
उमदे उदार अनुमांनी आगमन के।
गुन-गन-गार गुनी गाहक 'गुपाल' कहैं,
श्रीभट्ट-गोपाल वंश गौरव भवन के।
रिझवार रोचक रसीले रतिवन्त रूप,-
राशि श्रीगुसाईं राजें राधिकारमन के॥

दीन दुख दवन दया के दीन बारिद के,
दन्डी दान दैवे को दलेल दीरघन के।
पूरन प्रतापी पापी परस परेते पाय,
पावे पद परम प्रतापी तेज तन के।

भनत 'गुपाल' भरे भागवत भगति भार,
भायप भरोसौं भारी भारी भारी मन के।
रिझवार रोचक रसीले रतिवन्त रूप-,
राशि श्रीगुसाईं राजें राधिकारमन के।।

श्रीराधारमण मन्दिर का इतिहास, सेवा प्रणाली, रसोपासना तथा अनेक दुर्लभ अभिलेखों और सूचनाओं से यह ग्रन्थ सुन्दर और उपादेय बन पड़ा है। श्रीमन्दिर के संगठनात्मक पक्ष को प्रथमवार अगोपन किया गया है। इसके अनुशीलन से स्पष्ट होता है कि मन्दिर व्यवस्था में गोस्वामियों की दृष्टि कितनी पारदर्शी और आचरण प्रधान है। इन विधि निषेधों तथा प्रतिज्ञापत्रों, निर्णयों में श्रीराधारमण विग्रह की निर्वाध अविचल निःस्वार्थ उपासना ही लक्ष्य रहा है। यही कारण है कि माध्व-गौडेश्वर श्रीचैतन्यसम्प्रदायस्थ समस्त वृन्दावन के मन्दिरों में भोगराग-श्रृंगार की दृष्टि से श्रीराधारमण मन्दिर अपना अनुपम आदर्श प्रस्तुत कर सका है।

इस ग्रंथ का परिवेशण रचनात्मक दृष्टि और ललित शैली से सम्पन्न किया गया है। अनेक प्रसङ्ग तथा स्थल लेखक के हृद्य-वैशद्य के परिचायक हैं। लेखक के कवि हृदय को उसके रसार्द्र गद्य से अनुक्षण पता लगता है विचित्र भाव तथा तर्कना का 'मणि-काञ्चन' योग इसके एक सर्गात्मक ग्रंथ में आद्यन्त लक्षित किया जा सकता है। लेखक का साधक मन कहीं-कहीं ऐसा रसोच्छ्वलित हुआ है कि वह सहृदयों को रसावेष्टित किये बिना नहीं रह सकता। शब्द संयोजन और वाक्य योजना में हृदय का विस्तार और तर्कनाओं में लालित्य का उपन्यास होता चला आया है। लेखक के स्वनिर्मित संस्कृत तथा भाषा छन्द आलङ्कारिक, हृदयहारी तथा प्रभविष्णु हैं। 'श्रीगोकुलेश्वराष्टक' हो अथवा 'प्रार्थना' एवं 'प्रभु-प्रसाद' हो अथवा 'वृन्दावन धामानुरागावलि' की शैली शिल्प के अनुसारी यत्र तत्र अनुस्यूत स्वनिर्मित छन्द, श्रीगोस्वामीजी का कवि प्रणम्य है।

सम्प्रदायभुक्त होते हुये भी लेखक अन्धभक्तिता से बचा है, यह स्पष्ट दृष्टि का परिचायक है जो वर्त्तमानयुगीन आवश्यकता का अंग है।

'श्रीगोपालभट्टगोस्वामी' नाम्नी यह सुन्दर कृति अपने परमोपयोगी परिशिष्टों से प्रत्येक प्रकार पाठकों के लिये अतिशय उपयोगी बन गई है।

उपास्य तथा उपासकों का ऐसा अन्तरंग परिचय वृन्दावनीय अन्य मन्दिरों के इतिहास लेखन की दिशा में एक ठोस कदम है।

यदि वृन्दावन तथा व्रज क्षेत्र के मन्दिरों का इसप्रकार इतिहास लेखन किया जाय तो बहुत उपयोगी कार्य हो सकता है। इस कार्य में बड़े जीवट, धैर्य और

निपुणता की आवश्यकता है। इस दिशा में ऐसे अनुष्ठान की जितनी प्रशंसा की जाय कम है।

मेरा विश्वास है कि उन अध्यात्म साधकों और सत्साहित्य, संस्कृति अन्वेषक सन्नायकों के लिये इस महत्त्वशाली ग्रन्थ का अनुशीलन हृदयाकर्षक तथा उपादेय होगा।

लेखक की अनेक स्थापनाओं और मान्यताओं से सुधी पाठकों को विप्रतिपत्ति हो सकती है, मैं इसे लेखक की सफलता ही मानता हूं कि वह पाठकों के चित्त में एक नवीन विचारधारा का सञ्चरण कर सकें हैं।

श्रीमन्महाप्रभु चैतन्यदेव की पञ्चशती शृङ्खलायोजनान्तर्गत उन्हीं के अन्यतम शिष्य श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी का सरस तथ्यगर्भ जीवनवृत्त का अपने ही साधन सम्बल पर प्रकाशन सर्वथा स्तुत्य तथा अभिवन्दनीय है।

आदरणीय डाक्टर श्रीगौरकृष्ण गोस्वामी को मान्य मनीषियों द्वारा अवश्य समादृत किया जायगा ऐसी हमारी धारणा है।

इस प्रसङ्ग में यह कहना अनभीष्ट न होगा कि इसके आगामी संस्करणों में गोस्वामीगण तथा प्रदीक्षित परम्परा के अवशिष्ट शिष्ट जीवनवृत्तों तथा उनके कृतित्व का और अधिक अनुसन्धान करते हुये सविस्तृत विवरण प्रस्तुत किया जायगा, साथ ही श्रीराधारमणजी के समस्त उत्सव, सांझी, फूल बङ्गला आदि कलायों के आलेख तथा विस्तृत विवरणों से भी इसे सुसज्जित किया जायगा।

मैं अन्त में पुनः श्रीडाक्टर गोस्वामीजी की इस सर्वाङ्गीण सुन्दर कृति की शतशः सराहना करता हुआ श्रीराधारमणदेव के श्रीचरणों में श्रीगोस्वामीजी की दीर्घायुष्य की कामना करता हूं कि वे ऐसे अन्यान्य सारगर्भित ग्रन्थ रचना द्वारा सम्प्रदाय की सतत सेवा करते रहें।

'वैष्णवखण्ड'
रासस्थली-परिसर
श्रीधाम वृन्दावन
दिनांक १५ जनवरी १९८५

डाक्टर नरेशचन्द्र बंसल
अध्यक्ष—हिन्दी स्नातकोत्तर अध्ययन एवं संशोधन कार्य
के० ए० पोस्ट ग्रेजुएट कालिज
कासगंज

संशोध्य—पृष्ठ २-३ अगणित, क्रान्तायों, विमर्दित, परिवारीय

॥ श्रीराधारमणोजयति ॥

✻ श्रीगौरकृष्णश्शरणम् ✻

नम्र निवेदन—

प्रस्तुत ग्रन्थ रचना का समारम्भ मन की सुषुप्त भावना का अविस्फुटित वीजांश है जो बिना किसी सिञ्चन सुविधा के हृदयान्तराल में संस्थित हो पल्लविता की प्रतीक्षा कर रहा था। इसी वितर्कना में जीवन के वे क्षण मन को विभ्रमित कर न जाने कब विलीन हो गये ? मैं मुग्धसा मरुस्थली की मृगमरीचिका को बैठा हुआ देखता रहा।

मेरे सामने अनन्त विक्लवित वालुका कण बिना विप्रतिपत्ति के बीजांश की विनष्ट भावना से बढ़े चले आरहे थे। सहसा निराशा के प्रकाशशून्य आकाश में एक प्रभा रेखा अपने अभिन्न आशाभ्र के साथ अन्धकारविलीन वीजांश को बाहर कर वारिविन्दु से विरुढ करने के लिये आगे आती हुई दिखाई दी।

मेरी भावना पल्लविता का रूप लेने जारही है यह देख मैं पुलकित हो उठा मैंने विवेचना की—

इस रससिद्ध व्रज-वसुन्धरा के विकास में सर्वप्रथम श्रीमन्महाप्रभु चैतन्यदेव एवं तदनुगत जनों का बहुत बड़ा अवदान रहा है। वर्त्तमान में इसकी जो वैभवता दृष्टिगोचर हो रही है उसमें भी इनकी सराहनीय साधनायें रही हैं।

इसकी निर्वैर, शान्त, भूमि में श्रीराधामाधव की ललित लावण्य लीलावलोकन के लिये लाखों भागवत जनों ने सर्वस्व त्याग कर बिना किसी सम्प्रदायगत भावना के वैष्णव वेसभ्यता के रूप में जीवन के अन्तिम क्षण बिताये थे। उनका ही समाश्रय सम्प्राप्त कर सहस्रों जन विषम विश्वजनीन विभीषिका से बचकर विशुद्ध व्रजरस माधुरी का आस्वादन कर रहे थे। वास्तव में वे ज्योतिर्मय प्रकाशपुञ्ज अपनी पारस्परिक उदात्त प्रेम-भावना, निरभिमानता के कारण धन्य और वन्दनीय थे।

आज उसी वृन्दावन की वैभवता विकृतता की ओर बढ़ती चली जारही है, इसके चारों ओर एक चाकचिक्य का पर्यावरण निरन्तर अग्रसर हो रहा है, साथ ही एक ऐसा 'अहमहिमका' भाव का भी उदय हो रहा है जो इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों पर कालिमा बिखेरने में प्रमुख भूमिका का साधन बनता जा रहा है।
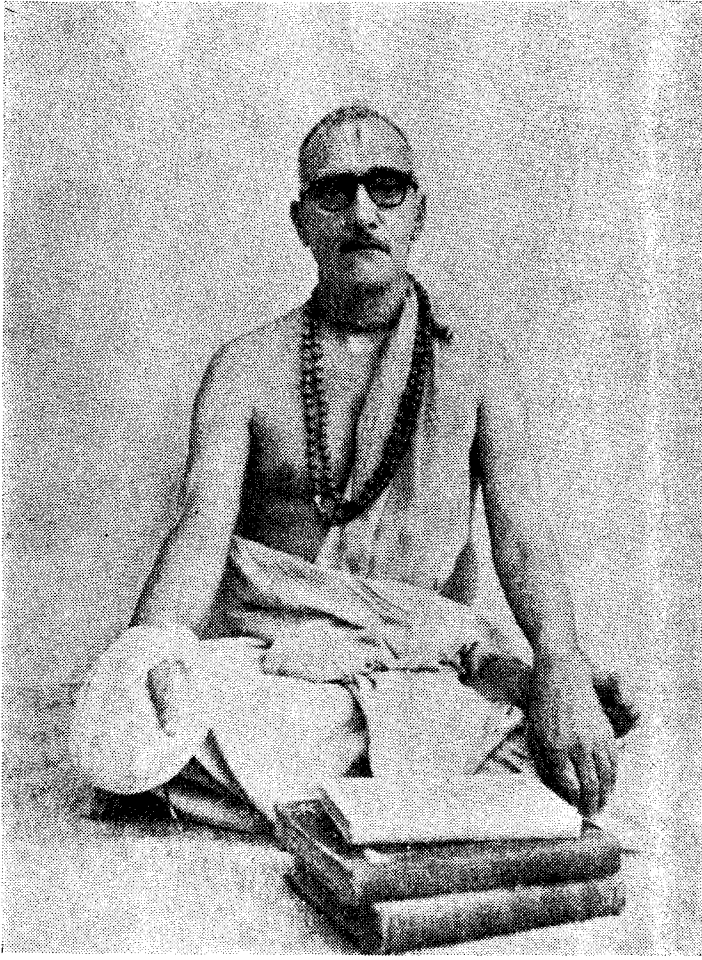
श्रीमन्मध्वमतानुयायिभगवच्चैतन्यचन्द्रानुगः,
श्रीराधारमणाङ्घ्रिपद्मयुगलध्यानैकतानोन्नतः ।
विद्वद्वृन्दवदान्यवंशविलसद्विद्याविलासोज्वलः,
आयुर्वेदविदाम्वरः विजयते श्रीगौरकृष्णः कविः ॥
सहस्रछात्रागमशिक्षणाद्यः प्रलब्धवान् ज्ञानगुरोः महत्त्वम् ।
सुहृज्जनानां सुखदः सुजीयादनन्तश्रीभूषित गौरकृष्णः ॥

निवेदक—श्रीमन्माध्वगौडेश्वरसम्प्रदायाचार्यवर्य–
नीलमणिगोस्वामी, पुराणशिरोमणि

इस दुरवस्थितिमें प्रस्तुत उपक्रम उन प्राचीन युगद्रष्टा श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी के चरित्र चित्रण से सम्बन्धित है जिन्होंने विश्व वैष्णवों को स्मृतिस्वरूप दिव्य आलोक प्रदान किया था।

वे वृन्दावन के विख्यात षड् गोस्वामियों में वन्दनीय विद्वान्, नैष्ठिकजीवी, विरक्त सन्त थे जिनके प्रोज्वल प्रेम के वशीभूत हो भगवान् को श्री शालग्राम से स्वयं प्रकटित प्रथम व्रजनिधि 'श्रीराधारमण' विग्रह रूप में अवतीर्ण होना पड़ा। इसी वितर्कना में यह उपक्रम दो वर्षों की अन्तराल सीमा उल्लंघन कर परिकल्पना से अधिक आकार प्राकार के रूप में बढ़ता चला गया। क्यों बढ़ा? किसने बढ़ाया? यह वे ही हृत्प्रेरक श्रीराधारमण जानते हैं। क्या कभी एक वासनाबद्ध जीव बिना उनकी अनुकम्पा के कुछ कर पाया है?

इस सन्दर्भ में मेरे सामने कई ज्वलन्त ऐतिहासिक प्रश्न थे जिनका शोधात्मक दृष्टि से समाधान आवश्यक था किन्तु मैंने उनकी सर्वथा उपेक्षा की है। मैं इस रस-सिद्ध भूमि की दुहाई देकर विवदमान विषम बीज निक्षिप्त करना नहीं चाहता, व्यर्थ की आलोचना मुझे अभीष्ट नहीं इसीको दृष्टिकोण में रखकर मैंने इस प्रस्तुति को सर्वजन-समादृत स्वरूप देने की चेष्टा की है।

मुझे आशा ही नहीं प्रत्युत पूर्ण विश्वास है कि समय और पृथ्वी की विस्तृत परिधि में आने वाली पीढियां अवश्य ही इसको कृतिगत कसौटी पर कस कर कुछ न कुछ तो निर्णय लेंगे।

इसके पूर्व कितने ही सुकृति जनों ने 'श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी' सम्बन्धित चरित्र सुमनों का सुगुम्फन किया है उसकी तुलना में यह उपक्रम सर्वथा नगण्य है किन्तु मैंने—

'सन्तों की उच्छिष्ट उक्ति है मेरी वाणी'

का समाश्रयण कर उन्हींके कृपा प्रसार आधार पर उन्हींके भावों से अपनेको विभावित कर रहा हूँ। यद्यपि मेरी ज्ञानशून्यता के कारण स्थान-स्थान पर अनेक शाब्दिक, आक्षरिक, भाषा शैथिल्यजन्य त्रुटियां असम्भाव्य नहीं है तथापि मैंने इसे 'गुण-गीतिका' के रूप में लिया है। मैं इस विषय में पूर्ण आश्वस्त हूँ कि जिस प्रकार पवित्र सरिज्जल से अभिसिञ्चित भगवच्चरणोदक सर्वथा शिरोग्राह्य होता है उसी-प्रकार विस्वाद कूपजल से अभिसिञ्चित भगवच्चरणोदक भी महज्जनों द्वारा शिरो-ग्राह्य होता है।

इसी आधार पर मेरा उन सुधीजनों से साग्रह निवेदन है कि मेरी अशेष विशेष त्रुटियों पर ध्यान न दे अपनी सानुकम्प दृष्टि से मुझे अनुग्रहीत करेंगे ऐसी आशा है।

मैं श्रीडाक्टर नरेशचन्द्र वंसल एम.ए.पी.एच.डी, जिन्होंने अपनी वैदुषी विवेचना द्वारा अनेक सारवाही तथ्यों का समुद्धारन कर साहित्यिक सुधी समूह को सातिशय आनन्दित किया है की अप्रतिम अनुकम्पा के प्रति आभारी हूँ।

मैं ग्रन्थ लेखन के प्रारम्भिक प्रेरक श्रीनीलमणि गोस्वामी तथा श्रीकृष्णचन्द्र गोस्वामी तथा सामयिक संलेखन एवं सत्परामर्श के सबल सूत्रधार सर्वश्री विश्वम्भर गोस्वामी, जगदीशलाल गोस्वामी, राधाविनोद गोस्वामी, अद्वैतचरण गोस्वामी, अनुज कृष्णकुमार, ललिताचरण गोस्वामी, रामदास शास्त्री, श्यामलाल हकीम तथा आयुष्मान् चैतन्य, जयनिवास, श्रीवत्स, अनुभूति गोस्वामी, गोपालचन्द्र शाह, शाह हिरण्यगर्भ आदि अनेक साहित्यिक सुविज्ञजनों के सतत सहयोग, सम्प्रदान के लिये आन्तरिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

मैं उन सम्माननीय स्नातकों, साहित्यालोचकों, सन्दर्भ सम्प्रकाशकों जिनका इस ग्रंथ विलेखन में समावेश किया गया है के प्रति भी साभार विनम्र हूँ साथ ही ग्रंथ मुद्रणा सम्बन्धित अर्थ साहाय्यकारी जनों के प्रति भी आभारी हूँ।

मैं अपने पुत्रकल्प अनिल गोस्वामी को श्रीचैतन्य भावनिष्ठ जन के रूप में उभर कर आ रहे हैं तथा डाक्टर अशोक गोस्वामी को भी उनकी प्रस्तुत प्रकाशना, समायोजना तथा सहयोगिता के प्रति भी आशीर्वाद देता हुआ उनसे आशा कर रहा हूँ कि वे भविष्य में इसीप्रकार वैष्णव साहित्य प्रकाशन सेवा में सहयोग देते रहेंगे।

अन्त में मैं सर्वान्तिर्यामी सच्चिदानन्दघन श्यामल श्रीराधारमणदेव के श्रीचरणारविन्द द्वन्द में सश्रद्ध प्रणिपात करता हुआ उनके अविरत आशीर्वाद की अपेक्षा कर रहा हूँ।

निवेदक :
गौरकृष्ण गोस्वामी, शास्त्री

अभिनव चैतन्य आयुर्वेदिक
औषधालय
श्रीराधारमण मन्दिर, वृन्दावन

श्रीचैतन्याविर्भाव पञ्चशती शृङ्खलान्तर्गत प्रकाशन, १९४१-१९४२ वैक्रमीय

श्रीगोपालभट्टगोस्वामी

श्रीगोपालभट्टगोस्वामी के पूर्वजों का आदि स्थान दक्षिणदेशस्थ पुण्यसलिला कावेरी नदी के किनारे श्रीरङ्गम् के समीप "वेलंगुडी" ग्राम था। श्रीगोपालभट्ट के पिता श्रीवैङ्कटभट्ट अपने अग्रज त्रिमल्ल और अनुज प्रबुद्ध के साथ सम्मिलित परिवार के रूप में रहते थे। श्रीवैङ्कटभट्ट दाक्षिणात्य द्रविड़ ब्राह्मण एवं श्रीरामानुज सम्प्रदाय के "वडगल" शाखाश्रित होने के कारण विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के अनुयायी थे।

प्राचीन परम्परा के अनुसार भट्ट परिवार श्रीरङ्गनाथ का प्रधान अर्चक परिवार था। श्रीरङ्ग एवं गोदा की ऐश्वर्याभिव्यंजक भावार्चनाओं ने उनके विशुद्ध हृदयों में भक्ति का अजस्र स्रोत भर दिया था। उनका प्रत्येक क्षण भगवदाराधन और अर्चन में व्यतीत होता था। इतना होने पर भी वैङ्कटभट्ट वेदान्तदर्शन के विशिष्ट विद्वान् थे। पुराण, स्मृति, सांख्य और योगदर्शन में उनकी अप्रतिहत गति थी। बड़े से बड़े दार्शनिक और आचार्य दर्शन की गहनतम ग्रन्थियों को सुलझाने के लिये प्रायः इनके चरणाश्रित होते थे। तत्कालीन प्रसिद्ध दार्शनिक श्रीअध्वरीन्द्र श्रीवैङ्कटभट्ट के प्रधानतम शिष्यों में से थे जिन्होंने श्रीवैङ्कटभट्ट उपदिष्ट सिद्धान्त तत्वों का सामञ्जस्य पूर्ण सङ्कलन *"वेदान्त परिभाषा" नामक तात्त्विक ग्रन्थ प्रणयन के रूप में किया था। उस समय वैङ्कटभट्ट की वैदुषी से दक्षिण का कोना

---

*श्रीमद्वैङ्कटनाथाख्यान् वेलंगुडिनिवासिनः।
जगद्गुरूनहं वन्दे सर्वतन्त्रप्रवर्त्तकान्॥

कोना प्रभावित था। संदिग्ध स्थलों की शङ्काओं का निरसन और सर्वथानुकूल विवेचन जितना उससमय वैङ्कटभट्ट कर सकते थे उतना और कोई नहीं।

स्मृति, पुराण की सहज भावात्मक विशद वर्णना में वैङ्कटभट्ट शीर्ष-स्थानीय थे। प्रतिपल श्रीलक्ष्मीनारायण की परिपूर्ण कृपा का प्रवर्षण भट्ट परिवार पर था।

वैङ्कटभट्ट के अग्रज त्रिमल्ल एवं अनुज प्रबुद्ध भी अपने भाई के समान षड्दर्शनों में निष्णात थे। इन्होंने एकनैष्ठिक बाल-ब्रह्मचारी के रूप में समाज की सांस्कृतिक समुन्नति के लिये अपने सम्पूर्ण जीवन का समुत्सर्ग कर दिया था। तीनों भाई एक समष्टि परिवार के रूप में प्रेम से रहते हुए भगवदाराधन में दिन व्यतीत कर रहे थे।

वैङ्कटभट्ट की स्त्री सदम्बा एक सत्यनिष्ठा, सरला, सुशीला स्नेह-मयी साध्वी रमणी थी। स्थिति स्वच्छल न होने पर भी वे श्रीरङ्गमन्दिर के प्राप्त प्रसादमात्र से अपने परिवार का यथावत् निर्वाह कर लेती थीं। अर्थ के लिये इस भट्ट दम्पति को कभी भी व्यर्थ चिन्तित होते हुए नहीं देखा गया।

एकदिन अर्द्ध निशा बीतने के बाद वैङ्कटभट्ट स्वप्न में यह देखते हैं कि एक ज्योतिर्मय महामानव उनके हृदय में प्रवेश करता हुआ उनकी स्त्री के हृत्कमल में प्रविष्ट हो रहा है। वैङ्कटभट्ट की निद्रा टूट गई। वे आश्चर्य-चकित हो इस अद्भुत दृश्य को बार बार स्मरण कर भाव विभोर हो उठे। उसीदिन से उनकी स्त्री की दशा में विशेष परिवर्त्तन दिखाई देने लगा। धीरे धीरे उनकी देदीप्यमान ज्योतिरश्मियों से सम्पूर्ण भवन प्रभासित हो उठा। दयनीय आर्थिक स्थिति भी दिन पर दिन सुधरती दिखाई देने लगी। अन्ततः १५५७ वै० की माघ कृष्णा तृतीया का वह मङ्गलमय वासर आ पहुँचा जब उस मध्याह्न वेला में जिसके निर्मल जल पानमात्र से सांसरिक जीवों के हृदय में विशुद्ध वासुदेव की अनुरागमयी भक्ति का संचरण होता है उस कावेरी के कलित कमनीय कूल पर स्थित "वेलंगुडी" ग्राम के एक सामान्य कक्ष में हमारे चरितनायक श्रीगोपालभट्टगोस्वामी का आवि-र्भाव हुआ। परिवार की प्रसन्नता का पारावार न रहा। एक अद्भुत ज्योतिर्मय बालक का दर्शन कर सम्पूर्ण ग्रामवासी जन आश्चर्य चकित हो उठे।

इस बालक का अद्वितीय रूप लावण्य जो देखता वह वरवस विमुग्ध हो जाता था। शरीर शुद्ध चम्पक के समान गौर, मुख कमल पर दो उत्फुल्ल

वारिज विलोचन, सुन्दर नासाग्रभाव, ग्रीवा की वलयित भङ्गिमा, आजानु-बाहु विशाल वक्षस्थल, ललित ललाम अरुण चरण, सबों की शोभा ही निराली थी। जिस प्रकार सौन्दर्यमयी चित्ताकर्षणीय देह ज्योति प्रभा थी उसी प्रकार वाणी भी मधुर और मन मोहक थी। बालक ज्यों ज्यों बड़ा होने लगा त्यों त्यों अपनी बाल-सुलभ ललित लीलाओं से परिवार और ग्राम-वासियों का स्नेह भाजन होता गया।

सदा से ही बाल्यावस्था के संस्कार अमिट होते हैं। वह छोटा सा बालक जब घर के एक कोने में बैठ श्रीभगवान् की मिट्टी की मूर्त्ति बनाकर उसका अर्चन करता हुआ प्रेममग्न हो भगवन्नाम कीर्तन करता था तब सारा ग्राम आश्चर्यचकित हो अपना अपनत्व भुला बैठता था।

उनकी भगवन्नाम—सङ्कीर्तनता पर आँसुओं की अजस्र धारा बहने लगती थी और वे प्रेमपयोधि के प्रबल प्रवाह में डूबते, उछलते, थिरकते दिखाई देते थे।

पाँच वर्ष का बालक अपनी वय: सीमा को लाँघता हुआ आगे बढ़ने लगा। वेङ्कटभट्ट ने बालक की शिक्षा का भार अपने अनुज प्रबुद्ध को सौंपा। प्रबुद्ध की श्रेष्ठतम शिक्षा शैली ने बालक की शिक्षा में एक अन्यतम अनन्यता उत्पन्न करदी। बालक की स्मरणशक्ति का यहाँ तक विकास हुआ कि नवीन शत शत श्लोकपरम्परा स्मृतिपथ में रखी जाने लगी।

आठवें वर्ष का आरम्भ था। प्रबुद्ध का वह अदीक्षित छात्र आज मुण्डित-मस्तक, पीतवस्त्र, मौञ्जी मेखला को धारण कर यज्ञोपवीत संस्कार के लिये सामने खड़ा है। सामने विशाल वोलंगुडीग्रामस्थ ब्राह्मणमण्डली वेदों का सस्वर उच्चारण कर रही है। नारियों की मधुर मन्द मञ्जीर ध्वनि से सारा प्राङ्गण मुखरित होरहा है।

१५६४ वै० की माघ शुक्ला पञ्चमी के प्रात: कालीन रविरश्मियों के साये में वेङ्कटभट्ट के इस बालक को उनके पितृव्य और अध्यापक श्रीप्रबुद्ध ने सावित्री मन्त्र के दिव्य उपदेश के साथ साथ यज्ञोपवीत सूत्र प्रदान किया। ग्रामवासियों ने बालक को यथासाध्य भिक्षा दे अपने भाग्यों को सराहा।

यज्ञोपवीत-संस्कार के उपरान्त बालक की शिक्षा धीरे धीरे बढ़ने लगी। उसकी कुशाग्र बुद्धि ने पण्डितवर्ग को चमत्कृत कर दिया। न्याय, व्याकरण, दर्शन अलङ्कार आदि सभी शास्त्रों में अप्रतिहत गति एवं बुद्धि की विलक्षणता ने और भी चार चाँद लगा दिये।

बालक को सुशिक्षित कर एक दिन अनायास प्रबुद्ध का मन संसार से विरक्त हो उठा। शाङ्कर वेदान्त के ही द्वारा जीव का कल्याण है यह समझकर १५६६ वै० की विराम वेला में संसार का समस्त माया-बन्धन त्याग प्रबुद्ध वैदान्तिक नगरी काशी की ओर प्रस्थानित हुए। प्रात: देखा गया कि प्रबुद्ध अपने स्थान पर ही नहीं हैं। खोज की गई, लोग दौड़ाये गये पर प्रबुद्ध का पता न चला। इधर प्रबुद्ध सार्वभौमभट्टाचार्य से जगन्नाथ धाम में मिलते हुए काशी आ पहुंचे एवं वहां अद्वैतवाद में दीक्षित होकर प्रबुद्ध "प्रकाशानन्द सरस्वती" नाम से विख्यात हुए और विशाल अद्वैत मठ के आचार्य के रूप में छात्रों को शाङ्कर वेदान्त का उपदेश देने लगे।

अपने पितृव्य और अन्यतम अध्यापक के इस अतर्कित पलायन से बालक गोपाल का मन विषादमय बन चला। त्रिमल्ल से बालक की यह दशा न देखी गई। उन्होंने श्रीलक्ष्मीनारायण की अर्चना का भार वेङ्कटभट्ट पर छोड़कर अपना सम्पूर्ण स्नेह बालक पर उड़ेलते हुए अध्ययन-परम्परा को आगे बढ़ाया। बालक पढ़ने और बढ़ने लगा।

*इधर अपनी चौबीसवर्षीय अवस्था के शेष भाग में श्रीचैतन्यदेव १५६६ वै० की माघ शुक्लपक्षीय मकरसंक्रान्ति के दिन नवद्वीप के निकट कटवा में श्रीकेशवभारती से सन्यस्त धारण कर सीधे श्रीजगन्नाथधाम की ओर चल पड़े और वहाँ पहुंच कर सर्वप्रथम उन्होंने अपने अस्तित्व को श्रीजगन्नाथदेव के पाद-पद्मों में समर्पित कर दिया। नित्य त्रिकाल समुद्र-स्नान, गरुड़ स्तम्भ के समीप स्थित होकर श्रीजगन्नाथदेव के दर्शन एवं मन्दिर के प्राङ्गण में उद्दाम सङ्कीर्तन के साथ एक वर्ष तक प्रभु ने पुरी क्षेत्र में निवास किया। श्रीजगन्नाथदेव के वार्षिक उत्सवों को बड़ी भाव विह्वलता के साथ देखने पश्चात् दूसरे वर्ष फाल्गुन में दोलयात्रा एवं चैत्र में श्रीसार्वभौम का समुद्धार कर श्रीमन्महाप्रभु १५६८ वैक्रमीय के वैशाख मास में दक्षिण यात्रा के लिये प्रस्थित हुए।

तत्कालीन प्रवासयात्रा अत्यन्त कष्टमयी थी। भारत के आये दिन होने वाले राज्य-विप्लवों ने देश में अराजकता की भावना उत्पन्न कर दी

---

*चव्वीस वत्सर शेषे जेई माघ मास।
तार शुक्लपक्षे प्रभु करिल संन्यास॥
चै० च० १।१०

थी। जन जीवन में एक असुरक्षा की स्थिति घर करने लगी। अवस्था यहाँ तक बिगड़ चुकी थी कि सुरक्षा के अभाव में कोई भी व्यक्ति एक ग्राम से दूसरे ग्राम तक नहीं जा सकता था किन्तु इसके विपरीत भारत का यह सर्व-प्रथम सन्यस्त अवतार था जिसने मार्गगत सम्भावित सङ्कटों की सर्वथा उपेक्षा कर कलिहत जीवों के समुद्धार के लिये केवल एक सहायक श्रीकृष्ण-दास ब्राह्मण के साथ सुदूर दक्षिण देश की यात्रा की। प्रायः सदैव से दक्षिण भारत के आचार्य उत्तर भारत में आते रहते थे किन्तु उत्तर भारत का यह अतिमर्त्य महामानव अवतार भगवान् श्रीचैतन्य था जिसने दक्षिण-देशस्थ हरिनाम विमुख जीवों के उद्धारार्थ पहल की। दक्षिण यात्रा पथ में कितने ही जीव जन्तु जिनकी जिह्वा पर भूल कर भी कभी श्रीकृष्ण नाम नहीं आता था, उनके मुख से अविराम श्रीकृष्ण श्रीकृष्ण कहलवाकर उन्हें श्रीकृष्ण प्रेम रस सागर में डुबाना और उछालना श्रीचैतन्य का ही काम था। मनुष्यों की तो बात ही क्या ? उन्होंने अपने मधुर भगवन्नाम गान से पहाड़ों तक में स्पन्दन कर दिया। पशु पक्षियों से भी नैसर्गिक वैर भाव छुड़ा कर श्रीकृष्ण श्रीकृष्ण कहलवाया, वन विटप वल्लरियों को भी, जिसने कृष्ण-नाम गान से झूम झूम कर नचाया। चलते चलते पतितपावन श्री चैतन्य कुम्भकोणम् के सन्निकट पापनाशन क्षेत्र में विष्णु के विशाल विग्रह का दर्शन कर आषाढ़ मास के अन्तिम सप्ताह पूर्व श्रीरङ्गम् पहुँचे। कावेरी के पवित्रतम स्रोत में स्नान कर प्रभु श्रीरङ्गनाथ के दर्शनार्थ मन्दिर प्राङ्गण में उपस्थित हुये। श्रीरङ्गनाथ की अपूर्व रूप माधुरी का निरीक्षण कर प्रभु भाव विभोर हो उठे। नेत्रों से अविरल अजस्र अश्रु धारा प्रवाहित होने लगी। प्रभु ने श्रीरङ्गनाथ के सम्मुख उच्च स्वर से—

"राम ! राघव ! राम ! राघव ! राम ! राघव ! रक्ष माम् !
कृष्ण ! केशव ! कृष्ण ! केशव ! कृष्ण ! केशव ! पाहि माम् !"

भगवन्नाम सङ्कीर्तन प्रारम्भ कर दिया। प्रभु की मधुर नाम सङ्कीर्तन स्वर लहरी से दर्शनार्थियों के चित्त विमोहित होने लगे। वे सब चकित हो लज्जा सङ्कोच त्याग कर एक स्वर लय ताल के साथ श्रीकृष्ण कृष्ण कह कर झूमने और नाचने लगे। देखते देखते सहस्रों भक्तगणों से मन्दिर का वह विशालतम प्राङ्गण भर गया। समीप ही श्रीरङ्गनाथ के अर्चक त्रिमल्ल और वेङ्कटभट्ट खड़े हो इस ज्योतिर्मय, आजानुबाहु, कनकावदात गौर नव सन्यासी के श्रीमुख से श्रीकृष्ण नाम ध्वनि को सुनकर प्रेम में विह्वल हो बार बार उच्च स्वर से श्रीकृष्ण कृष्ण कहने लगे। यद्यपि वेङ्कटभट्ट की

पारिवारिक उपासना ऐश्वर्यपरक थी। वे लक्ष्मीनारायण के अनन्य उपासक थे, माधुर्यमयी उपासना प्रणाली का तनिक भी समावेश उनके हृदय में न था। सदा नारायण का स्मरण ही उनका एकमात्र साधन था, भूलकर भी उनके मुख से कभी श्रीकृष्ण नाम नहीं निकलता था, पर आज प्रभु की ही कृपा का यह अन्यतम फल था जो वेङ्कटभट्ट और उनका सारा परिवार श्रीकृष्ण नाम गान कर नाच रहा और रो रहा है।

एक प्रहर उद्दाम सङ्कीर्तन के पश्चात् प्रभु स्थिर हुए। वेङ्कटभट्ट ने ससम्भ्रम श्रीरङ्गनाथ की प्रसादी माला प्रभु के गले में डाल दी और साष्टाङ्ग प्रणिपात कर, करबद्ध हो अपने घर में भिक्षा के लिये अनुरोध करने लगे। वेङ्कटभट्ट के आन्तरिक अनुरोध को मानकर प्रभु उनके घर पर पधारे। प्रभु को अपने घर में पाकर त्रिमल्ल वेङ्कटभट्ट परिवार के प्रसन्नता की सीमा न रही। सबोंने श्रीचरणों में सश्रद्ध नमन किया। वह वेङ्कटभट्ट का एकादशवर्षीय बालक अपनी स्वाभाविक बाल चपलतावश प्रभु के श्री चरणों के समीप आ नमस्कार कर बैठ गया। परम कारुणिक प्रभु ने अपने प्रिय पात्र के रूप में बालक के मस्तक पर अपने दोनों श्रीचरण रख दिये और श्रीमध्वाचार्य के उपास्य उडूपी के नर्तकगोपाल का स्मरण करते हुए बालक को गोपाल नाम से पुकारा। यह था बालक का ब्रजलीलापरक नाम संस्करण।

गोपालभट्ट! श्रीकृष्ण कृष्ण कहो। प्रभु श्रीचैतन्यदेव के चिन्मय श्रीचरण स्पर्श से बालक गोपालभट्ट के हृदय में एक नवीन शक्ति का सञ्चरण हुआ। गोपालभट्ट का मन प्राण प्रेम से भर उठा। उनके जीवन की धारा ही बदल गई। वे बाल-सुलभ चपलता को छोड़कर कृष्ण कृष्ण कह प्रेम से नाचने लगे। इधर वेङ्कटभट्ट ने कावेरी के पुनीत जल में अपने प्रेमाश्रुओं को मिलाकर प्रभु के श्रीचरणों को धोया, उस पुनीत जल को मस्तक पर चढ़ाया और चरणामृत के रूप में स्वयं पानकर पारिवारिकजनों को पिलाया। प्रभु के उस पुनीत तीर्थ जल को गोपालभट्ट नें भी पिया और मस्तक पर चढ़ाया। महाप्रभु को वेङ्कटभट्ट ने प्रेम से भिक्षा दी और श्रीचरणों में निवेदन किया—

*नाथ! चातुर्मास्य व्रत के प्रारम्भ होने का समय आ गया है, प्रबल

---

*चातुर्मास्य आसि प्रभु हैल उपसन्न।
चातुर्मास्य कृपा करि रह मोर घरे।
कृष्ण कथा कहि कृपाय निस्तार आमारे॥ चैं० [illegible]

वारि वर्षण से पथ अवरुद्ध हो गये हैं। नदी, घाट, नाव इन सब पर जाना अब कठिन होगया है। भला ऐसी दुरवस्था में हम आपको कैसे जाने दें। श्रीचरणों में आत्यन्तिक अनुरोध है कि चातुर्मास्य नियम समाप्ति तक आप इस अकिंचन दीन-हीन की कुटिया में निवास करने की कृपा कर इन दिनों श्रीकृष्ण कथा रसवर्णन से हम मायाबद्ध जीवों का उद्धार करिये।

वैङ्कटभट्ट की प्रार्थना पर श्रीचैतन्यदेव ने चार मास वैङ्कटभट्ट के यहाँ निवास किया। इन चार मासों में प्रत्यह कावेरी में स्नान, श्रीरङ्गनाथ दर्शन और नाम संकीर्तन, यह था प्रभु का नित्य नैमित्तिक कार्यक्रम। प्रतिदिन ग्रामों से सहस्रों व्यक्ति श्रीप्रभु के दर्शन को आने लगे। अद्भुत हरिनाम संकीर्तन रस प्रवाह ने उन सबों को प्रेमसागर में एक बार सराबोर कर दिया। अब उनका मन गृह कार्य में लगता ही न था। नाना कष्ट सहकर भी वे आते और नाम संकीर्तन में योग देने लगे। पतितपावन प्रभु के दर्शन एवं हरिनाम गान से दक्षिण देश धन्य हो उठा। आज उनका मन आनन्द की चरम सीमा को लांघ गया। उनके भाग्य वैभव को देख देवता भी ईर्ष्या करने लगे। नित्य एक एक वैष्णव मतावलम्बी ब्राह्मण प्रभु को भिक्षा देने का अनुरोध ले सामने आता एवं एक एक दिन की भिक्षा से प्रभु के चार मास बीतने लगे। वे भिक्षा देने वाले बड़े भाग्यशाली जन थे, जिनके यहाँ पधार कर, प्रभु ने अपने पादपद्मों से उनके स्थानों को पुनीत किया। सहस्रों जन प्रभु को भिक्षा न करा सके इसका उन्हें आजन्म दुःख रहा।

एक दिन की बात है-सन्ध्या के समय श्रीचैतन्यदेव, कावेरी नदी के सुरम्य प्रान्त पर स्थित अश्वत्थ वृक्ष के तले विराजमान हैं। हरिनाम की मृदु मधुमय ध्वनि से वे जीवजन को विमुग्ध कर रहे हैं। वर्षा के काले बादलों का दल अभी बरस कर ही हटा है। कई दिनों से सूर्य दर्शन न होने के कारण प्रभु ने अभी तक अन्न-जल ग्रहण नहीं किया है। संन्यासी का नियम जो ठहरा बिना सूर्य दर्शन के अन्न-जल कैसे ग्रहण किया जाय। प्रभु के अन्न-जल ग्रहण के बिना भट्ट परिवार बड़ा व्याकुल हो रहा है, क्या किया जाय? कभी भीतर कभी बाहर, लो! देखो! वह सामने सूर्यदेव की प्रखर रश्मियाँ बड़े-बड़े घन पटलों को विदीर्ण कर मण्डलाकाररूप में सामने आगईं। भट्ट परिवार की प्रसन्नता का पारावार नहीं। वैङ्कटभट्ट ने प्रभु के श्रीचरणों में भिक्षा ग्रहण का अनुरोध किया। प्रभु उठे पुनः स्नान कर सवितृमण्डल के मध्य-स्थित, सरसिजासन में विराजमान, विविध भूषणों से विभूषित, अपनी स्वर्ण-वर्ण गौर ज्योति की स्वयं गौर ने आराधना की। मध्याह्नोत्तर प्रभु ने वैङ्कट-

भट्ट द्वारा दी गई भिक्षा ग्रहण की। प्रभु को भिक्षा करा कर वैङ्कटभट्ट की आत्मा अत्यन्त आनन्दित हुई। वैङ्कटभट्ट धीरे धीरे प्रभु का पाद सम्वाहन करने लगे। लीलामय प्रभु श्रीचैतन्यदेव वैङ्कटभट्ट से सहसा कुछ पूँछ बैठते हैं।

भट्टवर ! यह बड़े आश्चर्य की बात है कि तुम्हारी लक्ष्मीदेवी पतिव्रताशिरोमणि होने पर भी हमारे गोपालकृष्ण के साथ रहने की निरतन्र प्रार्थना करती हैं। साध्वी स्त्री भला कभी अपने पति को त्याग कर क्या अन्य किसी की अभिलाषा करती है ? जो लक्ष्मीनारायण की निरन्तर वल्लभा रही है वह सर्व-सुख त्याग कर श्रीकृष्णपदप्राप्ति के लिये प्रतिपल बिल्ववन में बैठकर क्यों तपस्या कर रही हैं ? यह सुनकर वैङ्कटभट्ट कहने लगे—

प्रभो ! श्रीकृष्ण और श्रीनारायण एकही स्वरूप हैं। श्रीनारायण में श्रीकृष्ण की भाँति लालित्य होने पर भी श्रीकृष्ण की वैदग्ध्यादि ललित लीलाओं का प्रकाश नहीं है। वास्तव में श्रीकृष्ण की विलास मूर्ति श्रीनारायण होने पर उनकी पत्नी लक्ष्मी का श्रीकृष्ण के साथ निरन्तर रहने से पातिव्रत धर्म किस प्रकार नष्ट होगा ? श्रीकृष्णसंगम में लक्ष्मी की उत्सुकता स्वाभाविक है। लक्ष्मी ने जब देखा कि श्रीकृष्ण संग में उनका पातिव्रत धर्म नष्ट तो होता ही नहीं प्रत्युत रास विलास सुख का वास्तविक लाभ श्रीकृष्ण संग में ही सम्भव है, श्रीनारायण संग में तो उसकी प्राप्ति सर्वथा असम्भव है, इसीलिये लक्ष्मी सतत श्रीकृष्ण संग की कामना करती रहती हैं। इसमें लक्ष्मी का क्या दोष ? यह सुनकर प्रभु जरा हँसे और कहने लगे भट्टवर ! यह ठीक है कि इसमें लक्ष्मी का दोष नहीं है पर जरा यह तो बताओ लक्ष्मी को कभी कहीं किसी रासलीला में प्रविष्ट होने का अधिकार प्राप्त हुआ है ? सुनो ! श्रीवृन्दावन में रासोत्सव के समय श्रीकृष्ण के बाहुयुगलों का आलिङ्गनात्मक सुख केवल व्रजाङ्गनाओं को ही प्राप्त हुआ था। लक्ष्मी और स्वर्गस्थ सुररमणियाँ उस सुख से सर्वथा वञ्चित रही हैं। श्रुतियाँ भी श्रीकृष्ण की रासलीला में तभी प्रविष्ट हो सकीं जब उन्होंने बाहर से गोपी रूप और अन्तर से गोपी भाव धारण कर गोपिकाओं के आनुगत्य से नित्य लीला के निरीक्षण का निःसीम आनन्द प्राप्त किया था। तपोनिरत अध्यात्मवादी मुनिगण प्राणायाम द्वारा मन एवं इन्द्रियों को दृढ़ता के साथ निग्रह कर जिस सच्चिदानन्द श्यामल घन तत्त्व का चिन्तन करते हैं, जिसकी ध्यान धारणा के बल पर भगवद्विद्वेषीजन भी अपने आपको उस परम तत्त्व में लीन कर देते हैं, उस श्रीकृष्ण के वास्तविक मिलन सुख को सांसारिक माया ममत्त्व का सर्वथा त्याग कर व्रजाङ्गनायें प्राप्त करती हैं अतः विना रागानुगा भक्ति के श्रीकृष्णप्राप्ति सर्वथा असम्भव है। यह सुनकर वैङ्कटभट्ट कहने लगे—

प्रभो ! मैं अतिमन्द साधारण जीव हूँ। उस सर्वथा गहन व्रज-तत्त्व के वास्तविक रहस्य को भला मैं किस प्रकार जान सकता हूँ ? श्रीकृष्ण की विचित्र लीलाओं का अनुशीलन तथा अनुभव मेरे जैसे क्षुद्र विषयग्रस्त जीव के लिये सर्वथा असम्भव है। आप साक्षात् ईश्वर व्रजेन्द्रनन्दन हैं, आप ही अपने लीला वैचित्र्य को जान सकते हैं बिना आपकी अनुकम्पा के उस तत्त्व को कोई भी नहीं जान सकता, जो जानता है वह अपना अपनत्व खोकर आपका हो जाता है। यह सुनकर प्रभु कहने लगे—

भट्टवर ! श्रीकृष्ण का एक वास्तविक गुण मायाबद्ध जीव को अपने लीला-माधुर्य द्वारा अपनी ओर आकर्षित करना है, विना व्रजाङ्गनाओं के आनुगत्य के श्रीकृष्णपदप्राप्ति सर्वथा असम्भव है। व्रजवासियों के लिये श्री कृष्ण व्रजेन्द्रनन्दन रूप में सदा सर्वदा सामने आये हैं। वे उन्हें मारते, रुलाते और खिलाते हैं, गालियाँ देकर ताली बजा-बजाकर उन्हें नचाते और खिजाते हैं, इतना होने पर भी वे कभी अपने प्रिय कृष्ण को नहीं भूलते। उनके सम्पूर्ण देहगत कार्य श्रीकृष्णमय हैं। उनकी सम्पूर्ण कामनाओं का एकमात्र पर्यवसान श्रीकृष्ण हैं। व्रजाङ्गनाओं की निजेन्द्रिय सुख वासना कभी नहीं रही, वे चाहती हैं कि श्रीकृष्ण को हमसे सुख और आनन्द मिले यही उनकी अभिलाषा का मूल स्रोत है। उनके उलूखल में बँधा हुआ वह उपनिषदर्थ ब्रह्म माखन रोटी के लिये मचलता हैं। व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण सदा से ही गोपवेष में रहे हैं, माधुर्य अनुरागमयी व्रजगोपिकायें वास्तव में उनकी प्रेयसी हैं, वेही शाश्वत श्रीकृष्ण-सङ्गम सुख का अनुभव कर सकती हैं। ऐश्वर्य भावना में उन्हें भला श्रीकृष्ण-सङ्गम सुख किस प्रकार मिल सकता है ? देवाङ्गनारूप में लक्ष्मी ने श्रीकृष्ण को चाहा था किन्तु वे आजतक उन्हें न मिल पाये, यदि लक्ष्मी सहजगत रूप से श्रीव्रजाङ्गनाओं की अनुरागमयी भावना को माध्यम बनाकर श्रीकृष्ण को चाहतीं तो श्रीकृष्ण की प्राप्ति उन्हें अवश्य होती।

श्रीनारायण के रूप में ६० गुणों का विकास है किन्तु श्रीकृष्ण में—

(१) सर्वाद्भुत चमत्कारलीलाविशिष्टता, (२) अनुपम प्रेममाधुर्यमहत्ता, (३) त्रिभुवन जन मानसाकर्षणता, (४) चराचररूप विमोहन सौन्दर्यलावण्यता—ये चार और विशिष्ट गुण हैं इन्हीं चार विशिष्ट गुणों के कारण लक्ष्मी सदा श्रीकृष्ण चरण-सङ्ग सुख प्रार्थिनी रही हैं।

प्रभु के सैद्धान्तिक तर्क और तात्त्विक विवेचन से वैङ्कटभट्ट का सम्पूर्ण पाण्डित्य गर्व विगलित होगया, वे लज्जित और संकुचित हो मौन

होकर बैठ गये। करुणावतार चैतन्यदेव से वैङ्कटभट्ट की यह दीन और असहाय दशा न देखी गई उन्होंने उठकर वैङ्कटभट्ट को गले लगाया और प्रेम से कहने लगे—भट्टवर ! बुरा न मानना मैंने तो ये सारी बातें तुमसे परिहास में की हैं; भला कभी श्रीनारायण और श्रीकृष्ण में भेद रहा है ? दोनों सर्वदा एक तत्त्व हैं, इसीभाँति लक्ष्मी और व्रजाङ्गनायें भी अभिन्न हैं। ईश्वर में कभी भेद प्रतीति नहीं होती, जहाँ लक्ष्मी राधा रूप में श्रीकृष्ण की नित्य माधुर्यमयी लीलाओं का आस्वादन करती हैं वहाँ वह ऐश्वर्य रूप में नारायण के नित्य नवलीलारस का भी पान करती हैं। यह तो भक्तों का उपासना भाव भेद है। एकही सत् चित् आनन्द घन विग्रह के नाना नाम, रूप, लीला, गुणआदि भेद से उनकी उपासना की जाती है। श्रीप्रभु के उपदेशों से वैङ्कटभट्ट का मन प्राण भाव विभोरित हो उठा और वे सश्रद्ध नमन कर प्रभु का पाद सम्वाहन करने लगे।

एकदिन शारदीय चन्द्रमा की चन्द्रिका से पूर्ण प्रभासित निर्जन वन-प्रान्त में एकाकी गोपालभट्ट बैठे हुए हैं। आज उनका हृदय विशेष रूप से व्यथित है। कहाँ प्राणनाथ गौरसुन्दर का वह नवद्वीप नटनागर रूप और कहाँ उनका यह दिव्य सन्यस्तस्वरूप ? आँखों से अविरल अजस्र अश्रुधारा प्रवाहित हो रही है। वाणी के मौन मुखर गद्‌गद् स्वर से वह कह रहे हैं—

विधाता ! तुमने यह क्या किया ? यदि जन्म देना ही था तो नवद्वीप-धाम में देते। इतनी दूर क्यों लाकर पटका ? यदि दिखाना ही था तो प्रभु की नवद्वीप नागर मूर्ति को दिखाते यह सन्यस्त वेष उनका क्यों दिखाया ? व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण तो सदा से ही श्रीराधा के प्राणनाथ रहे हैं फिर क्यों तुमने उन्हें इस सन्यस्तस्वरूप में दिखाकर सारे संसार को रुलाया ? इतना कहते ही दोनों आँखें बरबस आँसुओं से भर उठी और धीरे-धीरे बादल बन-कर बरसने लगीं। किशोर बालक का श्वास प्रश्वास अग्नि की उत्तप्त शिखा की भाँति जलने लगा, वे तनिक रुके और फिर कहने लगे—

नहीं, इसमें विधाता का क्या दोष ? यह सब तो मेरे भाग्य का ही दोष है, जो अपनी इस अमूल्य निधि को सन्यस्त वेष में देख रहा हूँ। हा ! श्रीशचीनन्दन गौरसुन्दर ! इतना कहकर गोपालभट्ट भूमि पर मूर्च्छित हो गिर पड़े। वियोग की पराकाष्ठा ! दुःख का दुर्दान्त दृश्य !

भक्त की मनोवेदना प्रभु से छिपी न रही वे भक्तवत्सल भी विचलित हो उठे। इधर वियोग रजनी का अवसान था। प्रभु की प्रेरणा से गोपालभट्ट को तनिक सी झपकी लगी, वे क्या देखते हैं कि सामने भागीरथी के किनारे
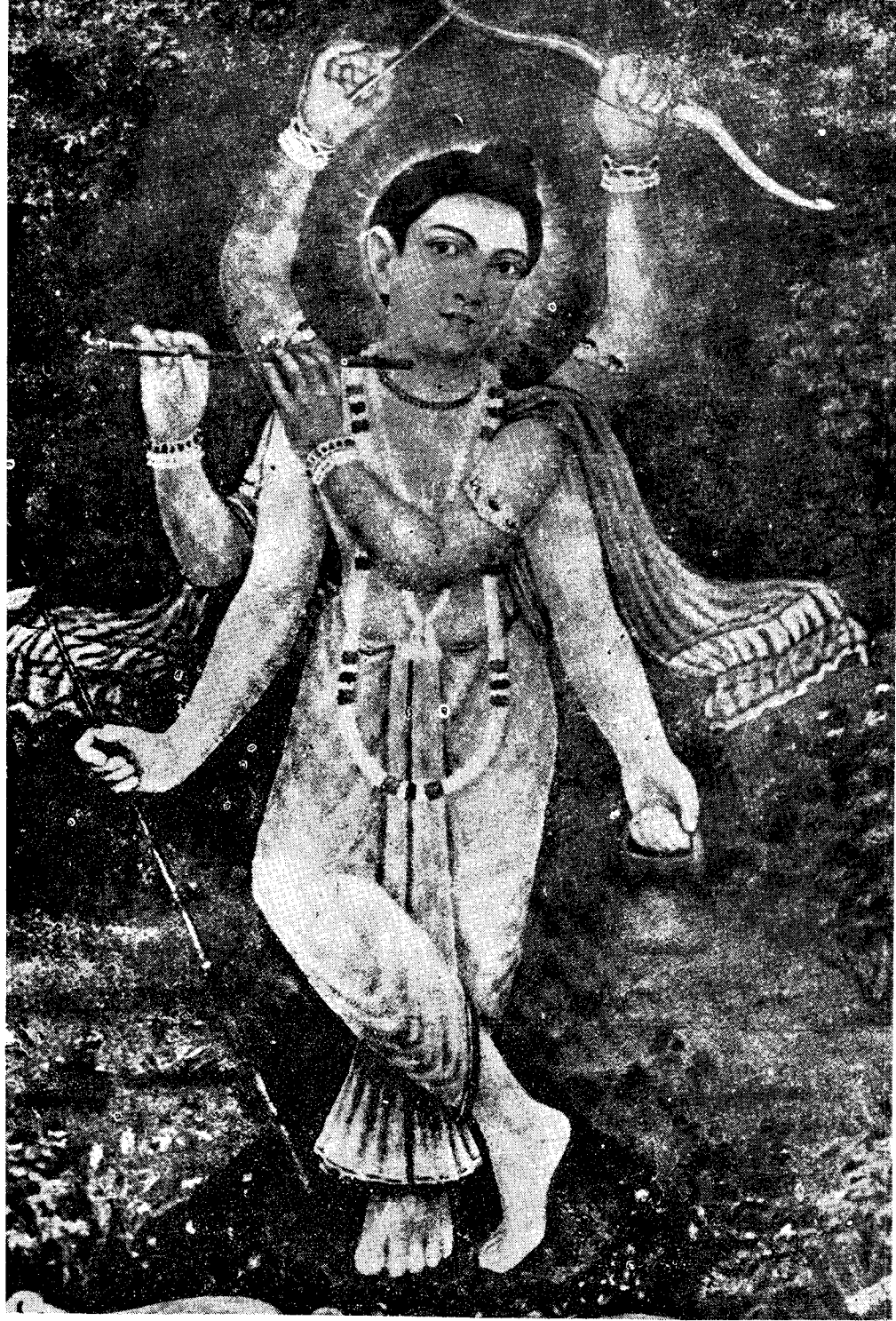
षड्भुज विग्रह भगवान् श्रीकृष्णचैतन्यदेव

नवद्वीप धाम का विशाल प्राङ्गण है। श्रीपाद नित्यानन्द, अद्वैताचार्य, गदा-धर, श्रीवास, हरिदास आदि भक्तों की समवेत सङ्कीर्तन मण्डली में प्राणनाथ श्रीगौरचन्द्र हरिनाम गान द्वारा भक्तवृन्दों को विमोहित करते हुए उद्दाम नृत्य कर रहे हैं और स्वयं गोपालभट्ट भी इन सबोंके साथ हरिनाम गान कर नाच रहे हैं। वह देखो पतितपावन श्रीनित्यानन्द प्रभु ने गोपालभट्ट को दोनों हाथों से उठाकर अपनी गोद में बैठा लिया और प्रेम से दुलराते हुए "प्रभु का पदाश्रय लो" इतना कहा ही था कि गोपालभट्ट की निद्रा भङ्ग हो गई।

स्वप्न का स्वर्णिम साम्राज्य ढह गया। व्याकुलता की चरम सीमा पुन: सामने आगयी। भक्त के हृदय की वेदना भगवान् से न देखी गई, अब वे सामने आये सन्यस्त वेष के स्थान पर श्यामसुन्दर त्रिभङ्ग नटनागर वेष में।

वह पीताम्बर की फहरान मन को मोहित कर रही है। माथे पर मोर का मुकुट सुशोभित है, कण्ठ में वनमाला विराजित है, मधुर मन्द मुरली का रव सप्त स्वरों में झंकृत हो रहा है, हाथ में लकुट, कटि में क्वणित कनककिङ्कणी एवं श्रीचरण कमल युगल में मुखरित-मणिमय मंजुल नूपुर की शोभा ही कुछ निराली है। व्रजेन्द्रनन्दन की वह मनमोहक छटा देख कर गोपालभट्ट अपने आपको भूल गये। आगे बढ़कर जो श्रीचरण पकड़ने को झुकते हैं कि वह घनश्याम मंजुल मनोरम मूर्ति आँखों से ओझल और उसके स्थान पर प्रभु का वह कनकावदात गौरसुन्दर स्वरूप, कुञ्चितकेश-कलाप, तरलिततिलक, मकरन्द-मिश्रित मालती माला और उद्दाम नृत्यरत सङ्कीर्तन स्वर। स्वर्णिमप्रकाश ज्योतिपुञ्ज से सारा स्थान झिलमिला रहा है।

हृदय रजत पट पर एक के बाद एक अद्भुत दृश्यों का परिवर्त्तन देख गोपालभट्ट भाव-विह्वल हो उठे। उनकी प्रेममादक निद्रा टूट गई वे व्याकुल हो दौड़े-दौड़े जहाँ प्रभु विराजमान हैं वहाँ जा पहुंचे और प्रभु के श्रीचरणों को पकड़ कर कहने लगे, नाथ! अब मैं नहीं छोड़ने का या तो मुझे श्री चरणाश्रय दे साथ लीजिये अन्यथा आपके सामने ही इस कावेरी नदी में डूब-कर अपने जीवन का अवसान कर दूँगा। आपने मुझे बहुत छला है। अब मैं नहीं मानूँगा। गोपालभट्ट का स्वाभाविक बाल हठ देख कर प्रभु का हृदय भी द्रवित हो चला। श्रीप्रभु ने गोपालभट्ट को गोद में बिठाकर अपने स्नेहाश्रुओं से संसिक्त करते हुए व्रजलीला के परम निगूढ़तम सत् सिद्धान्तों के उपदेश के साथ श्रीराधामाधव के दिव्य लीला निकेतनश्रीधाम वृन्दावन गमन का आदेश एवं वहाँ श्रीरूपसनातन गोस्वामी के साथ नित्य निरन्तर निवास का निर्देशन दिया और साथ ही यह कहा कि—

गोपालभट्ट ! तुम वैष्णव धर्म के प्रचार के लिये योग्यपात्र हो। मैं तुम्हें सम्पूर्ण तत्त्वों का वास्तविक रूप बतला रहा हूँ तुम उसे सुनो। जीव सदा से ही श्रीकृष्ण का दास रहा है और वह श्रीकृष्ण की तटस्था शक्ति का स्वरूप है; जिस प्रकार सूर्य और उसकी अंश किरणें, अग्नि और उसका ताप। श्रीकृष्ण की स्वाभाविक तीन शक्तियाँ हैं चित्, जीव और माया। श्रीकृष्ण को भूलकर ही जीव सदा से बहिर्मुख होता आया है अत: माया शक्ति जीव को निरन्तर सांसारिक दु:ख देती है। गोपाल ! भक्तजनों की कृपा जब इस जीव पर हो जाती है तब ही उसका सत् शास्त्रों में दृढ़ विश्वास उत्पन्न होता है और तब वह जीव निश्चय ही श्रीकृष्ण के चरणों का आश्रय प्राप्त कर सकता है और वही इस माया सागर से निस्तार को प्राप्त करता है। माया अब उसे छोड़ देती है, माया से छुटकारा पाने की शक्ति स्वयं जीव में नहीं है, कारण माया अलौकिक एवं अद्भुत सत्, रज, तमोगुण वाली ईश्वरीय शक्ति है जिससे निस्तार पाना बड़ा ही कठिन है किन्तु यह निश्चय समझलो जो मेरी शरण में आ जाता है उसे माया का वन्धन नहीं प्राप्त होता। माया मुग्ध जीव को स्वत: श्रीकृष्ण का ज्ञान नहीं होता अत: जीव पर कृपा करने के लिये भगवान् ने सत् शास्त्रों को प्रकट किया है। गुरुरूप, सत्शास्त्ररूप तथा परमात्मा के रूप से श्रीकृष्ण ही जीव को अपना ज्ञान कराते हैं तभी यह जीव जान पाता है कि श्रीकृष्ण ही मेरे रक्षक एवं मेरे स्वामी हैं। सत् शास्त्रों से जीव को यह ज्ञान उत्पन्न होता है कि जीव का क्या कर्तव्य है ? यह सम्पूर्ण बातें गुरु एवं भगवत् कृपा के बिना कोई भी नहीं जान पाता। गोपालभट्ट ! नन्द-नन्दन श्रीकृष्णही प्राप्त करने योग्य हैं औरभक्ति ही उनकी प्राप्ति का सुनिश्चित साधन है तथा श्रीकृष्ण प्रेम ही सेवा का वास्तविक सार है और सेवा से ही श्रीकृष्ण की प्राप्ति होती है अत: श्रीकृष्ण, कृष्णभक्ति तथा कृष्ण प्रेम को महा धन कहा गया है। श्रीकृष्ण का स्वरूप अनन्त एवं व्यापक है और उनका वैभव असीम है अत: मेरा तुम्हारे प्रति एक आदेश है कि तुम व्रज में जाकर एक वैष्णव स्मृति की रचना करना जिसमें वैष्णवों के नित्य कृत्य, गुरु लक्षण, शिष्य परीक्षण, मंत्र सिद्धि, दीक्षा विधि, साधु संग, मास-कृत्य, जन्माष्टमी विधि, एकादशी निर्णय, कर्तव्य और अकर्तव्य आदि विषयों का विवेचन पूर्ण प्रमाणों के सहित देना। मैं संक्षेप में सूत्र रूप से तुम्हें यह बतला रहा हूँ कि तुम जो लिखोगे उसमें निश्चय ही भगवान् तुम्हारे हृदय में विराजमान होकर प्रेरणा देंगे और तुम्हारे द्वारा उस वैष्णव-स्मृति की रचना होगी जो विश्व वैष्णव समाज के लिये एक अमूल्य निधि के रूप में

सदा स्मरण की जाती रहेगी।

गोपालभट्ट ! वैष्णव धर्म का वास्तविक सार—"प्राणिमात्र पर दया, भगवन्नाम गान में अभिरुचि तथा वैष्णवजनों का संसेवन है" जिसके आश्रय से जीव निश्चित रूप से भगवत् चरणारविन्द प्राप्त कर सकता है।

एक और भी परम गोपनीय बात प्रभु ने उनसे कही। गोपालभट्ट ! तुम्हारे द्वारा श्रीराधाकृष्ण के अनेक नित्य दिव्य लीला-स्थलों का व्रज में प्रकाश होगा, साथ ही वैष्णवस्मृति का सङ्कलन एवं माध्वगौड़ेश्वर सिद्धान्तों के तात्त्विक विवेचनात्मक ग्रन्थ प्रणयन से वैष्णवसमाज के एक बहुत बड़े अभाव की पूर्त्ति होगी।

यह था प्रभु का गोपालभट्ट के प्रति आन्तरिक आशीर्वाद। इधर श्री गौराङ्गदेव के श्रीचरणों में बालक गोपालभट्ट की ऐकान्तिक प्रीति देखकर वैङ्कटभट्ट परिवार की प्रसन्नता का पारावार न रहा, अन्त में प्रीति की दृढ़ स्थायी भावना के रूप में उन्होंने १५६८ वैक्रमीय की आश्विन पूर्णिमा के दिन गोपालभट्ट को दीक्षा प्रदान हेतु श्रीप्रभु के श्रीचरणों में समर्पित कर दिया।

चातुर्मास्य समाप्ति के पश्चात् श्रीमन्महाप्रभु गोपालभट्ट को माता-पिता की सेवा के पश्चात् वृन्दावन जाने की आज्ञा दे कर अपने अवशेष यात्रा-पथ पर चल दिये। इधर श्रीगोपालभट्ट प्रभु-वियोग में अत्यन्त विह्वल रहने लगे। पिता ने इनकी चित्तवृत्ति बदलने के लिये अपने भ्राता श्रीत्रिमल्लभट्ट के पास इन्हें अध्ययन करने की आज्ञा दी। यथासमय षडङ्ग वेदान्त-दर्शन, व्याकरण, न्याय, सांख्य, मीमांसा, स्मृति एवं पुराणादि सम्पूर्ण विद्याओं में ये पारंगत हो गये एवं दक्षिण प्रदेश के कोने-कोने में इनकी वैदुषी का प्रचार होने लगा। बड़े-बड़े विद्वान् दर्शन की गहनतम गुत्थियों को सुलझाने के लिये इनके पास आने लगे। प्रतिदिन शत शत छात्रों का अध्यापन एवं दार्शनिक ग्रन्थों का प्रणयन यह थी गोपालभट्ट की दैनन्दिनीचर्या अन्त में विद्या समाप्ति के पश्चात् माता-पिता एवं गुरुजनों ने गोपालभट्ट का वैवाहिक-बन्धन में बहुत बाँधना चाहा पर इन्होंने उनके आग्रह को न मानकर नैष्ठिक बाल ब्रह्मचारी के रूप में रहने का निश्चय किया।

माता-पिता के देहावसान के पश्चात् श्रीगोपालभट्ट वृन्दावन दर्शन की उत्कट अभिलाषा का सम्वरण न कर सके, सब कुछ त्यागकर श्रीमन्महाप्रभु के आदेशानुसार मद्रास, बम्बई, गुजरात, राजस्थान पथ से

सब देशवासियों को कृष्णभक्ति दानद्वारा धन्य करते हुए श्रीगिरिराज गोवर्द्धन की तलहटी में आ पहुंचे। श्रीराधाकुण्ड-श्यामकुण्ड के मध्य केलिकदम्ब के नीचे कुछ दिन रहने के पश्चात् श्रीगोपालभट्ट जावबट के पास किशोरीकुण्ड पर भजन-साधन करने लगे। वहाँ ही श्रीरूप-सनातन गोस्वामी से इनकी भेंट हुई और वे इन्हें अपने साथ वृन्दावन ले आये।

श्रीधाम वृन्दावन एवं रासस्थली

आदि वाराह-पुराण के अनुसार यमुना के दक्षिण तट स्थित श्री राधिकारमण लीला निकेतन श्रीधाम वृन्दावन एक देव दुर्लभ स्थान है। श्रीमद्भागवत में इसे[1] द्वादश वन के रूप में कालिन्दी[2] एवं गोवर्द्धन की उपत्यकायों से परिवेष्टित स्थान कहा है। आज वृन्दावन का जो रस-भावस्वरूप दिखलाई दे रहा है वह श्रीराधिकारमण की रस रागमयी रास-स्थली है, जहाँ रसराज महाभाव स्वरूपिणी श्रीराधिका के साथ सच्चिदानन्द घनश्यामल श्रीकृष्ण ने रास-क्रीड़ायें की थी।

करोड़ों[3] चिन्तामणि मिलने पर भी यहाँ के निवासी उसे ठुकरा देते हैं। साक्षात् नटनागर कृष्ण भी यदि उनसे अपने निकट आने को कहते हैं तब भी उन्हें वृन्दावन छोड़ना स्वीकार नहीं। [4]यह वही वृन्दावन है जहाँ मुक्ति पानी भरती और कर्म, धर्म जहाँ निरन्तर मजदूरी करते रहते हैं। यहाँ की करीर की कटीली कुञ्जों पर कनक मणिमण्डित भवन न्यौछावर किये जाते हैं। यहाँ की एक झलक पाने से ही जीव के जन्म-जन्म के पाप कट जाते

---

१ वृन्दावनं द्वादशकं वृन्दया परिरक्षितम्।
मम चैव प्रियं भूमे! महापातकनाशनम्॥
—वाराहपुराण १५३-४८

२—वृन्दावनं गोवर्द्धनं यमुनापुलिनानि च।
वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीतिः राममाधवयोः नृप॥
—श्रीमद्भागवत, १०।११।३५

३—रे, मन वृन्दाविपिन निहार।
जदपि मिलहि चिन्तामणि कोटिन तदपि न हाथ पसार।
वृन्दावन सीमा के बाहर हरिहू को न निहार॥ (श्रीभट्ट)

४—व्रजभूमि मोहिनी हम जानी।
कर्म धर्म जहँ वटत जेवरी, मुक्ति भरत जहँ पानी॥ (श्रीहरिरामव्यास)

हैं। यहाँ के प्रत्येक मानव से लेकर पशु, पक्षी, कीट, लता, पत्र आदि सब देव स्वरूप हैं। इसकी एक रज कणिका के लिये ब्रह्मा, उद्धव तरसते रहते हैं और की तो बात क्या ? साक्षात् अङ्क निवासिनी लक्ष्मी भी यहाँ आ नहीं सकती। यहाँ[१] माया, काल कभी फटकने ही नहीं पाते।

परम परिव्राजक श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीपाद इस श्लोक—

वृन्दावने सकलपावनपावनेऽस्मिन्
सर्वोत्तमोत्तम - चरस्थिरसत्त्वजातेः ।
श्रीराधिकारमणभक्तिरसैक - कोषे,
तोषेण नित्य परमेण कदा वसामि ॥

—श्रीवृन्दावन-महिमामृत, १।४१

द्वारा सकल जन पावन सर्वोत्तमोत्तम श्रीराधिकारमण की रम्य रास-स्थली में निरवधि निवास की उत्कट अभिलाषा रखते हैं। इसी रास-स्थली में रास-क्रीड़ा के आरम्भ में जब श्रीकृष्ण श्रीराधिका को छोड़कर अन्तर्हित हुए थे तब श्रीकृष्ण वियोग में श्रीराधा ने श्रीकृष्ण को—

'हा नाथ ! रमण ! प्रेष्ठ ! क्वासि क्वासि महाभुज ! ।
दास्यास्ते कृपणायाथ सखे ! दर्शय सन्निधिम् ॥"

—श्रीमद्भागवत, १०।३०।४०

हा नाथ ! हा रमण ! कहकर पुकारा था, यहाँ ही हे विशालबाहो ! प्राणेश ! एक बार आकर अपनी इस प्रियतमा को दर्शन दो, यह कहकर राधा विमूर्च्छित हुई थी। यह ही वह परम पुण्यमयी त्रैलोक्याद्भुतमाधुरीमण्डित रासस्थली है, जहाँ रासमण्डल मण्डन कन्दर्प दर्प खण्डन श्रीकृष्ण ने अपनी अनन्य प्रियतमा सर्वगुणगणाधिका श्रीराधिका का पुष्प-श्रृङ्गार[२] कर श्रीराधा एवं व्रजाङ्गनाओं के साथ महारास लीलायें की थीं। श्रीमन्महाप्रभु[३] चैतन्य-

---

१—माया काल तहाँ नहि व्यापत जहँ रसिक सिरमौर।

२—वैदग्ध्योज्वलवल्गुवल्लववधूवर्गेण नृत्यन्नसौ,
हित्वा तं मुरजिद्रसेन रहसि श्रीराधिकां मण्डयन्।
पुष्पालंकृति सञ्चयेन रमते यत्र प्रमोदोत्करैः,
त्रैलोक्याद्भुतमाधुरीपरिवृता सा पातु रासस्थली ॥

—स्तवावली-ब्रजविलास ६३

३—रास-स्थलीर धूलि आदि सब भेट दिल। —चै० च० अन्त्य १३।२५

देव जब-जब अपने भक्तों को श्रीवृन्दावन-धाम भेजते थे तब-तब उन्हें उपहार-स्वरूप रासस्थली की वालुका लाने का भी साग्रह आदेश देते थे।

एक कथानक के अनुसार इस ललितलवङ्गलतापरिशीलित रासस्थली की नित्य नव निभृतनिकुञ्ज में प्रिया-प्रियतम शयन कर रहे हैं। इस शयन स्वप्न-लीला को श्रीपाद विश्वनाथ चक्रवर्ती महोदय ने सरस रूप में इसप्रकार परिवर्णित किया है—एक दिन रात्रि शेष में श्रीवृषभानुनन्दिनी ने एक हृदय मनोहर स्वप्न देखा। आप प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण को जगाकर कहने लगीं—प्रियतम ! मैंने आज एक अद्‌भुत स्वप्न देखा है। स्वप्न में मैंने यमुना के समान एक नदी देखी एवं उसके पुलिन तट पर वृन्दावन की भाँति दृश्य एवं मृदङ्गादि वाद्य देखे और यह भी देखा कि उस नृत्य विनोद में एक विद्युत्-वर्ण गौराङ्ग युवक जगत् को प्रेमरस सागर में डुबाता हुआ "कृष्ण ! कृष्ण !" कहकर प्रलाप कर रहा है, कभी—"हा राधे ! तुम कहाँ हो ?" ऐसा कहकर रोदन करता हुआ मूर्च्छा प्राप्त हो रहा है और कभी उल्लास के साथ रोदन करता हुआ ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त जगत् को रुला रहा है। उस स्वरूप को देखकर मेरी बुद्धि भ्रान्त होने लगी, यह गौरवर्ण युवक कौन है ? क्या निरन्तर कृष्ण-कृष्ण कहकर रोदन करने वाली मैं हूँ अथवा सर्वदा हा राधे ! हा प्राणेश्वरि ! इस प्रकार कह कर रोदन करने वाले आप हैं ? इस प्रकार विचार करती हुई मैं सो गई।

यह सुन कर श्रीकृष्ण कहने लगे—हे प्राणेश्वरि ! मैंने ही स्वप्न में तुम्हारे आश्चर्य के लिये नारायणादि विविध स्वरूपों का अवलोकन कराया था परन्तु तुम्हारा किसी में विस्मय नहीं हुआ। नहीं कह सकता कि वह गौरवर्ण युवक कौन था ? जो तुम्हारी बुद्धि में भ्रम उत्पादन कर तुम्हें मोहित कर रहा है, ऐसा कह कर प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण चुप हो गये, अन्त में श्रीराधा कहने लगी—प्राणवल्लभ ! वह गौर स्वरूप आप ही हैं, नहीं तो मुझे आपके अतिरिक्त इस प्रकार और कोई मोहित नहीं कर सकता।

इस घटना को सुनने के बाद श्रीकृष्ण ने अपनी कौस्तुभमणि को प्रकाशित किया और उसके द्वारा स्वप्न में देखी हुई सम्पूर्ण दृश्यावलियाँ श्रीराधा को दिखायी। श्रीराधा इन सब दृश्यों को देखकर कहने लगीं नाथ ! आपके बाल्यकाल में ब्रजराज के समक्ष सर्वज्ञ[1] गर्ग ने यह कहा था कि

१—आसन् वर्णास्त्रयोह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनुः।
शुक्लोरक्तस्तथा पीतरिदानीं कृष्णतां गतः॥
—श्रीमद्‌भागवत, १०।८।१३

श्रीगोपालभट्टगोस्वामी—

श्रीमद् गोपालभट्टगोस्वामी

आपका एक पीतवर्ण गौराङ्ग अवतार भी होगा, मुनि गर्ग का वचन कभी मिथ्या नहीं हो सकता अतः मेरा यह स्वप्न सत्य है। वह स्वप्न-दृष्ट गौरवर्ण आप ही हैं। इसके अनन्तर श्रीकृष्ण ने कहा, हृदयेश्वरि ! मैं तुम्हारे भाव आस्वादन के लिये ही तुम्हारी गौरवर्ण कान्ति से आच्छादित होकर नवद्वीप में गौराङ्ग स्वरूप से अवतीर्ण होऊँगा। तुम्हारी इस सरस भावना का ही यह वास्तविक परिपाक है, जिसका मैंने तुम्हें स्वप्न में अवलोकन कराया है।

वृन्दावन आकर श्रीगोपालभट्ट—

रासस्थली के कलित कलिन्दजाकूलवर्ती श्रीकृष्ण लीलाकालीन विशाल वट बृक्ष के नीचे अवस्थित हुये। उनकी वर्षों की साधना ने आज मूर्त्त रूप लिया, वे बारम्बार रासस्थली की सुरम्य वालुका में लोटने लगे। प्रेमाश्रुओं की अजस्र धारायें वालुका कणों को भिगोने लगी, वे अधीर हो बारम्बार अपने प्राणधन श्रीकृष्ण को स्वनिर्मित पद द्वारा पुकारने लगे—

चूडाचुम्बितचारुचन्द्रकचमत्कारव्रजभ्राजितं,
दिव्यन्मञ्जुमरन्दपङ्कजमुखभ्रू नृत्यदिन्दीवरम्।
रज्यद्वेणुसुमूलरोकविलसद्विम्बाधरोष्ठं महः,
श्रीवृन्दावनकेलिकुञ्जकलितं राधाप्रियं प्रीणये॥

—श्रीकृष्णवल्लभा टीका, १।१

रासस्थली में आकर दाक्षिणात्य श्रीगोपालभट्ट की भावनाओं में विशेष परिवर्त्तन होने लगा। अब वे अहर्निश प्रिया-प्रीतम की भाव चिन्तन धारा में निमग्न रहने लगे। इस भाव चिन्तन रसरास परम्परा को श्रीगोपालभट्ट ने दाक्षिणात्य शैली के "भरतनाटचम्" के अनुरूप समस्त व्रजमण्डल में सर्वप्रथम रास-लीलानुकरण के नवायित रूप में रखा और इसे रास की संज्ञा दी। श्री गोपालभट्ट नाट्य,[१] सङ्गीत, नृत्य एवं कला में परम प्रवीण थे, यह कला इन्हें अपने पितृव्य श्रीप्रबोधानन्दजी[२] से प्राप्त हुई थी जो इन विद्याओं में पूर्ण

१—महाकवि गीत वाद्ये नृत्ये अनुपम।
जार काव्य सुनि सूख वाडये सवार। प्रवोधानन्देर महामहिमा अपार॥
—भक्तिरत्नाकर, १

२—जितकरिवरभङ्गी नाट्यसङ्गीतरङ्गी तनुभृतजनुर्चित्तानन्दवर्द्धी सुधीरः।
हरिचरितविलासश्चित्तचातुर्यभाषः परमपतितमीशः पातु गोपालभट्टः॥
—श्रीकवि कर्णपूर

पारङ्गत थे और जिन्होंने 'सङ्गीतमाधव', 'आश्चर्यरासप्रवन्ध' आदि नृत्य, संगीत, नाटच, कलात्मक ललित ग्रन्थों की रचनायें की थीं, अन्त में श्री गोपालभट्ट ने संगीत, नाटच, नृत्य और रङ्गमञ्च के एक सफल साधक के रूप में रासस्थली के सम्मुख एक विशाल भू-खण्ड पर रासमण्डल की स्थापना की और उस रासमण्डल पर सखी, मञ्जरियों सहित श्रीराधाकृष्ण के मंजुल मनोरम स्वरूपों को व्रज के विविध वन्य प्रसूनों से सज्जित कर, गुञ्जमाल, मयूरपिच्छ, कुण्डल तथा चारु चन्द्रिका धारण कराकर रासलीला का आरम्भ किया। दाक्षिणात्य होने पर भी उनकी व्रजभाषामयी कोमल कान्त पदावलियाँ जन मानस को विमुग्ध कर रहीं थी। यह था श्रीगोपालभट्ट का वृन्दावन निवास का उपारम्भ।

कृतित्व एवं काव्य सौष्ठव—

श्रीकृष्णकर्णामृत और श्रीकृष्णवल्लभा टीका

श्रीचैतन्यदेव अपनी दक्षिण देश यात्रा के मध्य पयस्विनी नदी के किनारे आदि केशवदेव मन्दिर में दर्शनार्थ पधारे। प्रभु अपने ही विग्रह को स्वयं देख प्रेमाविष्ट हो उद्दाम नृत्य, कीर्तन करते हुये यशोगान करने लगे। श्रीप्रभु की सङ्कीर्त्तन भाव स्तुति को सुनकर दर्शनार्थी चमत्कृत हो उठे। भक्तों के आग्रह से वे कुछ दिन वहाँ रह कर सर्वथा अप्राप्य 'ब्रह्मसंहिता'[१] का वह अद्वितीय अध्याय जिसमें व्रजेन्द्रनन्दन श्रीगोविन्द के परमोत्कर्ष सौन्दर्य का प्रतिपादन किया गया है को लिखवाकर साथ लाये थे। इसीप्रकार कृष्णवेण्वा नदी कूल स्थित एक प्राचीन देव मन्दिर में गायनरत ब्राह्मणों से विल्वमङ्गल रचित 'श्रीकृष्णकर्णामृत' के श्लोकों की अपूर्व गोपी भावपरक गान शैली से विमुग्ध हो उसकी भी एक प्रतिलिपि कराकर साथ लाये थे। श्रीमन्महाप्रभु चैतन्यदेव की दृष्टि से 'श्रीकृष्णकर्णामृत' के समान इतनी सुन्दर रचना त्रिभुवन में दूसरी नहीं थी। श्रीकृष्णलीला के सौन्दर्य और माधुर्य

१—ब्रह्म संहिताध्याय ताँहाई पाईल।
वहु यत्ने सेई पूंथि निल लेखाइया॥ —चै० च० मृ० ९।११७।१२०

२—कर्णामृत सम वस्तु नाहि त्रिभुवने।
जाहा हैते हय शुद्ध कृष्ण प्रेम ज्ञाने॥
सौन्दर्य माधुर्य कृष्ण लीलार अवधि।
सेई जाने जे कृष्णकर्णामृत पड़े निरवधि॥ —चै० च० मृ० ९।१५३
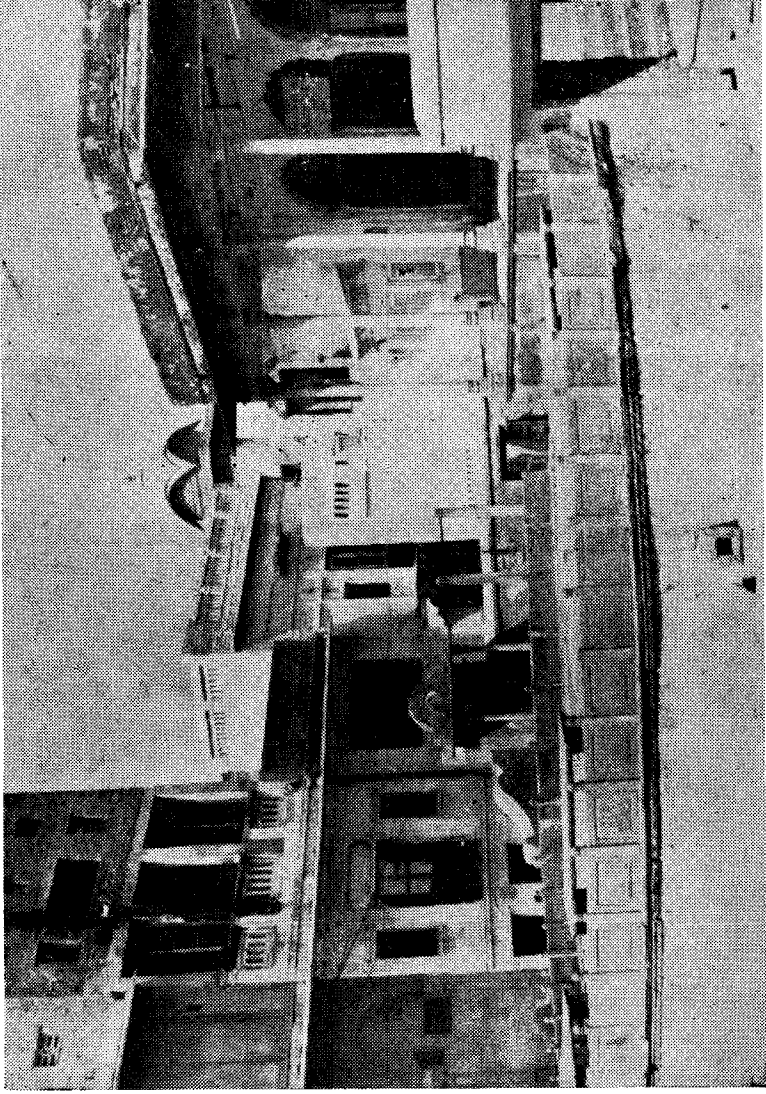
रासमण्डल (रासचत्वर) श्रीराधारमण मन्दिर, श्रीवृन्दावन

का जितना इसमें पूर्णतः परिपाक हुआ है उतना और किसी लीला ग्रन्थ में नहीं। इसकी सर्वप्रथम प्रतिलिपि [1]श्रीराय रामानन्द द्वारा विद्यानगर में की गई एवं उसके पश्चात् श्रीचैतन्यदेव के प्रिय ग्रन्थ के रूप में समय-समय पर वैष्णवों द्वारा इसकी और भी प्रतिलिपियाँ की गई।

श्रीगोपालभट्ट दक्षिण देश से व्रज पथ की ओर अग्रसर होते हुये कृष्णवेण्वा नदी तट स्थित उसी देव मन्दिर में आये जहाँ उनके आराध्य श्रीचैतन्य दक्षिण-यात्रा से लौटकर उपस्थित हुये थे। श्रीगोपालभट्ट ने भी अर्चकों के मुख से 'कृष्णकर्णामृत' की मधुर कोमल कान्त पदावलियों को सुना और इसकी प्रतिलिपि देने का उनसे अनुरोध किया, यद्यपि वहाँ के अर्चक इसकी प्रतिलिपि किसी को करने नहीं देते थे किन्तु श्रीगोपालभट्ट की तेजस्विता से प्रभावित हो यहाँ के अर्चकों ने इसकी प्रतिलिपि करने की उन्हें अनुमति प्रदान की।

इससे पूर्व इस अपूर्व रसपूर ग्रन्थ की प्रतिलिपि श्रीमन्महाप्रभु चैतन्य-देव को प्राप्त हुई थी यह जानकर श्रीगोपालभट्ट भाव-विभोर हो उठे, भोजन-पान की समस्त चिन्ताओं को छोड़ इसकी प्रतिलिपि कर श्रीगोपालभट्ट व्रज-पथ की ओर चल पड़े। अब पाथेय के रूप में श्रीगोपालभट्ट के पास था एकमात्र सम्वल 'श्रीकृष्णकर्णामृत', इसकी पदावलियों की भाव माधुरी बरवस इन्हें अपनी ओर खींच रहीं थी। व्रज-रस व्यञ्जना की इतनी सुन्दर रचना आज तक उनके सामने नहीं आई थी। 'कृष्णकर्णामृत' के निरवधि अनुशीलन से श्रीगोपालभट्ट की मनोदशा में बहुत बड़ा भाव परिवर्त्तन हुआ।

उन्होंने इसके एक-एक श्लोक पर विशद विवेचना की और उसी को 'कृष्णवल्लभा'[2] टीका के रूप में रखने का प्रयास किया। यह सर्वप्रथम श्रीगोपालभट्ट की भावपरक रचना थी। वैष्णवता के साथ-साथ द्विजत्व भावना भी उनके हृदय पर अङ्कित थी साथ ही उन्हें अपने जन्म स्थान द्रविड देश से भी अत्यन्त स्नेह था इसलिये उन्होंने 'श्रीकृष्णवल्लभा' टीका के उपारम्भ में द्रविडदेशीय ब्राह्मण[3] के रूप में अपना परिचय दिया—

कृष्णकर्णामृतस्यैतां टीकां श्रीकृष्णवल्लभाम्।
गोपालभट्टः कुरुते द्राविडावनिनिर्जरः॥

१—प्रभु सह आस्वादिल राखिल लिखिया। —चै० च० मृ० ६।१६१

२—करिलेन कृष्णकर्णामृतेर टिप्पणी। वैष्णवेर परमानन्द जाहा सुनि॥
—भक्तिरत्नाकर, १।२८८

३—श्रीगोपालभट्टगोस्वामिपादानां भागवतसन्दर्भ श्रीकृष्णकर्णामृतटीकादि।
—साधन-दीपिका, कक्षा ८

श्रीवृन्दावन आकर श्रीगोपालभट्ट की भाव दशा ही बदल गई जो कुछ लिख पाये थे उससे आगे न बढ़ सके। अब वे प्रेम माधुर्य रस सागर में डूबने और उछलने लगे। यह रागानुगा भाव धारा का परिसीमन समय था। भक्ति रस-सुधा सिञ्चन से सम्पूर्ण व्रजमण्डल आप्लावित हो रहा था, उस समय श्रीरूप गोस्वामी के आन्तरिक अनुरोध से 'श्रीकृष्णकर्णामृत' की 'कृष्णवल्लभा' टीका के अवशिष्ट अंशों को [1]श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी ने १६१३ वै० के लगभग संशोधित नवायित रूप में वैष्णव जगत् के सामने रखा।

षट् सन्दर्भ—

श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी ने [2]दाक्षिणात्य द्विजत्व रूप में प्राचीन वैष्णवाचार्यों के भगवत् तत्त्व विषयक सिद्धान्तों का अवलोकन, विशिष्ट वैदान्तिक पिता श्रीवेङ्कटभट्ट, पितृव्य श्रीप्रबोधानन्द द्वारा प्रतिपादित निर्भ्रान्त वेदान्त सिद्धान्तों का अनुशीलन एवं परम दार्शनिक भगवदवतार श्रीकृष्णचैतन्यदेव की चातुर्मास्य निज आवास स्थान पर विशुद्ध वेदान्त वास्ताविकार्थ बोधक व्याख्यायें सुनी थी, उन्हीं समस्त स्वारहस्यों को श्रीगोपालभट्ट ने एक समन्वयात्मक कारिका के रूप में ग्रन्थन किया।

यह आचार्यपाद की प्रारम्भिक रचना थी जिसे वे अपने साथ श्री वृन्दावन लेकर आये थे। उस समय वृन्दावन में श्रीरूप सनातन गोस्वामी गणों द्वारा व्रजलीला रस परक ग्रन्थों की रचनायें हो रहीं थी। तात्कालिक सबसे बड़ी आवश्यकता थी मध्व दर्शन को गौड़ीय-वैष्णव दर्शन में पर्यवसित कर एक समीक्षणात्मक प्रामाणिक ग्रन्थ निर्माण की।

व्रजवास काल में श्रीगोपालभट्ट की विद्वता का पूर्ण परिचय श्रीरूप सनातन को हो गया था। दर्शन की निगूढ़तम ग्रन्थियों को सुलझा कर उसे परिष्कृत सामञ्जस्य रूप में जितना श्रीगोपालभट्ट रख सकते थे उतना और

१—श्रीभट्टगोसाई कर्णामृतेर टीका कइल। अशेष विशेष व्याख्या ताहाते लिखिल।
जाहार दर्शने भक्त पण्डिते चमत्कार। रस परिपाटी जाते सिद्धान्तेर [illegible]र॥
—अनुरागवल्ली

२—सकलगुणागभीरः सर्वशास्त्रार्थधीरः द्रविडपुरनिवासी पण्डितः वावदूकः।
विपुलपुलकभावैर्बेष्टितः सर्वदेहः परमपतितमीशः पातु गोपालभट्टः॥
—कवि कर्णपूर

कोऽपि तद्वान्धवः भट्टः दक्षिणद्विजवंशजः।
विविच्य विलिखिदं ग्रन्थं लिखितादवृद्धवैष्णवैः॥ —तत्त्व-सन्दर्भ ४

कोई नहीं। उन्हें यह भी ज्ञात था कि श्रीगोपालभट्ट के समीप वैष्णव-दर्शन सिद्धान्त की एक प्राञ्जल प्रौढ व्याख्यापरक निजीय रचना है अतः इसकी आत्यन्तिक आवश्यकता का दिग्दर्शन कराते हुये श्रीरूप सनातन ने ग्रन्थ प्रणयन के लिये श्रीगोपालभट्ट से अनुरोध किया।

श्रीगोपालभट्ट की सम्पूर्ण रचनाओं का मूल स्रोत श्रीचैतन्यदेव का आदेश एवं अपने परम प्रिय वान्धव श्रीरूप सनातन का सन्तोष था जिसे उन्होंने अपनी रचनाओं के आरम्भ में स्पष्टतः व्यक्त किया है।

श्रीगोपालभट्ट ने दक्षिण में अपनी प्रारम्भिक रचना के रूप में जिन दार्शनिक सूत्रों का ग्रन्थन किया था उन्हें माध्वगौडेश्वर दर्शन का रूप देते हुये सम्बन्ध, अभिधेय एवं प्रयोजनात्मक भागवतसन्दर्भ का प्रणयन किया और उसे षट्सन्दर्भ (तत्त्व, भगवत्, परमात्म, कृष्ण, भक्ति तथा प्रीति) की संज्ञा दी।

काल प्रभाव तथा रखरखाव के साधनों के अभाव से श्रीगोपालभट्ट-गोस्वामी की षट्सन्दर्भात्मक कृति का कुछ अंश नष्ट हो गया भजन, साधन, अन्यान्य ग्रन्थ प्रणयन के कारण उन्हें इतना अवकाश ही नहीं था कि वे इसके विलुप्त अंशों की पूर्त्ति कर सकें। इधर श्रीचैतन्यदेव के विरहजनित सन्ताप से इनकी मन, प्राणदशा विचलित हो चली थी, इससमय विश्व वैष्णव समाज में माध्वगौडेश्वर दर्शन के समन्वयात्मक ग्रन्थ की बहुत बड़ी आवश्यकता थी। श्रीरूप सनातन गोस्वामी ने इसकेलिये श्रीगोपालभट्ट से अनुरोध किया एवं इस दिशा में वैष्णवगणों का आग्रह भी निरन्तर बढ़ रहा था। यह एक बड़ा प्रश्न श्रीगोपालभट्ट के सामने था अतः इसकी पूर्त्ति के लिये श्रीगोपालभट्टगोस्वामी ने श्रीजीव गोस्वामी को आज्ञा दी। श्रीगोपालभट्ट की दार्शनिकता का श्रीजीव पर विशेष प्रभाव था और श्रीगोपालभट्ट के सान्निध्य में रहकर दर्शन एवं स्मृतिविषयक ज्ञान की बहुत बड़ी उपलब्धि श्रीजीव ने अपने जीवन में प्राप्त की थी। श्रीजीव ने प्रत्येक सन्दर्भ के आरम्भ में—

तस्याद्यं ग्रन्थनालेख्यं क्रान्तव्युत्क्रान्तखण्डितम्।
पर्यालोच्याथ पर्यायं कृत्वा लिखति जीवकः॥

यह उल्लेख करते हुए श्रीगोपालभट्ट के इस प्रारम्भिक दार्शनिक ग्रन्थ को क्रमवद्ध रूप से पूर्ण कर वैष्णव जगत् के सामने रखा। इसके पूर्व भी नष्टप्राय आर्ष संहिताओं का विभिन्न आचार्यों द्वारा प्रतिसंस्कार किया जा

चुका था। इसी शृङ्खला में आयुर्वेद के 'अग्निवेश-तन्त्र'[१] का प्रतिसंस्कार महर्षि चरक और चरक द्वारा प्रतिसंस्कारित चरक संहिता का दृढवल[२] द्वारा प्रतिसंस्कार* हुया था, इसीप्रकार चन्द्रट द्वारा सुश्रुत के पाठों का शोधन कर उसका वर्त्तमान स्वरूप दिया गया, यह इतिहास प्रसिद्ध विषय है इसीको श्रीजीवगोस्वामीचरण ने इस श्लोक द्वारा व्यक्त किया है—

कोऽपि तद्वान्धवः भट्टः दक्षिणद्विजवंशजः।
विविच्य व्यलिखित् ग्रन्थं लिखितात् वृद्धवैष्णवैः॥

—तत्त्व-सन्दर्भ

"तद्वान्धवः" शब्द की व्याख्या करते हुए श्रीबलदेव विद्याभूषणपाद ने 'तत्व-सन्दर्भ' की टीका में—

तयोः रूपसनातनयोः बन्धुः गोपालभट्ट इत्यर्थः।

श्रीरूप सनातन के बन्धु श्रीगोपलभट्ट किया है। षट्सन्दर्भ की रचना श्रीगोपालभट्ट द्वारा हुई है इसे श्रीजीवगोस्वामीचरण ने 'क्रमसन्दर्भ' ग्रन्थ में इस श्लोक द्वारा—

श्रीभागवतसन्दर्भान् श्रीमद्वैष्णवतोषणीम्।
दृष्टवा भागवतव्याख्या लिख्यतेऽत्र यथामतिः॥

—क्रम-सन्दर्भ ३

"मैं श्रीगोपालभट्ट कृत 'भागवत-सन्दर्भ' और श्रीसनातन कृत 'वैष्णव तोषणी' को देखकर ही श्रीमद्भागवत-व्याख्यापरक 'क्रम-सन्दर्भ' लिख रहा हूँ" यह लिखा है साथ ही सन्दर्भों की इस सारगर्भित रचना को सर्वोत्कृष्ट रूप प्रदान करते हुए 'सर्वसम्बादिनी' नामक मौलिक व्याख्यापरक ग्रन्थ का भी श्रीजीव ने प्रणयन किया। अपनी रचना को देखकर रचना नहीं की जाती रचना अन्य रचनाकार की ही देखकर की जाती है इसी को स्पष्ट शब्दों में श्रीजीवचरण ने व्यक्त किया है।

१—अग्निवेशकृते तन्त्रे चरकप्रतिसंस्कृते।

२—तानेता न कापिलवलः शेषान् दृढवलोऽकरोत।
तन्त्रस्यास्यमहार्द्धस्य पूरणार्थं यथातथम्॥

—चरक-चि० ३०।२९०

* विस्तारयति लेशोक्तं सङ्क्षिप्यतिविस्तरम्।
संस्कार्त्ता कुरुते तन्त्रं पुराणञ्च पुनर्नवम्॥
सुश्रुते पाठशुद्धिश्च तृतीयां चन्द्रटो व्यधात्। (चिकित्सा-कलिका)

षट् सन्दर्भ रचना में श्रीगोपालभट्टगोस्वामीपाद ने भगवान् श्रीकृष्ण की ऐकान्तिक प्रेमा भक्ति, परमात्म, जीव, माया के वास्तविक स्वरूप का विशद विवेचन करते हुये विश्व वैष्णव जगत् को "अचिन्त्य भेदाभेदवाद" की एक ऐसी अनुपम निधि अर्पित की जिसका मूल्याङ्कन नहीं किया जा सकता। श्रीगोपालभट्ट की यह देन विशुद्ध वैष्णवता के इतिहास पृष्ठ पर स्वर्णाक्षरों से सदा अङ्कित रहेगी। आज भी सम्पूर्ण विश्व वैष्णव मानव इनकी इस अपूर्व देन के लिये चिरकृतज्ञ और श्रद्धावनत है।

षट्सन्दर्भ को यह नवायितरूप श्रीगोपालभट्ट द्वारा श्रीचैतन्यदेव के अप्रकट काल १५६४ वैक्रमीय के पश्चात् दिया गया।

कलियुगैकमात्र उपास्य भगवदवतार श्रीचैतन्यदेव को उन्हींके* आप्त प्रामाणिक प्रिय ग्रन्थ श्रीमद्भागवत के श्लोक द्वारा संस्तवन का सर्वप्रथम सौभाग्य श्रीगोपालभट्ट को है।

कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्।
यज्ञै: सङ्कीर्त्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः॥

—श्रीमद्भागवत, ११।५।३२

जो साक्षात् कृष्ण-स्वरूप होकर अपने ही 'कृष्ण' वर्ण अर्थात् शब्द का सदा स्मरण करते रहते हैं, जिनकी अङ्ग कान्ति अकृष्ण अर्थात् गौर है और जो अपने श्रीनित्यानन्द, श्रीअद्वैत अङ्ग, श्रीवास, उपाङ्ग अविद्यान्धकार-नाशक श्रीहरिनाम अस्त्र, गोविन्द, गदाधर पार्षदों के सहित मानवमात्र के हृदय में विराजित हो विशुद्ध प्रेमाभक्ति के सञ्चारक हैं उन परमकारुणिक भगवदवतार श्रीकृष्णचैतन्यात्मक विग्रह का विद्वद्वृन्द श्रीहरिनाम सङ्कीर्त्तन-यज्ञ द्वारा वन्दन तथा अर्चन करते हैं, इतना कहकर ही वह सन्तुष्ट नहीं हुए उन्होंने इसके ही अनुरूप मङ्गलात्मक श्लोक की भी रचना की—

---

* आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं,
रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्,
श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्राग्रहः नः परः॥

भावानुवाद—

सदा नन्दनन्दन ही आराध्य हैं वास वृन्दाविपिन वर धराधाम का।
व्रजवधूवर्गकल्पित उपासन परम रागरञ्जित दिवारात्रि घनश्याम का॥
प्रमाणित वचन भागवत के विमल वस्तुतः सार है प्रेम निष्काम का।
'गौर' सुन्दर का मत सर्वथा ग्राह्य यह, भजन कलि में केवल है हरिनाम का॥

अन्तः कृष्णं वहिर्गौरं दर्शिताङ्गादिवैभवम्।
कलौ सङ्कीर्त्तनाद्यैः स्म कृष्णचैतन्यमाश्रिताः॥

—तत्त्व-सन्दर्भ २

अन्तर में कृष्ण और बाहर गौर अर्थात् जो साक्षात् घन-श्यामल श्रीकृष्ण स्वरूप होते हुये भी श्रीराधा की गौरभाव कान्ति अङ्गीकार कर गौरचन्द्र रूप में अवतरित हुए हैं, जिन्होंने सम्पूर्ण विश्व मानव के सामने अपने अङ्ग, उपाङ्गों की विशाल वैभवता प्रदर्शित की है उन शतसहस्र सम्प्रदायाधिदैवत प्रेम एवं करुणावतार श्रीमन्महाप्रभु कृष्णचैतन्यदेव की हम श्रीहरिनाम सङ्कीर्त्तन साधन द्वारा शरणापन्न होते हैं।

१. तत्त्व-सन्दर्भ—

इस प्रथम सन्दर्भ में आचार्य श्रीगोपालभट्टचरण ने प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, प्रमाणों की अपेक्षा शब्द की प्रधानतः प्रामाणिकता स्वीकार की है, कारण अन्यान्य प्रमाण निम्न—

भ्रम (एक वस्तु में दूसरे का ज्ञान) प्रमाद (अनवधानता) विप्रलिप्सा (प्रतारणा) कारणपाटव (इन्द्रियों की अपटुता) दोषों द्वारा दूषित होने से आप्त प्रमाण रूप में स्वीकार योग्य नहीं है।

२. भगवत्-सन्दर्भ—

इस द्वितीय सन्दर्भ में श्रीमद्भागवतवर्णित—

वदन्ति तत् तत्त्वविदस्तं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मे ति परमात्मेति भगवानितिशब्द्यते॥

—श्रीमद्भागवत १।२।११

ब्रह्म, परमात्म एवं भगवान् के अद्वय ज्ञानस्वरूप का वास्तविक विवेचन है। भगवान् की शक्ति एवं गुण उनके स्वरूप में है अतः इनका ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान एवं वैराग्य षड्गुणयुक्त भगवान् के साथ नित्य संयोग और समवाय सम्बन्ध है। भगवान् की त्रिविध स्वरूपा (परा) तटस्था (जीवात्मका) वहिरङ्गा (माया) शक्तियों का शक्तिमान् के साथ सम्बन्ध विचित्र रूप से है।

३. परमात्म-सन्दर्भ—

इस तृतीय सन्दर्भ में परमात्मा के साथ जीव और प्रकृति का वास्तविक सम्बन्ध, जीव की भगवदुन्मुखता एवं पराङ्मुखता, चिदंश जीव का

परमात्मा के साथ क्षेत्रगत विभिन्नता होने पर भी उसका एकत्व स्वरूप जो अनेक कर्म विपाकों के कारण अनेकत्व रूप में दृष्टिगोचर होता है, का वास्तविक विवेचन है।

४. श्रीकृष्ण-सन्दर्भ :—

इस चतुर्थ सन्दर्भ में श्रीगोपालभट्टगोस्वामी ने—

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।

(श्रीमद्भागवत १।३।२८)

श्रीमद्भागवत महापुराण के आधार पर श्रीकृष्ण की अद्वय ज्ञानवत्ता निर्दिष्ट की है। उनके मत में बाराह, नृसिंह आदि अवतार, ब्रह्मा, विष्णु, शिव भगवान् श्रीकृष्ण के ही प्रकाश हैं। श्रीकृष्ण में ही उनकी निजी आह्लादिनी शक्ति का विकास होने के कारण वे स्वयं अवतारी हैं। इसके साथ ही श्रीकृष्ण का यशोदानन्दनत्व, चिन्मय वृन्दावन धाम, गोपगणों की नित्य सख्यता, रुक्मिणी आदि महिषियों की अपेक्षा श्रीकृष्ण प्रेयसी गोपाङ्गना एवं महाभावस्वरूपिणी श्रीराधिका की सर्वोत्कृष्टता का भी विवेचन किया गया है।

५. भक्ति-सन्दर्भ :—

इस पञ्चम सन्दर्भ में आचार्यपाद ने सेवार्थक भक्ति का लक्षण, विभाजन एवं प्राधानत्व पर प्रकाश डाला है। जीव बिना गुरू उपदेश के भगवत् भक्तिमार्गगामी नहीं हो सकता, कारण जीव माया वशीभूत हो भगवान् से विमुख रहता है। भगवत् प्राप्ति के लिये मन प्राण में भक्ति का उद्रेक आवश्यक है। वही भगवद्भक्ति श्रेष्ठ है जिसमें कामना और बाधायें न हों। भगवत् प्राप्ति ही मुक्ति का साधन है जो भक्ति द्वारा सम्भव है, योग, ज्ञान, कर्म आदि द्वारा भगवद् दर्शन उतना सुलभ नहीं है जितना कि भक्तिमार्ग के अवलम्बन से प्राप्त होता है। भगवत्प्राप्ति का एकमात्र सर्वोपरि साधन श्रद्धा और सज्जनों का सङ्ग है जो बिना भगवान् की अनुकम्पा के प्राप्त नहीं होता। इसके साथ ही आध्यात्मिक तत्वोपदेशक, शिक्षा तथा मन्त्रदाता गुरू के तीन प्रकार भेद जिनमें शिक्षा, श्रवण गुरू का अनेकत्व होने पर भी मन्त्र गुरू के एकत्व का भी विवेचन किया गया है।

६. प्रीति-सन्दर्भ :—

इस अन्तिम सन्दर्भ में श्रीगोपालभट्टगोस्वामीपाद ने मुक्ति का वास्त-

विक स्वरूप श्रीकृष्ण प्रेम, एवं भक्तिरसजनित अनिर्वचनीय आनन्दका विवेचन किया है। मानव सदा से ही सुख प्राप्ति और दुःख निर्वृत्ति चाहता है जो बिना भगवत् प्रेम के नहीं मिलती। भगवान् से मिलकर अपना सब कुछ उनके श्रीचरणों में समर्पण करना ही जीव के लिये एकमात्र कल्याणपथ है जिसके बल पर वे मुक्ति तक को ठुकरा देते हैं। उनका चित्त भगवान् के प्रेम से भर उठता है तब वे उन्मत्तवत् नाचते, गाते, हँसते और रोते हैं। उनकी वाणी का स्वर अवरुद्ध होकर सम्पूर्ण शरीर रोमाञ्चित हो उठता है यही तो वास्तविक प्रीतिरस है जिसको पीकर मन, प्राण भावविभोरित हो उठते हैं, इसीका ही पूर्णतः परिपाक इसमें किया गया है।

षट् सन्दर्भों की रचना का मुख्यतम उद्देश्य श्रीमद्भागवत में अवर्णित सिद्धान्तों को प्रस्फुटित रूप में रखना था जिसे श्रीगोपालभट्टगोस्वामीपाद ने पूर्ण निष्ठा के साथ सम्पन्न किया है।[1] इसीको श्रीजीवगोस्वामी ने स्पष्ट करते हुए षट् सन्दर्भकर्त्ता के रूपमें श्रीगोपालभट्टगोस्वामी की सार्वभौमता स्वीकार की है और सङ्ग्रहजन्य अनवधानता दोष अपने पर लिया है।

षट् सन्दर्भ में द्रविड़, दक्षिणदेश, श्रीरामानुज, मध्व, तत्त्ववादी, भगवद्भक्तिविलास, बञ्जुली आदि उद्धरणों से श्रीगोपालभट्ट की दाक्षिणात्यता-स्वतः सिद्ध हो रही है अतः प्रत्येक सन्दर्भ के आरम्भ में—

तौ सन्तोषयता सन्तौ श्रीलरूपसनातनौ।
दाक्षिणात्येन भट्टेन पुनरेतद्विविच्यते॥

श्रीरूप सनातन गोस्वामी के सन्तोषार्थ दाक्षिणात्य श्रीगोपालभट्ट द्वारा विरचित षट् सन्दर्भों की पुनः बिवेचना की गई यह परिवर्णन मिलता है।

श्रीगोपालभट्ट ने जिन परिष्कृत सिद्धान्तों की स्थापना की थी उसके आस्वादन के लिए एक ब्रज-रसपरक पृथक् ग्रन्थ निर्माण की श्रीजीवगोस्वामी-चरण को आवश्यकता प्रतीत हुई, उस समय तक समस्त वृद्ध श्रीगोस्वामी-गण तिरोहित हो चुके थे। श्रीजीवके लिये चारों ओर घोर अन्धकार, श्रीकुण्ड व्याघ्र के मुख समान विकराल, गोवर्द्धन की कलित कन्दरायें अजगर सी डराबनी, समस्त वृन्दावन निर्जन सा दिखाई देने लगा। मस्तक से एक-एक

१- यदत्र स्खलितं किञ्चित् ज्ञायतेऽनवधानतः।
२- ज्ञेयं न तत्तत्कर्तॄणां समाहर्तुं ममैव तत्॥ (क्रमसन्दर्भ ४)

कर सारे अवलम्ब उठते जा रहे थे। अभी इस श्रावण कृष्णा पञ्चमी को श्रीगोपालभट्टगोस्वामी भी अन्तर्हित हो गये। वियोग की दुर्दान्त दशा ने श्रीजीव को झकझोर कर रख दिया, इधर वृद्धावस्था ने श्रीजीव के मनस्ताप को भी बहुत कुछ बढ़ा दिया। वर्त्तमान में श्रीगोपालभट्ट के प्रमुख शिष्यों में एक श्रीनिवास थे, जिन्हें श्रीजीवगोस्वामी द्वारा 'आचार्य' पदवी से अलंकृत किया गया था। इस समय वे श्रीमाध्वगौड़ेश्वर, सम्प्रदाय के एक मात्र आशा केन्द्र थे। उनके द्वारा की गई मर्यादित वैष्णवाचार, भजन साधन प्रणाली एवं लीलाग्रन्थों के प्रकाशन सम्बन्धित ऐसी साम्प्रदायिक सेवायें थी जिन्हें भुलाया नहीं जा सकता। वे श्रीगोपालभट्टगोस्वामी के अन्यतम गण थे। समय-समय पर श्रीजीवगोस्वामी द्वारा वृन्दावन[1] से श्रीगोस्वामीगणों द्वारा विरचित ग्रन्थ संशोधनार्थ श्रीनिवासाचार्य के समीप बङ्गाल भेजे जाते थे एव वहाँ से संशोधित रूप में प्रचारार्थ यहाँ आते थे। वर्षो तक यह क्रम चलता रहा। श्रीगोपालभट्ट की आजीवन साधनायें श्रीरूप सनातन के सन्तोष के लिये थी. इसीको श्रीजीव ने अपनी रचनाके प्रारम्भ में उन्हीं अपने पितृव्य के प्रिय बान्धव श्रीगोपालभट्ट की अनुपम कृति[2] श्रीकृष्णसंदर्भ को आधार मानकर उनके अन्यतम गण श्रीनिवासाचार्य के आनन्द के लिये श्रीगोपालभट्ट के नाम पर व्रजलीलारस-पूरक गद्य पद्यात्मक अनुपम काव्यग्रन्थ 'श्रीगोपालचम्पू' का निर्माण किया, जैसा कि इस श्लेषात्मक वर्णन से ज्ञात होता है।

श्रीकृष्ण ! कृष्णचैतन्य ! ससनातनरूपक !
गोपाल ! रघुनाथाप्त ! व्रजवल्लभ ! पाहि माम् ॥
श्रीगोपालगणानां गोपालानां प्रमोदाय ।
भवतु समन्तादेषा नाम्ना गोपालचम्पूर्या ॥

१- (क) सम्प्रति शोधयित्वा विचार्य च वैष्णवतोषणी, दुर्गम-सङ्गमनी, श्रीगोपालचम्पू पुस्तकानि तत्रामीभिर्नीयमानानि सन्ति ततः पुस्तकविचारयोः **शोधनाय च व्यतिषक्तव्यमेभिः ।**

(ख) **उत्तरचम्पू, हरिनामामृतानां शोधनानि किञ्चिदवशिष्टानि वर्तन्त इति वर्षाश्चेति सम्प्रति न प्रस्थापितानि पश्चात्तु दैवानुकूल्येन प्रस्थाप्यानि ।**

(श्रीनिवासाचार्य के समीप श्रीजीवगोस्वामीं के प्रेषित पत्र)

भक्तिरत्नाकर १४ तरङ्ग ।

२- यन्मया कृष्णसन्दर्भे सिद्धान्तामृतमाचितम् ।

आज वैशाखी विभावरी है, पूर्णचन्द्र अपनी स्निग्ध सान्द्रज्योत्स्ना धवल शीतल किरणों से भक्त कुमुदकुल को आह्लादित कर रहा है। आज से ठीक पचास वर्ष पूर्व श्रीगोपालभट्ट के प्रेम वशीभूत हो शालग्राम शिला से अपूर्व श्रीराधारमण विग्रह का आविर्भाव हुआ था उस स्वर्णिम-स्मृति को चिरस्थायी करने के लिये आज के ही दिन श्रीजीवगोस्वामी ने 'गोपाल चम्पू' की रचना समाप्त की।[१]

भगवद्भक्ति-विलास —

बहुत दिनों से श्रीगोपालभट्ट के मस्तिष्क में दक्षिण भारतीय प्राचीन वैष्णव रीति परम्परा को उत्तर भारतीय प्रचलित वैष्णव रीति परम्परा के सांचे में ढाल कर एक समन्वयात्मक गौड़ीय वैष्णव स्मृति का प्रामाणिक सङ्कलन प्रस्तुत किया जाय, यह विचार छाया हुआ था।

श्रीचैतन्यदेव ने भी इस विषय को विश्व वैष्णव समाज के सामने विस्तृत रूप से रखने के लिये श्रीगोपालभट्ट को अपनी दक्षिण यात्रा निवास के समय स्वनिर्णीत निर्भ्रान्त-सिद्धान्तों के साथ बहुत कुछ समझाया था।

इस समय एक सर्वश्रेष्ठ वैष्णव स्मृति सङ्कलन की आत्यान्तिक आवश्यकता थी। इस कार्य के सम्पादन के लिये एकनिष्ठ ब्रह्मचारी के रूप में श्रीगोपालभट्ट ही एकमात्र ऐसे प्रौढ़ विद्वान् थे, जो इस कमी की पूर्ति कर सकते थे। गौड़ीय विज्ञ वैष्णवजनों को श्रीगोपालभट्ट से साम्प्रदायिक समुन्नति की बड़ी आशायें थीं, अन्त में वैष्णवों के आग्रह एवं श्रीसनातनगोस्वामी के अनुरोध को स्वीकार कर[२] ज्येष्ठ शुक्ला नवमी १५९४ वैक्रमीय को श्रीगोपालभट्टगोस्वामीपाद ने प्रचलित पारम्परिक सिद्धान्तगत वैशिष्ठियों एवं वैचित्रियों के साथ सर्वथानुकूल स्मृत्यर्थक नूतनतम विधायों का सामञ्जस्यपूर्ण समाधान करते हुये विश्व की विशुद्ध स्मृति के रूप में 'भगवद्-भक्तिविलास' की रचना का समारम्भ किया। यह वह समय था जब आये

१- गोपालचम्पू नाम तार ग्रन्थ महाशूर।
नित्य लीला स्थापने जाहे व्रजरसपूर ।। (चै० च० म० १-३)
पवनकलामिति सम्बद्विन्दन् (१६४९) वृन्दावनान्तस्थ:।
जीव: कश्चन चम्पूं सम्पूर्णाङ्गीचकार वैशाखे ।।

२- वेदाङ्कबाणेन्दु मितेऽमितेज्ये ज्येष्ठे सिते शस्ततिथौ नवम्याम्।
वृन्दावने केलिकदम्बमूले गोपालभट्टश्चिनुते विलासान् ।।

दिन राज्यविप्लवों के कारण भारतीय साहित्य ग्रन्थ विनष्ट किये जा रहे थे, अनेक विशाल ग्रन्थागार अग्नि की उच्चतम दीप्त शिखाओं में समाते जा रहे थे, उस समय निर्जन वृन्दावन में सम्पूर्ण भारतीय दर्शन एवं पुराणों का एकत्रित संग्रह सर्वथा असम्भव था। मसी, लेखनी, लेखन-पत्र की समस्यायें सामने थी किन्तु इतना कठिन कार्य होने पर भी स्थिरनिश्चयव्रती गोपाल-भट्ट तनिक विचलित नहीं हुये प्रत्युत केवल अपनी अप्रतिम ज्ञान प्रज्ञा के वल पर वैष्णवों के परमावश्यक नित्य नैमित्तिक विषयों पर[1] वृहद् विद्वान् वैष्णवों की विचारधाराओं का विश्लेषणात्मक विशद शास्त्रीय विवेचन करते हुये २१७ प्रामाणिक आगम निगमों के उदाहरण वाक्यों के सहित 'स्मृति की तो नामतः यह विशेषता है कि उसे स्वस्थ स्मृति के आधार पर रखा जाय', इस सिद्धान्त का अनुसरण कर प्रायः दो वर्ष के अथक परिश्रम के पश्चात् इस विशुद्ध वैदिक वैष्णव स्मृति विषयक २० विलासों में पूर्ण महत् ज्ञान-ग्रन्थ को[2] चैत्र शुक्ला द्वादशी १५९६ वैक्रमीय की प्रारम्भिक पारण वेला में समापन कर श्रीसनातनगोस्वामी के हाथों में समर्पित किया।

श्रीसनातन, रूप, रघुनाथदास, लोकनाथ, काशीश्वर, वाणी कृष्णदास जो श्रीगोपालभट्ट के निकटतम सहयोगियों में थे, इस अभूतपूर्व वैष्णव स्मृति सङ्कलन को देख विमुग्ध हो उठे। वैष्णवों की चिरकालीन वासना आज फलवती हुई। भविष्य में इसी के माध्यम से सम्प्रदायगत पूजन, उपासन, एकादशी एवं उत्सव आदि विषयों का निर्णय हो, इसे विश्व वैष्णवराजसभा द्वारा स्वीकृत कराया गया। इसके सुदृढ़ सिद्धान्तों को अनुशासन के बन्धन में मर्यादित किया गया! इसके विरुद्धाचरण करने वाले चाहे कितने ही आप्त व्यक्ति क्यों न हों, वे वैष्णवता की श्रेणी से सदा वहिष्कृत रखे जाँय यह सर्वसम्मत निर्णय लिया गया।

गौड़ीय वैष्णव साहित्य में इसके द्वारा जो समृद्धियाँ एवं उपलब्धियाँ हुई हैं, उसका मूल्याङ्कन नहीं किया जा सकता। इसकी सबसे बड़ी उपलब्धि इससे अधिक और क्या होगी कि रचना काल से लेकर आज तक इस 'भगवद्-भक्तिविलास' स्मृति के माध्यम से ही बिभिन्न वैष्णव सम्प्रदायों की उपासना

---

१. आवश्यकं कर्म विचार्य साधुभिः,
साद्धं समाहृत्य समस्तशास्त्रतः ॥ (भ० भ० वि० १।१)

२. ऋत्वङ्कभूशरवर्षे चैत्रे दमनकार्पणे।
भगवद्भक्तिबिलासानां पूर्णता सूर्यजातटे ॥

तथा सिद्धान्तगत परम्परा का निर्णय होता चला आ रहा है। वास्तव में 'भगवद्भक्तिबिलास' उस मर्यादित व्रजरस राग शैली का नित्य नियमगत सर्वोत्कृष्ट सर्वाङ्ग सुन्दर स्मृति सङ्कलन है जिसमें श्रीचैतन्यदेव की मनोभीष्ट भावना का पूर्णतः प्रतिपादन हुआ है।

'भगवद्भक्तिविलास' की इससे अधिक और क्या प्रामाणिकता होगी कि १५९८ वैक्रमीय में रचित श्रीरूपगोस्वामी के 'भक्तिरसामृतसिन्धु', गदाधर के 'कालसार' तथा रघुनन्दन के स्मृतितत्त्वनिर्णय ग्रन्थों में उद्धरण रूप में इसका समुल्लेख मिलता है।

उड़ीसा नरेश प्रतापरुद्र द्वारा श्रीचैतन्यदेव के अन्तर्द्धान के एक दशक मध्य श्रीगोपालभट्ट के अध्ययन गुरु पितृव्य श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती जिनका कि नामोल्लेख श्रीगोपालभट्ट ने 'भगवद्भक्तिविलास' के प्रारम्भ में किया है, के नाम पर 'सरस्वती-विलास' नामक स्मृतिग्रन्थ का प्रणयन किया गया। हिन्दी, बङ्गला, उड़िया एवं असमिया आदि भाषाओं में इसके क्रमबद्ध पद्यानुवाद किये गये, जिससे इसकी महत्ता और प्रामाणिकता पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है।

इसमें कुछ ऐसे भी प्रकरण हैं, जिनका वैष्णव सिद्धान्तों से सामञ्जस्य नहीं है तथापि तात्कालिक परिस्थितियों के कारण विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। उदाहरण के रूप में शिव चतुर्दशी व्रत विधान ऐकान्तिकनिष्ठ वैष्णवों के लिये परमावश्यक नहीं है तथापि उस समय व्रज में इसका विशेष रूप से प्रचलन एवं श्रीकृष्णप्रपौत्र वज्रनाभ द्वारा व्रज में गोपेश्वर (वृन्दावन), कामेश्वर (कामवन), भूतेश्वर (मथुरा) तथा चकलेश्वर (गोवर्द्धन) इन चार विशिष्ट शिवमूर्तियों का प्रतिष्ठापन एवं आराधन को दृष्टिकोण में रखते हुये वर्णन किया गया है। इसी प्रकार रक्षाबन्धन में :—

'व्रजराजकुमारत्वात् केचिदिच्छन्ति साधवः।'

लिखकर इसके तात्कालिक महत्व को प्रदर्शित किया गया है।

यद्यपि इसमें स्थापत्य, देवमन्दिर प्रतिष्ठा, भगवन्मूर्ति के स्वरूपगत नैसर्गिक शारीरिक अवयवों का वर्णन मिलता है तथापि श्रीराधाकृष्ण के युगल विग्रहों के निर्माण तथा पूजन का समुल्लेख नहीं मिलता इसका मुख्यतम कारण यह है कि 'भगवद्भक्तिविलास' रचना के समय तक श्रीगोविन्द, गोपीनाथ, मदनमोहन विग्रहों का प्रकाश हो चुका था किन्तु उस

समय [1]केवलमात्र श्रीकृष्ण की ही आराधना होती थी। श्रीकृष्ण के वाम पार्श्व में श्रीराधिका के विग्रह की स्थापना श्रीनित्यानन्दपाद की पत्नी श्रीजाह्नवीदेवी की प्रेरणा से श्रीप्रतापरुद्र के पुत्र श्रीपुरुषोत्तम जाना द्वारा प्रेषित श्रीराधा की मूर्तियों द्वारा हुई थी। इसे ही श्रीचैतन्यचरितामृतकार ने–

'राधासङ्गे यदा भाति तदा मदनमोहनः'।

लिखकर राधाकृष्ण के युगल विग्रह का समुल्लेख किया है। दूसरा यह भी कारण है कि राज्य विप्लवों के कारण श्रीगोस्वामीगण अपने प्राणोपम आराध्य विग्रहों को प्रकाश में नहीं लाना चाहते थे।

श्रीचैतन्यचरितामृतकार ने—

प्रभु आज्ञा दिल वैष्णव स्मृति करिवारे।
मुई नीच जाति किछु ना जानि आचार॥
मोह हैते कैछे हय स्मृति परचार।
सूत्र करि दिशा यदि कर उपदेशे॥
—चै० च० मध्य २४।२१७

इन वाक्य प्रमाणों द्वारा ज्ञात होता है कि श्रीचैतन्यदेव ने काशी-प्रवास के समय श्रीसनातनगोस्वामी को भी वैष्णव स्मृति सङ्कलन की आवश्यकता प्रदर्शित करते हुये सूत्र रूप से इसका दिग्दर्शन कराया था किन्तु अन्यान्य श्रीकृष्ण लीलापरक ग्रन्थों के प्रणयन के कारण उनके समीप इतना समय नहीं था जो वे इस महत्वपूर्ण स्मृति ग्रन्थ का सम्पादन कर सकते, उन्होंने इस अभाव की पूर्त्ति के लिये श्रीगोपालभट्ट को चुना और श्रीचैतन्यदेव प्रदत्त ज्ञान सूत्रों के संक्षिप्त सङ्कलन को उन्हें सौंपते हुये एक वृहत् स्मृति-ग्रन्थ रचना के लिये प्रेरणा दी। इसी को श्रीगोपालभट्टगोस्वामीचरण ने भगवद्भक्तिविलास के प्रारम्भ में—

भक्तेर्विलासांश्चिनुते प्रवोधानन्दस्य शिष्यः भगवत् प्रियस्य।
गोपालभट्टः रघुनाथदासं सन्तोषयन् रूपसनातनौ च॥
(भ० भ० वि० १।२)

श्रीरघुनाथदास तथा श्रीरूप सनातन के सन्तोषविधानार्थ इसकी रचना की गई इसका समुल्लेख मिलता है। श्रीगोपालभट्ट की व्रजस्थिति-कालीन रचनाओं का वास्तविक कारण श्रीरूप सनातन का सन्तोष था जिसे

---

१. श्रीमन्मदनगोपालं वृन्दावनपुरन्दरम्।
श्रीगोविन्दं प्रपद्येऽहं दीनानुग्रहकारकम्॥ (वृ० वै० तो० १)

उन्होंने अपनी प्रत्येक रचनाओं के आरम्भ में उल्लेख किया है। इसकी दिग्दर्शिनी टीका में भी टीकाकार ने इसको और अधिक स्पष्ट करते हुये—

'श्रीगोपालभट्टस्यापि तादृकत्वं बोद्धव्यम्'

'श्रीमथुरानाथस्य श्रीकृष्णस्य भगवतः पादाब्जे विषये श्रीगोपालभट्टस्य'—

मूल ग्रन्थकार के रूप में श्रीगोपालभट्ट का नामोल्लेख किया है। साथ ही प्रत्येक विलास की पुष्पिका में—

'इति श्रीगोपालभट्टविलिखते भगवद्भक्तिविलासे' से भी श्रीगोपालभट्ट की रचना का बोध होता है। 'श्रीहरिभक्तिविलासश्च तट्टीका दिग्प्रदर्शिनी' द्वारा यह ज्ञात होता है कि 'हरिभक्तिविलास' तथा 'भगवद्भक्तिविलास' तथा उस पर की हुई 'दिग्प्रदर्शिनी' तथा [1]'दिग्दर्शिनी' टीकायें पृथक्-पृथक् रचनायें हैं और जिस प्रकार 'भक्तिरसामृतसिन्धु' को 'हरिभक्तिरसामृतसिन्धु' संज्ञा दी गई है, इसी प्रकार 'भगवद्भक्तिविलास' को भी 'हरिभक्तिविलास' माना गया है। वास्तव में यह दोनों पृथक्-पृथक् रचनायें हैं। वर्तमान में जो 'हरिभक्तिविलास' के नाम से प्रचलित स्मृति ग्रन्थ है वह वास्तव में 'भगवद्भक्तिविलास' है जिसके एकमात्र सङ्कलनकार श्रीगोपालभट्टगोस्वामी हैं। 'भगवद्भक्तिविलास' की दिग्दर्शिनी टीका रचनाकार के 'श्रीमन्महानुभावैश्च भक्तिरसार्णवे विशेषेण विविच्य' आदि अनेक उद्धरण देते हुये सार्वभौम श्रीमधुसूदनगोस्वामीपाद ने नवद्वीप से प्रकाशित[2] (११। ३८०) विष्णुप्रिया गौराङ्ग मासिक पत्रिका में श्रीगोपालभट्ट के शिष्य श्रीगोपीनाथ को टीकाकार माना है, कारण श्रीसनातनगोस्वामीपाद द्वारा श्रीरूप के लिये श्रीमन्महानुभाव शब्दोल्लेख उचित प्रतीत नहीं होता।

इसके अतिरिक्त स्वयं श्रीसनातनगोस्वामीपाद ने अपनी श्रीभागवत की वृहद् वैष्णवतोषिणी टीका में अपने परम सुहृद् श्रीगोपालभट्टगोस्वामी की—

राधाप्रियप्रेमविशेषपुष्टः गोपालभट्टः रघुनाथदासः।
स्यातामुभौ यत्र सुहृत् सहायौ कोनाम सोऽर्थः न भवेत् सुसिद्धः॥

(वृ० वै० तो० १३)

सख्यता का उल्लेख करते हुये हरिभक्तिविलास और भगवद्भक्तिविलास को पृथक्-पृथक् रचनायें मानी है—

---

१. लिख्यते भगवद्भक्तिविलासस्य यथामतिः।
टीकादिग्दर्शिनीनाम तदेकांशार्थबोधिनी॥ (भगवद्भक्तिविलास टीका)

२. 'विष्णुप्रियागौराङ्ग' १३३० वङ्गाब्द आश्विन कार्तिक-पौष के अङ्क

'हरिभक्तिविलासे' ऐकान्तिक-लक्षणादौ बहुशः विवृतमेवास्ति । २६।२३।२५
एतच्च 'भगवद्भक्तिविलासे' 'ऐकान्तिक-लक्षणादौ विवृतमेवास्ति' । २०।३४
'श्रीभगवद्भक्तिविलासे' लिखित एव । ३६।४०
अस्यार्थः 'भगवद्भक्तिविलास'टीकातो ज्ञेयः । ५१।६३
अन्य 'द्भगवद्भक्तिविलास' टीकायां कथामाहात्म्ये—१।४
अस्यार्थः 'श्रीभगवद्भक्तिविलास' टीकायां विवृतमेव । ८६।५३

बृहत् वैष्णवतोषणी की रचना समाप्ति काल १६११ वैक्रमीय वर्ष है इसमें 'भगवद्भक्तिविलास' की तदेकांशार्थवोधिनी 'दिग्दर्शिनी' टीका का समुल्लेख होने से यह ज्ञात होता है कि मूल और टीका रचनाकालीन वर्षों में विशेष अन्तर नहीं था । तप्तमुद्रा धारण का प्रचलन श्रीरामानुज सम्प्रदाय में विशेष रूप से होने पर भी माध्वगौड़ेश्वर सम्प्रदाय में प्रायः इसका प्रचलन नहीं था किन्तु श्रीगोपालभट्टगोस्वामी ने वैष्णवों की नित्य प्रेमभक्तिप्रदायक

'तापः पुण्ड्रं तथा नाम मन्त्रो यागश्च पञ्चमः ।
अमी हि पञ्च संस्काराः परमैकान्तिहेतवः ॥'

पञ्चसंस्कारों की परमैकान्तिता प्रदर्शित करते हुये अपने पिता श्रीरामानुज सम्प्रदायानुयायी वेङ्कटाचार्य

'बहुयश्च वेङ्कटाचार्यपादप्रभृतिभिः वुधैः ।
श्रुतयः स्मृतोऽप्यत्र विख्याताः लिखिताः पराः ॥'
—भ० भ० वि० १५।३९

द्वारा विलिखित तप्तमुद्रा-धारणप्रकरणीय स्मृति का भी समुल्लेख होने से यह स्पष्टतः ज्ञात होता है कि इस 'भगवद्भक्तिविलास' स्मृति ग्रन्थ जिसे कि प्रचलित रूप में 'हरिभक्तिविलास' कहा जाता है के सङ्कलनकार श्रीगोपाल-भट्टगोस्वामी हैं ।

सत्क्रियासारदीपिका—

'भगवद्भक्तिविलास' में प्रायः धनाढ्य सद्गृहस्थाश्रमी जनों के आवश्यक नित्य, नैमित्तिक कृत्यों का परिवर्णन होने पर भी उसमें विवाहादि वैदिक संस्कार पद्धतियों का समुचित समावेश नहीं हुआ था । इससे पूर्व श्रीअनिरुद्ध, भीम, गोविन्दभट्ट द्वारा निर्मित वैदिक पद्धतियों में वर्णाश्रमा-न्तर्गत सर्वहारा निम्नेत्तर ऐकान्तिक भगवच्चरणाश्रयी जातिबर्ग के लिये कोई भी ऐसा प्राविधान नहीं था जो उस दिग्भ्रमितवर्ग को वास्तविक वैष्णवता के मार्ग पर ला सके । इस अभाव की पूर्त्ति के लिये श्रीगोपालभट्ट-

गोस्वामीपाद ने पूर्व प्रमाणित ५६ शास्त्रीय ग्रन्थों के उद्धरणों को देकर 'सत्क्रियासारदीपिका' की रचना की। यह था श्रीआचार्यपाद का वैष्णव-समाज सुधार की दिशा में साहसिक पदक्षेप। श्रीगोपालभट्टगोस्वामी के इस साहसिक कार्यकलाप में श्रीरूप, सनातन, जीव, रघुनाथदास तथा रघुनाथ-भट्ट गोस्वामियों का भी पूर्ण समर्थन था और उनके आदेश से ही इस 'सत्क्रिया-सारदीपिका' की बड़े प्रयत्न और परिश्रम से षड् गोस्वामियों में अन्यतम श्रीगोपालभट्टगोस्वामी द्वारा रचना की गई। इसीको आचार्यपाद ने 'सत्-क्रियासारदीपिका' के प्रारम्भ में इस प्रकार स्पष्ट किया है—

यन्मतालम्बिनावेतौ द्वौ श्रीरूपसनातनौ।
श्रीजीवरघुनाथौ श्रीभट्टाख्यरघुनाथकः॥
तेषामादेशतः श्रीमद्गोपालभट्टनामिना।
गोस्वामिना कृता यत्नात् सत्क्रियासारदीपिका॥

इसकी सारगर्भित टिप्पणी में—

"नन्वपरग्रन्थकारवद् ग्रन्थकर्त्तृत्वेनास्मदविधस्य नाम निवद्धमनुचितम्। 'अहंकारविमूढात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते', इति दोषश्रवणभयात्। तथापि स्वयूथ्यानां साधूनामाज्ञया स्वनाम निवद्धम्। श्रीमद्गोपालभट्टनामायं कोऽपि जीवः। श्रीगोपाल-भट्टत्वेन ज्ञापितं श्रीकृष्णचैतन्यचरणारविन्दमकरन्दसततपायित्वेन सदैव साधुनिर्देश-वर्तीति।"

'यद्यपि अन्य रचनाकारों की भाँति अपना नाम ग्रन्थ में सन्निवेश करना वैष्णवों के लिये सर्वथा अनुचित है कारण इसके द्वारा ग्रन्थकर्त्तृत्व-दोषजनित अभिमान भावना उत्पन्न होती है तथापि अपने सहयोगी सज्जन जनों की आन्तरिक अनुज्ञा के कारण ग्रन्थकार के रूप में 'गोपालभट्ट' का नाम अङ्कित किया गया है, वास्तव में 'गोपालभट्ट' नामक कोई एक जीव है जो सदा श्रीकृष्णचैतन्य चरणारविन्दमकरन्द पानमत्त होता हुआ सज्जन-जनों का आज्ञापालक है। इस टीका के उद्धरण से श्रीगोपालभट्टगोस्वामीपाद की वास्तविक वैष्णव-वेषाश्रयदीनता प्रदर्शित होती है।

श्रीगोपालभट्टगोस्वामीपाद ने 'सत्क्रियासारदीपिका' में विविध शास्त्रीय प्रामाणिक वाक्यों द्वारा नामापराध, सेवापराध की नित्यता का दिग्दर्शन कराते हुये श्राद्धादि नैमित्तिक कर्मों का पूर्णतः निषेध किया है, कारण वैष्णवों के समस्त आवश्यक कृत्य श्रीगोविन्द सेवापरक हैं और श्रीकृष्ण सेवा द्वारा ही देव, पितृगणों का स्वतः अर्चन हो जाता है। जब भगवन्नाम सङ्कीर्तन द्वारा ही पूजन की पूर्णता और साङ्गता स्वतः सिद्ध है

तब वैष्णवों के लिये स्मार्तपरक नित्य नैमित्तिक कृत्यों की आवश्यकता ही क्या रह जाती है ? इस ग्रन्थ में श्रीगोपालभट्टगोस्वामी ने—

व्यक्ति गृही द्विजादीनामनन्यानां विशेषतः ।
पद्धतिं तां विवाहादेः सत्क्रियासारदीपिकाम् ॥
श्रीमद्गोपालभट्टोऽयं साधूनामाज्ञया भृशम् ।
भगवद्धर्मरक्षार्थं भक्तानां वैदिकी तु या ॥

भगवद्धर्म रक्षार्थ सम्पूर्ण गृहस्थ जीवन के कर्तव्य, सन्यास का वास्तविकार्थ, वैवाहिक पूर्वोत्तर कृत्य, स्मार्तविधि पालन का निषेध, वैष्णवविधि का स्पष्टतः समर्थन, होम, गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्रासन, चूडाकरण, उपनयन, समावर्तन प्रभृत्ति १४ सांस्कारिक विधियों का विशद विवेचन किया है।

इसकी रचना का समय १५९९ वैक्रमीय के पूर्व का है। इस पुस्तक का निर्देश कलकत्ता के महामहोपाध्याय श्रीहरप्रसाद शास्त्री द्वारा Notes SKT MSS (2nd Series Vol I No 397 Vol II P.P. 209-10 No 235) में किया गया है।

इसका सर्वप्रथम प्रकाशन गौड़ीयमठ के उन्नायक श्रीभक्तिविनोद-ठाकुर द्वारा वृन्दावनस्थ श्री सार्वभौम मधुसूदन गोस्वामी के पुस्तकालय की प्राचीन प्रति से अनुलिपि कर 'सज्जनतोषणी' पत्रिका के १९०३ से १९०९ तक के खण्डों में किया गया और सन् १९३५ में कलकत्ता गौड़ीयमठ से 'संस्कार-दीपिका' के साथ यह पुस्तकाकार रूप में प्रकाश में लाई गई।

संस्कार-दीपिका—

की रचना 'सत्क्रियासारदीपिका' के अन्तर्गत माध्वगौड़ेश्वर साम्प्रदायिक वैष्णवता के अवर्णित अङ्गों की आनुपूर्विक भागवत व्याख्या श्रीगोपालभट्टगोस्वामी द्वारा साम्प्रदायिक एवं सद्गृहस्थ वैष्णवजनों के लिये की गई।

श्रीगोपालभट्टगोस्वामी ने इस ग्रन्थ में सम्प्रदायगत उत्तरात्य, दाक्षिणात्य दो मुख्यतम भेदों के सम्पूर्ण सिद्धान्तों का सूत्रात्मक विवेचन किया है। जब पुराणों के वाक्यों में पारस्परिक विरोध प्रतीत होने पर उनकी सिद्धान्तगत समाधान दिशा भ्रान्त हो जाती है तब उसका एकमात्र समाधान आचारात्मक वाक्यों द्वारा ही सम्भव है, इस पक्ष की सङ्कलनकर्ता ने पूर्णतः निभाया है। इस ग्रन्थ में प्रामाणिक २४ शास्त्रीय ग्रन्थों के वाक्यों द्वारा

सन्यास, परमहंसस्वरूप, वैष्णव दीक्षा से द्विजत्व प्राप्ति, स्त्रियों के लिये वर्णाश्रमीय व्यवस्था का विधान, निम्नेत्तर जातियों की वैष्णववेषाश्रयता से जातिबन्धन विच्युति, तीर्थ, तिलक, नाम, माला, मुद्रा, कोपीनधारण, वैष्णवों की नित्य अच्युतगोत्रता, शालिगामार्चन, वैष्णवों का अन्तिमदेह संस्कार, समाधि-स्थापन आदि नित्य नैमित्तिक विधि कृत्यों पर श्रीगोपाल-भट्टगोस्वामी ने पूर्णतः प्रकाश डाला है।

श्रीचैतन्य महाप्रभु के अन्तर्द्धान के एक दशक के मध्य श्रीगोपालभट्ट-गोस्वामी द्वारा श्रीपाद नित्यानन्द प्रभु का श्रीचैतन्य के पार्श्ववर्त्ती बलराम अवतार रूप में—

श्रीचैतन्यं प्रभुं वन्दे स्वाभिलाषप्रदायकम्।
नित्यानन्दाख्यरामञ्च नौमि तत् पार्श्ववर्त्तिनम्॥

सश्रद्ध स्मरण और अर्चन परिवर्णित होने से ज्ञात होता है कि उस समय तक व्रज वृन्दावन में 'श्रीनिताईगौर' युगल विग्रह की अर्चना प्रारम्भ हो गयी थी।

श्रीगोपालभट्ट का सम्पूर्ण स्मृति,दर्शन सङ्कलन विविध विद्वान् वैष्णवों की विचारधाराओं का विवेचनारूप में सज्जनों के परामर्श तथा आदेशों से हुआ था जिसे उन्होंने अपनी रचनायों की प्रारम्भिक भूमिका में स्पष्ट किया है—

'आवश्यकं कर्म विचार्य साधुभिः' (भगवद्भक्तिविलास)
'विविच्य व्यलिखत् ग्रन्थं लिखिताद् वृद्धवैष्णवैः'। (तत्त्वसन्दर्भ)
'श्रीमद्भट्टगोपालः साधूनामाज्ञया भृशम्'। (सत्क्रियासार)

उनके अनवरत शास्त्ररत्नाकर के उन्मथन से जो अलौकिक रत्न प्रभासित हुये थे वे सदैव एक आदर्श भारतीय सांस्कृतिक साहित्य के रूप में स्मरण किये जाते रहेंगे।

'संस्कारदीपिका' के विषयगतपक्ष को दृष्टिकोण में रखते हुये कुछ अवर्णित पूजनप्रकरणों को श्रीगोपालभट्टगोस्वामी के अन्यतम शिष्य श्रीगोपी-नाथदास ने ऐकान्तिकनिष्ठ गौर भक्तों के लिये क्रमानुसारि विस्तृत रूप में रखा जो ग्रन्थ के आरम्भिक और उपसंहारिक श्लोकों के द्वारा स्पष्टतः ज्ञात होता है।

आरम्भ—

'तदन्तः पातिता येयं नाम्ना संस्कारदीपिका।
तन्यते गोपीभृत्येव साधूनामर्थयाञ्चया॥'

उपसंहार—

संस्कारदीपिका नाम्नी सन्यासार्थं सतां मता ।
निर्णीता गोपीभृत्येन सदानन्दप्रमोदिनी ॥
निर्मिता गौरदासानामेकान्तधर्मसिद्धये ।
क्रमानुसारि तत्सर्वं विविच्य लिख्यते मया ॥

इसमें श्रीहरिभक्तिविलास तथा श्रीरघुनाथदासगोस्वामी आदि परवर्ती आचार्यों के उल्लेख होने से इसका भी रचना काल १५९१ वैक्रमीय के पूर्व का है ।

श्रीगोपालभट्टगोस्वामी की अन्यान्य रचनायें—

रासस्थलीस्थित स्वकीय विशाल रासमण्डल पर नृत्य, नाट्य एवं सङ्गीत के भावगतपक्ष को प्रस्तुत करने के लिये श्रीगोपालभट्टगोस्वामी द्वारा चार खण्डों में एक * गद्यपद्यात्मक 'दानखण्ड' ग्रन्थ की रचना की गई, जिसमें श्रीकृष्ण की परम माधुर्य तथा शृङ्गार-रस अभिव्यञ्जक वसनचौरकेलि, भार, पार एवं दान लीलाओं का समावेश है ।

उपर्युक्त वर्णना से ज्ञात होता है कि उस समय तक व्रज में श्रीकृष्ण की रासरसरागमयी लीलाओं का प्रचलन नहीं था, जिसका सर्वप्रथम समारम्भ श्रीगोपालभट्टगोस्वामी ने किया ।

आरम्भ— **यं ब्रह्मावरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवैः,**
वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनः,
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणाः देवाय तस्मै नमः ॥

उपसंहार— **ततस्तत्रगणे सखिभिः सुरतमनुभूय निजभवनं जगाम ।**
राधा सखिभिः..........सह गतवती ।

इति श्रीगोपालभट्टविरचित दानखण्डः समाप्तः ।

वहरामपुर से प्रकाशित श्रीरूपगोस्वामिकृत पद्यावली में श्रीगोपालभट्टगोस्वामी के नाम से निम्नाङ्कित एक श्लोक प्राप्त होता है—

भाण्डीरेश ! शिखण्डमन्डनवर ! श्रीखण्डलिप्ताङ्ग ! हे !,
वृन्दारण्यपुरन्दर ! स्फुरदमन्देन्दीवरश्यामल ! ।

---

* 1–India office Cat (No. V11 P. 1470 No. 3897–99)
२–संस्कृत साहित्य परिषद्, कलकत्ता, पुस्तक संख्या ४२७

कालिन्दीप्रिय ! नन्दनन्दन ! परानन्दारविन्देक्षण !,
श्रीगोविन्द ! मुकुन्द ! सुन्दरतनो ! मां दीनमानन्दय ।। संख्या ३८

श्रीगोपालभट्टगोस्वामी के व्रज-वङ्गभाषामिश्रित दो पद वङ्गीय-विशाल पदसङ्ग्रह ग्रन्थ 'पदकल्पतरु' में उद्धृत किये गये हैं, इसके द्वारा ज्ञात होता है कि दाक्षिणात्य होते हुये भी श्रीगोपालभट्टगोस्वामी का व्रज और वङ्गभाषा पर समान अधिकार था। इन पदों में आचार्यपाद ने श्रीराधिकारमण की नितान्त कान्त नित्य नव निभृत निकुञ्ज लीलाओं तथा श्रीवृन्दावन के नैसर्गिक सुषमा सौन्दर्य का परिवेशन किया है—

(१)

देखो री सखि ! कमलनयन कुञ्ज में विराजे हैं।
वाम में किशोरी गोरी, अलस अङ्ग अति विभोरी,
हेरि श्याम नयनचन्द्र मन्द मन्द हँसे हैं।
अङ्ग अङ्ग रहे भिड़, पूंछत बात अति निविड,
प्रेम तरङ्ग ढरकि पड़त कमल मधुप सङ्ग है।
शारी, शुक, पिक करत गान, भँवरा, भँवरी धरत तान,
सुनि धुनि उठि बैठत चोर चपल जात है।
'श्रीगोपालभट्ट' आस वृन्दाबन कुञ्ज वास।
शयन स्वपन नयन हेरि भूलत मन आप है ।।
(पदकल्पतरु २ खण्ड, पद संख्या १०९०)

(२)

वृषभानुनन्दिनी तैं मन मोहन के मन लागि वसी।
पान खवात पीक जीभ ते ढरकत झलक रहे जैसे जावक शशी।
मधुरिम हास वसन झांपि सोहत मेघ से ज्यों विजुरी गोपों।
कण्ठहि लोलत मोतिन हार कनक मुकुर ज्यों तारक रोपों।
सांवल चित्त उनतेहि लाग्यौ पलकन नाहें आंखि,
यूथ यूथ मनमथ झूलत 'गोपालभट्ट' इत साखी ।।
(पदकल्पतरु ४ खण्ड, पद संख्या २८३४)

(३)

एसो हठ धरि पलटि बैठि पुनि कान्ह वदन नाँही हेरे।
'गोपालभट्ट' भणत भामिनी पीरिति टूटन लागी ।।

इसके अतिरिक्त श्रीगोपालभट्टगोस्वामी की कुछ और भी सारगर्भित रचनायें उपलब्ध हुई हैं जिन पर साधिकारिक विद्वानों द्वारा विश्लेषणात्मक अनुसन्धान किया जा रहा है।

श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती—

प्रबुद्ध वेलंगुडी ग्राम की उन विशाल पल्लियों जिनमें उनके शैशव और यौवन के उल्लासमय दिवस व्यतीत हुये थे को अन्तिम प्रणाम कर सन्यास की उत्कट भावना से काशी की ओर अग्रसर हुये। प्रशस्त राजपथ होकर वे अपने सतीर्थ बान्धव न्याय वेदान्ताचार्य श्रीवासुदेव सार्वभौम से मिलने नवद्वीप आये। नवद्वीप इस समय न्याय-वेदान्त अध्यापन का प्रमुख केन्द्र था। यहाँ के प्रकाण्ड पण्डितों में श्रीगङ्गादास, रघुनाथ एवं शचीनन्दन गौराङ्ग का नाम सर्वोच्च श्रेणियों में था, जहाँ देश विदेश के सहस्रों छात्र विधिवत् विद्याध्ययन के लिये आते रहते थे। सहसा प्रबुद्ध का मन इनसे मिलने को उत्कण्ठित हो उठा, वे उनसे मिलने अपने सहाध्यायी वासुदेव के साथ जा पहुँचे। वहाँ का दृश्य ही निराला था। श्रीवास के प्राङ्गण में वह गौराङ्ग जिसकी वैदुषी की सहस्रों छात्र प्रशंसा करते हैं, * कमर में पीत-पट्टवस्त्र, हाथों में कनक कङ्कण, वक्षःस्थल में हीरक हार, कानों में मणि-जटित दोलायमान कुण्डल, श्रीचरणों में सिञ्जित नूपुर, किञ्चित् कुञ्चित कुन्तल कलाप में निवद्ध विकसित मालती माला का मुकुट धारण कर अपने ही नाम का मधुर उच्चारण करता हुआ नाच रहा है। यह देख उनका मन घृणा से भर उठा। कहाँ न्याय वेदान्त का वह अप्रतिम विद्वान् ? कहाँ उसका यह निन्दनीय नृत्य कर्म ? वे लगे शतमुख से गौराङ्ग की निन्दा करने। गौराङ्ग से प्रबुद्ध का यह कृत्य छिपा न रहा। उन्होंने इसे उपेक्षा-भाव से देखा, अन्ततः पाण्डित्य और द्विजत्व की यह दुर्दशा देख व्याकुल मन से प्रबुद्ध पुनः काशीपथ की ओर चल पड़े। काशी उससमय महाकाल की सर्वश्रेष्ठ स्थानान्तर्गत पुरी थी, स्थान-स्थान पर शिव की कल्याणमयी ध्वनि से यहाँ का कण-कण भाव विभावित था। वे यहाँ आये और सन्यास परिवेश में प्रदीक्षित हो प्रकाशानन्द सरस्वती के रूप में आचार्य शङ्कर के उपदिष्ट सिद्धान्तों का प्रसार करने लगे। प्रकाशानन्द सरस्वती के पाण्डित्य विषय में 'श्रीचैतन्यचन्द्रामृत' की 'रसास्वादिनी' 'टीकाकार 'आनन्दिन' के अनुसार 'वे जगत् में एकमात्र सर्वश्रेष्ठ परिव्राजक के रूप में तर्क, सांख्य, वैशेषिक, ज्ञान,

---

* कोऽयं पट्टधटीविराजितकटीदेशः करे कङ्कणं,
हारं वक्षसि कुण्डलं श्रवणयोः विभ्रत् पदे नूपुरम्।
उर्द्ध्वीकृत्य निवद्धकुन्तलभरप्रोत्फुल्लमल्लीस्रगा-,
पीडः क्रीडति गौरनागरवरो नृत्यन् निजैर्नामभिः॥

—चैतन्यचन्द्रामृत १३१

मीमांसा, आगम, निगम, महापुराण, इतिहास, पञ्चरात्र, अलङ्कार, काव्य, नाटक, आदि के अप्रतिम ज्ञाता थे और अपनी वक्तृत्व शक्ति द्वारा * काशीवासी असंख्य छात्रों के हृदय में ज्ञान का अजस्र स्रोत प्रवाहित करते थे' ।

काशी आकर भी वे नवद्वीप के गौराङ्ग को न भुला सके। निरन्तर उनके सङ्कीर्तन नृत्य गान की निन्दा करते रहते थे। उनकी दृष्टि में एक सामान्य जीव की सार्वजनीन भगवत् कल्पना हृदय में कांटे की भांति चुभती थी। यहाँ रहकर भी वे उनके सिद्धान्तों का सदा खण्डन करते रहते थे, उनके इस कार्य में सार्वभौम वासुदेव का भी पूर्ण सहयोग था। मुरारी-गुप्त से श्रीगौराङ्ग ने इन पण्डितों की चक्रान्त घटनायें सुनी। एक दिन ईश्वरावेश में श्रीगौरसुन्दर कहने लगे—* काशी में रहकर प्रकाशानन्द मेरे अस्तित्व को चुनौती दे रहा है, समय आने पर मैं उसकी वाक्चातुरी देखूंगा।

उस समय काशी में प्रकाशानन्द की वैदुषी का प्रभाव चरम सीमा पर था। भारत के कोने-कोने से सहस्रों छात्र अपनो ज्ञान पिपासा शान्त करने के लिये उनके पास आते रहते थे। सन्यासी होने के नाते कोपीन, कमण्डल ही सम्बल तथा अहर्निश शिव-शिव उच्चारण एवं वेदान्त चर्चा ही एकमात्र उनका आराधन था किन्तु इतना होने पर भी उनका मन सर्वश्रेष्ठ परिव्राजक पद तथा पाण्डित्य गरिमा को भुला न सका। तेजस्विता की प्रतिमूर्त्ति के रूप में उनकी यशोकौमुदी दिग्दिगन्त को प्रभासित कर रही थी। उनके एकमात्र वंशाधार गोपालभट्ट थे जिन्हें उन्होंने अत्यन्त स्नेह से परिवर्द्धन कर ज्ञानमार्ग की उच्च शिक्षायें दी थीं। जब जब उन्हें उसका स्मरण हो आता था तब तब उनके हृदय में एक टीस सी उठने लगती थी। वे यथासम्भव उसका समाचार लेते रहते थे। उसी गोपालभट्ट के विषय में जब उन्होंने सुना कि वह उसी भावुक गौर के भ्रमात्मक जाल में फंसकर परिमार्जित ज्ञानमार्ग को त्याग भक्तिपथ का पथिक बन चुका है, साथ ही उनका सहाध्यायी वासुदेव सार्वभौम भी उस जादूगर के चक्कर में पड़कर

---

* १–प्रकाशानन्द सरस्वती काशीपुरे वास।
ज्ञान, योग मार्गे स्थिति चिन्मये आकाश॥
वेदान्त पण्डित जे शाङ्करिक भाष्यमते। (वङ्ग भक्तमाल)
२–प्रकाशानन्द नामे इह सन्यासी प्रधान। (चैतन्यचरितामृत)

* सन्यासी प्रकाशानन्द वसये काशीते।
मोर खण्ड खण्ड बेटा करे भालमते॥ —चैतन्यभागवत म० २०।३३

उसे भगवान् बतला रहा है[१], तब उनके दुःख का पारावार न रहा। उनके चैतन्य को चैतन्य झकझोरे इसे वह कैसे सहन कर सकते थे ? उनकी क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो उठी। यह उनके लिये एक चुनौती थी, परिव्राजक पद का घोर अपमान था अतः उस कपट सन्यासी को शिक्षा देने के उद्देश्य से एक नीलाचलगामी यात्री द्वारा उन्होंने श्रीचैतन्यदेव के लिये एक पत्र भेजा।

यत्रास्ते मणिकर्णिका मलहरा स्वर्दीधिका दीर्घिका,
रत्नस्तारकमोक्षदं तनुभृते शम्भुः स्वयं यच्छति।
एतत्वद्भुतधामतः सुरपुरो निर्वाणमार्गस्थितं,
मूढोऽन्यत्र मरीचिकासु पशुवत् प्रत्याशया धावति ॥

जिस काशी में मणिकर्णिका और पापनाशिनी भागीरथी हैं जहाँ स्वयं शिव जीवजन के लिये निरन्तर मोक्षदायक तारक मन्त्र प्रदान करते रहते हैं किन्तु दुर्भाग्य है कि मूढजन उस परम पुरुषार्थ रत्न को त्यागकर पशुओं की भांति मायामरीचिका की ओर भाग रहे हैं। काशी से आये हुये यात्री ने भक्तमण्डली वेष्टित भावनिमग्न श्रीचैतन्य को देखा। श्रीचैतन्यदेव के दर्शनमात्र से उसका मन प्राण व्याकुल हो उठा, उसका स्वरूपगत अभिमान हरिनाम की मधुर ध्वनि श्रवणमात्र से विगलित हो चला। वह श्रीकृष्ण कृष्ण कहकर श्रीचैतन्य के चरणों को पकड़कर रोने लगा। उसका ज्ञानमय प्रकाश चैतन्य चन्द्र छटा के सामने फीका पड़ गया। उसने डरते हुये श्रीचैतन्य के चरणों में प्रकाशानन्द द्वारा दिया हुआ पत्र सर्मपित किया, प्रभु ने उस पत्र को पढ़ा, जरा हँसे और स्वरूप द्वारा

धर्माम्भोः मणिकर्णिका भगवतः पादाम्बु भागीरथी,
काशीनां पतिरर्द्धमेव भजते श्रीविश्वनाथः स्वयम्।
एतस्येव हि नाम शम्भुनगरे निस्तारकं तारकं,
तस्मात् कृष्णपदाम्बुजं भज सखे ! श्रीपाद ! निर्वाणदम् ॥

मणिकर्णिका भगवान् का प्रस्वेद और भागीरथी जिनका चरण जल है, स्वयं काशीपति विश्वनाथ जिसका सदा आराधन करते हैं, जिसका नाम निस्तारक तारक रूप में प्रसिद्ध है अतः सखे ! श्रीपाद ! श्रीकृष्ण के उस मोक्षदायक श्रीचरणों का आश्रय लो, इसका उत्तर लिखवाकर उसी यात्री द्वारा प्रकाशानन्द के समीप भेजा।

१—कालान्नष्टं भक्तियोगं निजं यः प्रादुष्कर्तुं कृष्णचैतन्यनामा।
आविर्भूतस्तस्य पादारविन्दे गाढं गाढं लीयतां चित्तभृङ्गः ॥
—चैतन्यचन्द्रोदय नाटक ६।७४ श्रीवासुदेव सार्वभौम

प्रकाशानन्द मायावादी सन्यासी थे, शिव के अतिरिक्त अन्य देवोपासना उन्हें रुचिकर न थी अतः श्रीचैतन्यदेव को भी उपदेशात्मक रूप से उन्होंने शिवोपासना का सन्देश प्रेषित किया था किन्तु प्रभु ने उसके उत्तर में ऐकान्तिक श्रीकृष्णचरणाश्रय ही जीव का चरम लक्ष्य है यह बतलाकर उन्हें निरुत्तर कर दिया। प्रकाशानन्द ने प्रभु के सन्देश को व्यङ्ग रूप में लिया। श्रीमन्महाप्रभु चैतन्यदेव श्रीजगन्नाथ के प्रसाद की कभी भी उपेक्षा नहीं करते थे जो कुछ प्राप्त होता था उसे सादर मस्तक पर चढ़ाकर भोजन करने में कभी उन्होंने सङ्कोच नहीं किया। सन्यासियों के लिये भोजन की ग्राह्य ग्राहकता का प्रतिबन्ध प्रसाद के प्रकृत पक्ष में उन्हें न था इसीलिये भक्तगण प्रभु की भिक्षा विशेषतः महाप्रसाद द्वारा कराते थे। यह विषय प्रकाशानन्द भी जानते थे अतः इसीको लक्ष्यकर उसके उत्तर में उन्होंने कटूक्तियों से भरा हुआ दूसरा श्लोक श्रीचैतन्यदेव के समीप भेजा जिसमें परोक्ष रूप से प्रसादान्न ग्रहण की निन्दा थी।

विश्वामित्रपराशरप्रभृतयः वाताम्बुपर्णाशिनः-,
एते स्त्रीमुख पङ्कजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहं गताः।
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं ये भुञ्जते मानवा,-
स्तेषामिन्द्रियनिग्रहं यदि भवेत् विन्दुस्तरेत् सागरम्॥

विश्वामित्र पराशर प्रभृति मुनिगण जल, वायु और शुष्क पत्र खाकर भी जब वे स्त्री मुख दर्शन करते हुये अपनी दुर्वार इन्द्रियग्रामता को नहीं रोक पाते तब प्रतिदिन दुग्ध, दधि, घृत मिश्रित व्यञ्जनों का नियमित सेवन कर साधारण मानव अपनी संयमता को किस प्रकार बचा सकता है? यदि यह सम्भव है तब निश्चय ही एक सामान्य पक्षी रत्नाकर की विशाल जल राशि को पार कर सकता है। महाप्रभु ने इस श्लोक के भावार्थ को देखा और उत्तर के अनुपयुक्त समझकर एक ओर रख दिया।

भक्तों से प्रकाशानन्द का यह दुःसाहस न देखा गया और प्रभु को बिना कुछ बतलाये उन्होंने इसका उत्तर प्रकाशानन्द के पास भेज दिया।

सिंहो वली द्विरदशूकरमांसभक्षी,
सम्वत्सरेण कुरुते रतिमेकवारम्।
पारावतस्तृणशिलाकणमात्रभक्षी,
कामी भवेत्वनुदिनं वद कोऽत्र दोषः?॥

बलवान् सिंह मत्त हाथी शूकर प्रभृत्तियों का मांस खाकर वर्ष में एक बार स्त्रीरत होता है जबकि एक सामान्य कबूतर जो तिनका और मिट्टी

के कणों को खाकर प्रतिदिन काम चेष्टा में रत रहता है इसका क्या कारण है ?

प्रकाशानन्द ने भक्तों के उत्तर को प्रभु प्रेरित समझा और उनका क्रोध चरम सीमा पर जा पहुंचा और वे लगे महाप्रभु की निन्दा करने। प्रकाशानन्द के निरन्तर निन्दाप्रवाद से गौर भक्तगण विशेषत: सार्वभौम अत्यन्त दु:खित थे। सार्वभौम भी कुछ कम पण्डित न थे, वे पूर्वाश्रम में मायावादो सन्यासियों के प्रधान आचार्य थे किन्तु श्रीचैतन्यदेव की कृपा से उन्होंने ज्ञानमार्ग त्यागकर भक्तिमार्ग अपना लिया था, वे निर्वाण निम्बरस के स्थान पर निरन्तर मधुरातिमधुर प्रेम रस का आस्वादन कर रहे थे। उनकी इच्छा इस रस का आस्वादन अपने सतीर्थ बन्धु प्रकाशानन्द को भी कराने की हुई। वे सीधे श्रीचैतन्य चरणों में पहुँचे और काशी जाकर भगवद्विमुख मायावादियों को भक्तिरससागर में आप्लावित करने की अनुमति चाही। प्रभु हँसे और कहने लगे, सार्वभौम ! यह बड़ा कठिन कार्य है, तुम उनके कठोर हृदयों को न पिघला सकोगे, धैर्य रखो। श्रीकृष्ण के चरणों में निरन्तर प्रार्थना करो वे ही इस कार्य को सम्पन्न करेंगे किन्तु सार्वभौम से यह बात सही न गई, वे कुछ दिन रुककर रथयात्रा के पूर्व आये हुये गौड़ीय भक्तों के हाथों में प्रभु को सोंपकर अलक्षित भाव से काशी की ओर प्रस्थानित हुये। मार्ग में श्रीनित्यानन्द, श्रीअद्वैत आदि आचार्यों के श्रीचरणों में नमन कर अन्त में वे मुसलमान कुलोत्पन्न श्रीहरिदास के चरणों में गिर पड़े। यह श्रीचैतन्यदेव की ही प्रेमलीला वैचित्री थी कि ब्राह्मण और यवन एक दूसरे से मिल रहे हैं, गले लग रहे हैं और कृष्ण ! कृष्ण ! कहकर रो रहे हैं।

वैष्णवाचार्यों के दर्शन कर वासुदेव सार्वभौम काशी आये और विन्दुमाधवस्थित विशाल मायावादी मठ में पहुँचकर अपने सतीर्थ वन्धु प्रकाशानन्द से मिले। प्रकाशानन्द सार्वभौम से मिले अवश्य किन्तु उनके श्रीचैतन्यचरणानुगत होने के कारण सार्वभौम के प्रति उनका जुगुप्सा भाव और भी बढ़ गया। सार्वभौम ने प्रकाशानन्द को बहुत कुछ समझाया किन्तु उनके मरुस्थल हृदय में वे प्रेम रसधारा का सञ्चार न कर सके अन्त में विफल मनोरथ हो पुन: नीलाचल लौट आये।

पश्चिमोत्तरदेशस्थ मायावद्ध जीव जन जातियों के समुद्धारार्थ प्रभु श्रीधाम वृन्दावन जाना चाहते थे, एक बार जाकर भी वे यात्रा भङ्ग कर लौट आये थे, दिनोंदिन उनकी व्रज वृन्दावन दर्शन लालसा बढ़ती जा रही थी भक्तगण उन्हें छोड़ते नहीं थे, कारण प्रभुविरहजन्य दु:ख उनके लिये

सर्वथा असह्य था। एकदिन राय रामानन्द और स्वरूप से परामर्श कर रात्रि के शेष भाग में चुपचाप बलभद्र भट्टाचार्य को साथ ले श्रीगौरचन्द्र झारिखण्ड के निर्जन वनपथ से वृन्दावन की ओर चल पड़े।

नीलाचल वृन्दावन मार्ग के मध्य काशी पड़ता था। काशी में प्रभु के तपनमिश्र,परमानन्द एवं वैद्य चन्द्रशेखर तीन अनुगत निवास करते थे। पूर्व में प्रभु ने उन्हें आश्वासन दिया था कि काशी आने पर तुमसे अवश्य मिलूंगा।

मार्ग में श्रीचैतन्यदेव ने मायाबद्ध जीवों के मुख से ही नहीं प्रत्युत शत शत हिंसक पशुओं के मुख से कृष्ण-कृष्ण कहलवाया, उन्हें श्रीकृष्ण प्रेम में पागल बनाया और उनका शत्रु भाव मिटाकर परस्पर उन्हें आलिङ्गन कराते हुये कृष्ण नाम रससागर में डुबाया, उछाला और रुलाया। समस्त झारिखण्ड के स्थावर जङ्गमों में प्रेमरस सञ्चार करते हुये प्रभु काशी पहुँचे। मन्दाकिनी के विमल वारि बीचियों में अवगाहन करते हुये वे उच्च स्वर से हरिनाम उच्चारण करने लगे। साढ़े चार हाथ प्रशस्त दीर्घ, स्वर्ण-कान्ति, लावण्यमय, कोटिकन्दर्पदर्पापह प्रत्यक्ष गौर विग्रह का सन्दर्शन कर काशीवासी विमुग्ध हो उठे।

भागीरथी के दोनों किनारों की सहस्रों कण्ठों से निकली हुई उच्च हरिनाम ध्वनि ने काशी के सुरम्य तट प्रान्तों को आन्दोलित कर दिया। उस समय तपनमिश्र भी वहाँ स्नान कर रहे थे, उन्होंने भी अतृप्त नयनों से उस हेमाङ्ग चैतन्याकृति की तरलित भावभङ्गिमा को देखा, उन्हें पहिचानने में देरी न हुई, यह तो अपने ही सर्वस्व जीवनधन गौरचन्द्र हैं। वे दौड़ते हुये श्रीगौरसुन्दर के श्रीचरणों में प्रणिपात करने लगे। प्रभु ने तपन को उठाया आलिङ्गन किया और उनके साथ फिर भागीरथी के विमल वारिमध्य में तुमुल भाव से नृत्य करते हुये उच्चस्वर से हरिनाम कीर्त्तन करने लगे। प्रभु थोड़ी देर बाद प्रकृतिस्थ हुये, तपनमिश्र ने उन्हें अपने सहचर वैद्य चन्द्रशेखर के यहाँ ठहराया और अपने आवास स्थान पर भिक्षा दी। इस अपने नित्य पार्षद चन्द्रशेखर की काशी में आकर प्रभु चन्द्रशेखर के यहाँ न ठहरते तो कहाँ ठहरते? यह साक्षात् चन्द्रशेखर का आतिथ्य नहीं तो क्या था? कर्पूर गौर की काशी के चारों ओर जिधर देखो उधर उस गौरवर्ण सन्यासी का शोर होने लगा। सहस्रों जन उनके दर्शनों को आने लगे। कोटि-कोटि कण्ठों से निःसृत हरिनाम ध्वनि ने काशी के कण-कण को भाव विभोरित कर दिया। प्रभु समूह से बचना चाहते थे पर यह तो प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था। प्रकाशानन्द ने भी उस सन्यासी की वैदग्धी के विषय में सुना। वे तुरन्त समझ गये, हो न हो यह वही जादूगर 'कृष्णचैतन्य' है,

जिसने अपने प्रिय गोपालभट्ट और सार्वभौम वासुदेव को बिगाड़ा है। मैं निश्चय ही इससे उसका बदला लूँगा। मेरी काशी में आकर उसका यह उपद्रव अब नहीं चलेगा। वह मेरे जाल से अब बच नहीं पायेगा। वे क्रोधित हो प्रभु की शतमुख से निन्दा करने लगे। प्रभु के अनुगतों से प्रकाशानन्द की यह निन्दा सही न गई। प्रकाशानन्द ने बहुत चाहा कि इस जादूगर से मिलना हो वह दिन भी आ पहुंचा जब समस्त सन्यासी एक स्थान पर सार्वजनिक 'विश्वरूप' क्षौरकर्म दिवस में उपस्थित होते हैं मैं तभी सबों के सामने उसे पराजित करूंगा यह विचार मन में आया। प्रभु उससमय सन्यासियों से मिलना नहीं चाहते थे अतः 'विश्वरूप' के चार दिन पूर्व ही वे वृन्दावन की ओर चल दिये।

श्रीवृन्दावनधाम माधुरी का रसास्वादन कर प्रभु फिर काशी आये। उससमय उनकी मण्डली में एक और साथी भी सम्मिलित हो गये वे थे वङ्गीयशासक के मन्त्री श्रीसनातन जो अभी-अभी कारागार बन्धन से छूटकर आये हैं। काशी में फिर वही 'कृष्णचैतन्य' आये हैं, यह शोर होने लगा। यह प्रकाशानन्द ने भी सुना जो कोई उनसे मिलने आता उससे वे चैतन्य की निन्दा ही करते रहते। वेदान्त नहीं पढ़ता, सदा नाचता, गाता रहता है आदि। प्रकाशानन्द उससमय काशी के एक प्रकार से कर्त्ता-धर्त्ता थे। काशी की समस्त समस्याओं का समाधान उनके द्वारा ही होता था। चैतन्य की अविरत प्रशंसा सुनते-सुनते वे विचलित हो उठे। उनकी कोपाग्नि ज्वालामुखी की भांति फट पड़ी। वे अब महाप्रभु की निन्दा में चारों ओर से लग गये। उनके इस निन्दा कर्म से उनके अनुगतगण ही नहीं काशी का एक विशाल सन्यासीवर्ग भी मर्माहत होने लगा। वे आते और प्रभु से प्रकाशानन्द की बातें करते प्रभु कुछ न कहकर तनिक सा हँस देते अन्त में वह दिन भी आ पहुंचा जब एक महाराष्ट्रीय प्रधान ब्राह्मण जो प्रकाशानन्द के विशेष प्रिय पात्र थे ने प्रकाशानन्द की सभा में आकर श्रीकृष्णचैतन्य की भगवत्ता, पूर्ण-ब्रह्मता एवं अलौकिक रूप लावण्यता की चर्चा करते हुये उनसे एक बार श्रीचैतन्य दर्शन के लिये कहा। यह बात सुन प्रकाशानन्द बहुत जोरों से हंसकर कहने लगे, विप्रवर ! मैं उस चैतन्य को भलीभाँति जानता हूँ, वह बड़ा धूर्त है। दिनरात नाचता, गाता फिरता है। मेरी समझ में नहीं आता कि उसे तुम क्यों भगवान् बतलाते हो ? तुम मूर्खजन की भाँति क्यों पागल बनते हो ? घर जाओ, ब्रह्म का चिन्तन करो। ब्राह्मण दुःखित हो श्रीमन्महाप्रभु के पास आया, श्रीचरणों में गिरकर कहने लगा, प्रभो ! अब यह निन्दावाद नहीं सहा जाता। कृपा कर एक बार माया-

वादियों के मध्य में जाकर जीव-ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप का निर्णय लें, उनके मिथ्यात्व का निरसन कर उनकी काशी में किसी की दुकानदारी नहीं चलेगी की बात का समुचित उत्तर दीजिये। कल ही मैंने काशी के समस्त सन्यासीवर्ग का अपने आवास स्थान पर भिक्षा निमन्त्रण किया है। आपके श्रीचरणों में सादर निवेदन है कि आप भी अवश्य उपस्थित हों। तपन और चन्द्रशेखर ने भी महाराष्ट्रीय ब्राह्मण की बातों का समर्थन किया। प्रभु कहने लगे जो व्यक्ति भगवान् को नहीं मानता उसके मुख से कभी कृष्ण नाम नहीं निकलता तभी तो वे मेरे कृष्ण शब्द को छोड़कर केवल चैतन्यमात्र कहते हैं। दूसरी बात यह है कि दुकानदार जब देखता है कि उसका सामान नहीं बिकता तब वह क्षति उठाकर भी सामान को जो कुछ मूल्य मिलता है उसमें ही बेचकर चला जाता है। मैं काशी आया था, बड़ा बोझा लेकर और उसी भाँति बोझा वहन कर चला जाऊंगा। रही निमन्त्रण की बात, आपकी इच्छा में ही मेरी इच्छा है। कल का दिन करुणामय कृष्ण पर छोड़ दो, वे जो कुछ करेंगे वह निश्चय ही जीव के कल्याण के लिये करेंगे।

दूसरे दिन का प्रभात एक अद्भुत सन्देश लेकर आया है। काशी का यह विशाल सन्यासीवर्ग चन्द्राकार रूप में बैठा हुआ है। सामने ही उच्च सिंहासन पर सर्वश्रेष्ठ परिब्राजक प्रकाशानन्दसरस्वतीपाद विराजित हैं। जीव ब्रह्म और प्रकृति के प्रकृत पक्ष पर शास्त्रार्थ चल रहा है। अविराम सुरसरस्वती-सरिता समन्वय समाधान की दिशा में पूर्ण वेग से प्रवाहित हो रही है।

वह देखो! सन्यासीवर्ग में एक हलचल हुई, सम्पूर्ण सन्यासीमण्डल ससम्भ्रम उठकर खड़ा हो गया। दर्शन की तीव्र उत्कण्ठा से एक ने दूसरे को झकझोर दिया। सामने से वह तेजोदीप्त प्रकाण्ड अविरत हरिनाम ध्वनिरत हेम गौर चैतन्य अपनी अलौकिक छटाओं को विखेरता हुआ मन्थर गति से अपने चार भक्तों के साथ सन्यासियों का करबद्ध अभिवादन कर एक संकुचित स्थान में बैठ जाता है। भक्तगण विशेष भाव से चिन्तित हैं न जाने प्रभु की क्या लीला है?

यह तो वही नवद्वीपबिहारी प्रेमरस सञ्चारी गौर नागरवर की रूप-माधुरी है जिसे देखकर प्रकाशानन्द का मन प्राण व्याकुल हो रहा है। इस कपट सन्यासी की गैरिक पट की फहरान उन्हें भाव विमुग्ध कर रही है। उनका वह चिर शत्रुता भाव शनैः शनैः मिटता जा रहा है। उनके प्राणों में एक प्रकार का स्पन्दन हो रहा है। वे अपलक दृष्टि से उस गौर की ओर देख

रहे हैं जो अपनी अलौकिक आभा से मायाबद्ध जीवों के हृदयान्धकार को दूर करता जा रहा है। वे रुक न सके, उठे, उनके साथ विशाल सन्यासीवर्ग भी उठ खड़ा हुआ। यह कैसे हो सकता है कि संकुचित स्थान पर चैतन्य बैठें। श्रीपाद ! उठिये। इस स्थान पर बैठकर आप हमें क्यों लज्जित कर रहे हैं ?

प्रभु ने प्रकाशानन्द की वाणी सुनी और करबद्ध खड़े होकर दीन-भाव से कहने लगे। प्रभो ! इतने बड़े आपके विद्वत् समाज में ज्ञानहीन मैं भला कैसे बैठ सकता हूँ ? यह कहकर अवनत मुख हो प्रभु पुनः बैठ गये।

प्रकाशानन्द पर अब न रहा गया। वे स्वयं उठे और हाथ पकड़कर प्रभु को अपने समीप उच्चासन पर बिठाया और यह कहा। श्रीपाद ! आपकी तेजोदीप्त मुखकान्ति देखने से यह निश्चय ज्ञात होता है कि आप साक्षात् नारायण हैं पर वेदना तो यह है कि हम और आप एक सम्प्रदाय के होते हुये भी आप हमसे क्यों नहीं मिलते ? सन्यासियों के प्रमुख कृत्य वेदपाठ पर भी आपकी अभिरुचि नहीं है। नाचना, गाना क्या हम लोगों के लिये उचित है ? यदि आप ही ऐसे गर्हित कृत्य करेंगे तब क्या सांसारिक लोकजन हमारी निन्दा न करेंगे? प्रभु क्या कहते हैं इसके लिये सन्यासीवर्ग की उत्कण्ठा प्रतिपल बढ़ती जा रही थी। प्रभु उठे पुनः कहने लगे। श्रीपाद ! मैंने जब श्रीगुरुदेव द्वारा दीक्षा ली थी तब गुरुदेव ने मेरी मूर्खता को देखकर यह सोचा कि यह संसार में कुछ नहीं कर पायेगा, मूर्खता के कारण वेद-वेदान्त का वास्तविक रहस्य भी यह नहीं समझ सकेगा अतः मेरी मूर्खता को दृष्टिकोण में रखकर उन्होंने कहा—वत्स ! मैं तुझे एक ऐसा साधन बतला रहा हूँ जिसके आश्रय से तुम मायापाश से विमुक्त हो श्रीकृष्णपदाम्बुज पा सकोगे। यह कलियुग के जीवों की मुक्ति के लिये—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

एकमात्र सर्वोत्तम साधन है। हरिनाम के बिना जीव की अन्य कोई गति नहीं है। इसे तुम सदा स्मरण रखो।

प्रभु के श्लोक की उच्चारण शैली तथा भावगतपक्ष की अद्भुत व्याख्या सुनकर सन्यासीवर्ग ही नहीं प्रकाशानन्द भी चमत्कृत हो उठे। महाप्रभु ने इस व्याख्याक्रम को आगे बढ़ाते हुये यह भी कहा कि—श्रीपाद ! जब मैं इस भुवनमङ्गल मधुरातिमधुर मन्त्र का जप करने लगता हूँ तब मेरे आँखों से आँसू बहने लगते हैं मैं नाचने और गाने लगता हूँ मुझे यह नहीं

जान पड़ता कि मैं पागल हूँ अथवा स्वस्थ। मेरे लिये यह ऐसी विपत्ति थी जिससे छुटकारा मिलना असम्भव था, मैं पुनः श्रीगुरुदेव के श्रीचरणों में पहुंचा अपनी सम्भावित विपत्ति की बातें उन्हें बतलाई, वे तनिक हँसे और कहने लगे पुत्र ! यही तो निगमागम फल का मधुर चैतन्य रस है, इसे ही अविरत पान करते रहो, यही सांसारिक जीव के उद्धार का सरल पथ है जिसके आगे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष तृणवत् प्रतीत होते हैं। उसी-समय से मैं इसे जपता आ रहा हूँ और जो कुछ करता हूँ वह नाम की अचिन्त्यशक्ति द्वारा सम्पन्न होता आ रहा है।

प्रभु के इन वाक्यों को सुनकर प्रकाशानन्द कहने लगे, श्रीपाद ! आप जो कुछ कह रहे हैं वह ठीक है किन्तु आप वेद का अध्ययन क्यों नहीं करते? यह सुनकर प्रभु कहने लगे, श्रीपाद ! वेद ईश्वरीय वाक्य हैं। इसमें भ्रम प्रमाद आदि दोषों की सम्भावना नहीं है। वेद का मुख्यार्थ सर्वथा माननीय है किन्तु आचार्य शङ्कर के वाक्य ईश्वरीय वाक्य कदापि नहीं हो सकते। वेद का वास्तविक अर्थ उसके सूत्रों में मिलता है आचार्य शङ्कर के भाष्य से यह ज्ञात नहीं होता। सूत्र का अर्थ परिष्कृत होने पर भी शङ्कर ने उसका अर्थ स्पष्टतः विकृत रूप में किया है यह मेरा अभिमत है।

चैतन्य की मुख निःसृत वाणी को सुनकर प्रकाशानन्द कहने लगे-- श्रीपाद ! आप ऐसा क्यों कहते हैं ? भगवान् शङ्कर जगद्गुरु होने के कारण सर्वथा प्रणम्य हैं। आप उनके वाक्यों को उन्हीं के भाष्य द्वारा खण्डन कर रहे हैं, यह आपके लिये उचित नहीं है।

यह सुनकर प्रभु कहने लगे--श्रीपाद ! आचार्य शङ्कर सर्व जनों के अवश्य प्रणम्य हैं इसमें कोई सन्देह नहीं पर वे 'कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथाकर्त्तुम्' ईश्वर के समान कभी नहीं हो सकते। षडैश्वर्यपूर्ण भगवान् का ही वास्तविक स्वरूप ब्रह्म है जिसे शङ्कर ने निर्विशेष ब्रह्म के रूप में ग्रहण किया है। सच्चिदानन्द घनश्यामलस्वरूप श्रीकृष्ण को मायिक मानना क्या कम अपराध है ? परिणामवाद को विवर्तवाद बतलाकर व्यास को ही भ्रान्त बतलाना यह कहाँ तक उचित है ? श्रीचैतन्यदेव की सुधामिश्रित सारबाणी को सुनकर प्रकाशानन्द कहने लगे--

श्रीपाद ! भगवान् शङ्कर का लक्ष्य विश्व में 'अद्वैतवाद' की स्थापना का था, भगवत्ता मानने पर अद्वैतवाद की स्थापना नहीं हो सकती थी अतः उन्होंने सर्व शास्त्रों का खण्डन कर अपने मत की स्थापना की। दूसरा यह भी कारण है कि जब मीमांसक ईश्वर को कर्म का अङ्ग, सांख्य जागतिक प्रकृतिकारण, न्याय परमाणु से विश्व की उत्पत्ति, मायावाद ब्रह्म की

निर्विशेषता एवं योग ईश्वर की स्वारूप्यता निरूपण कर अपने मत का मण्डन और दूसरों के मतों का खण्डन कर रहा है ऐसी दशा में भगवान् शङ्कर का 'अद्वैतवाद' ही सर्वश्रेष्ठ वाद है जिसके द्वारा जीव स्वब्रह्मस्वरूप की वास्तविक अनुभूति प्राप्त करता है।

सर्वश्रेष्ठ सन्यासी प्रकाशानन्द के मन में प्रतिपद जीव ही ईश्वर है यह भावना छाई हुई थी, वे भक्ति के वास्तविक अर्थ को नहीं समझ सकते थे। उससमय भारत में वेदप्रणोदित राष्ट्रीयधर्म परम्परा का प्रचलन था। मानव अपने कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का निर्णय वेद वाक्यों के अनुसार करता था। आचार्य शङ्कर यह सब जानते हुये भी 'मैं ही ब्रह्म हूँ' इस वाद को विश्व में चलाना चाहते थे। वेद वाक्यों से हटना उससमय बड़ा कठिन कार्य था इसीलिये उन्होंने वेद वाक्यों का स्वमन: कल्पित अर्थ कर 'अद्वैतवाद' की स्थापना की थी। आज भगवान् चैतन्य की वाग्वैदग्धी से प्रकाशानन्द के मन में यह विषय पूर्णरूपेण समझ में आगया था। अब उनके मन का श्रीचैतन्य के प्रति क्रोध जिसने उनके गोपालभट्ट और वासुदेव को ज्ञानमार्ग से हटाकर भक्तिमार्गगामी बना दिया, सन्यासी होकर नाचता और गाता है यह घृणा भाव एवं मुझसे भी अधिक सर्वजन समादृत है यह द्वेष भाव पूरी तरह जा चुका था। उनकी दृष्टि में आज यह बात समा गई थी कि कृष्णचैतन्य एक अप्रतिम विद्वान्, मधुरातिमधुर लावण्यधारी अवतार हैं। उनकी हृदयान्धकार तमिस्रा का आज अवसान हो गया था। उनके पाण्डित्य गर्व की पाषाण रेखा परम करुणामय प्रभु की शास्त्र चर्चा से सर्वथा मिट चुकी थी, उनके मन का कपट छलछिद्र भाव एक-एक कर नष्ट होता जा रहा था। श्रीचैतन्य की आप्त वाणी श्रवण से आज प्रकाशानन्द की भाव दशा ही बदल गई। वे दीनता की प्रतिमूर्त्ति के रूप में श्रीचैतन्य चरणों में गिर पड़े। अश्रुओं की अविरल अजस्त्र विन्दु धाराओं ने श्रीचैतन्य चरणों को धो डाला। प्रभु ने ससम्भ्रम प्रकाशानन्द को उठाया, गले लगाया और कहने लगे–श्रीपाद! इतने अधीर न बनो। श्रीकृष्ण बड़े करुणामय हैं उनकी जब मायाबद्ध जीव पर अहैतुकी अनुकम्पा हो जाती है तब ही वह उस माया मरीचिका से छुटकारा पाता है। पांच दिन की इस शास्त्रीय चर्चा का यह विराम दिवस था। सन्यासीवर्ग जो सदा 'शिव' और 'सोहम्' रटते-रटते गर्वित हो रहा था वे आज दोनों हाथों को ऊंचा उठा–

'हरि हरये नम: कृष्ण यादवाय नम:।
यादवाय माधवाय केशवाय नम:॥'

कहकर नाच और गा रहा है। काशी की गली-गली आज हरिनाम की मधुर

ध्वनि से मत्त हो रही है। कोटि-कोटि कण्ठों से निकला अविराम हरिनाम आज जागतिक जीव जनजाति को पावन कर रहा है। जिधर देखो उधर भुवनमङ्गल हरि हरि ध्वनि मानव मानस को उद्वेलित कर रही है। बिना किसी जातिवर्ग विचार के जन-जन हरि हरि कहकर एक दूसरे से लिपट रहा है, रो और गा रहा है। स्थावर जङ्गम इस प्रेम पयोधि प्रवाह में डुबकियां लगा रहा है। जिस जड़ वट विटप को अपनी अचिन्त्य शक्ति द्वारा चतन्य बनाकर 'चैतन्यवट' की संज्ञा दे उसके प्रान्तस्थल में स्थित हो जागतिक जनों को कलियुग का एकमात्र साधन 'हरिनाम' सङ्कीर्त्तन बतला कृष्ण प्रेम में पागल बनाया था वे महाप्रभु चैतन्यदेव जो बोझा उठाकर लाये थे उसे दोनों हाथों से लुटाकर चल दिये। मायाबद्ध जीव को प्रेम बन्धन में बांध वे आये और गये।

श्रीचैतन्यदेव के काशी से जाने के पश्चात् श्रीप्रकाशानन्द की मनोभाव दशा ने बहुत बड़ा मोड़ लिया, वे अब सन्यासियों के आडम्बरपूर्ण गरिमागर्वित पद का परित्याग कर प्रेमपथ के पथिक बन चुके थे। उन्हें अब अपने वेदान्तप्रनिपाद्य ब्रह्म व्रजवधूयों के बन्धन में बँधे हुये दिखलाई दे रहे थे। वे घटों अपने विशाल मठ के बिन्दु माधवस्थित भागीरथी सैकत मण्डित घाटों पर हा गौर! कहकर रोते रहते। उनका एक-एक पल प्रभु के वियोग में युगों के समान बीत रहा था, उनके लिये समस्त संसार शून्य सा प्रतीत हो रहा था। अधीरता दिन पर दिन बढ़ती जा रही थी। श्रीचैतन्यदेव के संक्षिप्त समागम से उनका मन पूरी तरह नहीं भर पाया था अभी बहुत कुछ समझना सीखना उन्हें बाकी था अन्त में वे एक बार फिर प्रभु दर्शन की उत्कट लालसा को लेकर गौराङ्ग के कन्था करङ्गिया कङ्गाल भक्त के रूप में नीलाचल की ओर चल पड़े। नीलाचल पहुँचकर वे अपने सतीर्थ बान्धव सार्वभौम वासुदेव के समीप पहुँचे। अब उनमें आश्चर्यजनक परिवर्त्तन आ चुका था। उनकी वेदान्त-निष्णातता पूर्णरूपेण विगलित हो चुकी थी। वे भक्तिरससागर की उत्ताल तरङ्गों में डूबते उछलते दिखलाई दे रहे थे। प्रभु पुनः प्रकाशानन्द से मिलकर परम प्रसन्न हुये और कुछ दिनों उन्हें अपने समीप रखकर व्रज वृन्दावन, श्रीराधा की प्रणय महिमा के साथ समुज्वल रस सिद्धान्तों के वास्तविक रहस्यों की शिक्षायें दी।

प्रकाशानन्द की प्रभु के श्रीचरणों में कुछ दिनों रहने की उत्कट लालसा थी। वे प्रभु के आग्रह से नीलाचल में कुछ दिनों रहे और उन्होंने श्रीचैतन्यदेव से शिक्षा लाभ की।

श्रीचैतन्यदेव के निकटस्थ रहने के कारण उनकी अलौकिक महाभाव दशा का जो दर्शन किया था उसे ही स्वरचित 'श्रीचैतन्यचन्द्रामृत' ग्रन्थ में उन्होंने विशदरूप से चित्रण किया है–१ कभी वे व्रजविरहिणीभावविभावित श्रीराधा नीलमणि मिलित ज्योतिपुञ्जित, २ कोटि-कोटि अद्वैतवादी शिरोमणि कनकवर्ण गौर, ३ नित्योत्सवस्वरूप श्रीजगन्नाथ के मुखकमल को अपलक दृष्टि से निहारते हैं। ४ कभी सागर के समीप श्रीवृन्दावन स्मृति में 'आईटोटा' पुष्पवाटिका में जाते और नृत्य करते हैं; ५ कभी कांपते हाथों से 'हरेकृष्ण' महामन्त्र की जपसंख्या के लिये अपने कटिदेश में बँधी हुई डोरी में गांठे लगाते रोते हुये श्रीजगन्नाथ मन्दिर में जाते हैं, ६ कभी बदरीपाण्डु-कपोल पर अपना वांया हाथ रख रोते और कलपते हैं, ७ कभी अपने अनुगतों को 'तृणादपि सुनीचता' अपने को तिनके से नीचा समझो का उपदेश

---

१. गौरः कोऽपि व्रजविरहिणीभावमग्नः—७८

२. कोटयद्वैतशिरोमणिः—१०२

३. सदारङ्गे नीलाचलशिखरशृङ्गे विलसतः—३६

४. कलिन्दतनयातटे स्फुरदमन्दवृन्दावने,
विहाय लवणाम्बुधेः पुलिनपुष्पवाटीं गतः ॥ १२६

पयोराशेस्तीरे स्फुरदुपवनालिकलनया,
मुहुर्वृन्दारण्यस्मरणजनितप्रेमविवशः ।
—श्रीचैतन्याष्टक श्रीरूपगोस्वामीपाद

५. बध्नन् प्रेमभरः प्रकम्पितकरः ग्रन्थीन् कटिडोरकैः,
संख्यातुं निजलोकमङ्गलहरेः कृष्णेति नाम्ना जपन् ।

हरेकृष्णेत्युच्चैः स्फुरितरसनो नामगणना,
कृतग्रन्थिश्रेणी सुभगकटिसूत्रोज्वलकरः ।
—श्रीचैतन्याष्टक श्रीरूपगोस्वामीपाद

६. कुर्वन् पाणितले निधाय बदरीपाण्डुं कपोलस्थलीं,
आश्चर्यं लवणोदरोधसि वसन् शोणं दधानोंऽशुकम् ॥

७. तृणादपि सुनीचतां सहजसौम्यमुग्धाकृतिः,—८५
तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुता ।
अमानिना मानदेव कीर्त्तनीयः सदा हरिः ॥
—शिक्षाष्टक भगवान् श्रीचैतन्यदेव

देते और १ कभी विशुद्ध स्वकीय प्रेमोन्मद मधुर पीयूषलहरी को मुक्तहस्त से लुटाते हैं,जब उनकी यह महाभाव दशा उन्नत होती है तब उनके[२] रोमकूप कदम्ब के पुष्प के समान उभर आते हैं। श्रीप्रभु की यह समस्त महाभाव दशायें निकटस्थ होकर कई कई बार प्रकाशानन्द ने देखी थी, श्रीप्रभु की इसी महाभाव दशा का तदनुरूप वर्णन श्रीरूपगोस्वामीपाद ने भी किया है। रथयात्रा के अवसर पर[३] श्रीअद्वैताचार्य एवं श्रीबक्रेश्वर पण्डित आदि भक्तों के दर्शनों का भी सौभाग्य श्रीप्रकाशानन्द को प्राप्त हुआ था जिसका उन्होंने यथा स्थान उल्लेख किया है।

एक दिन प्रकाशानन्द ने नीलाचल के सुविस्तृत पथ पर इधर-उधर नाचती, अपने प्रकाण्ड भुजदण्डों को बार-बार ऊपर उठाती, आँखों से अविरल अश्रुधारायें बहाती, हरिनाम की मधुर मादक ध्वनि से जन-जनों के अमङ्गलों को हरती, एक अपूर्व लावण्यमयी स्वर्णवर्ण प्रतिमा जिसके तेजोमय प्रकाशपुञ्ज से दिग्दिगन्त प्रभासित हो रहा है को देखा।

प्रभु के एक बार के ही दर्शन से प्रकाशानन्द का सारा शरीर सिहर उठा हाथ पाँव शिथिल पड़ गये वे नितान्त व्याकुल हो कहने लगे—मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? यह चैतन्य की मधुर उच्च हरिनाम ध्वनि मेरे वज्र से

---

१. विशुद्धस्वप्रेमोन्मदमधुरपीयूषलहरीं,
प्रदातुं चान्येभ्यः परपदनवद्वीपप्रकटम्।
अनर्पितचरीं चिरात् करुणयावतीर्णः कलौ,
समर्पयितुमुन्नतोज्वलरसां स्वभक्तिश्रियम्।
हरिः पुरटसुन्दरः द्युतिकदम्बसन्दीपितः,
सदा हृदयकन्दरे स्फुरतु नः शचीनन्दनः॥
—श्रीरूपगोस्वामीपाद

२. निन्दन्तं पुलकोत्करेण विकसन्नीपप्रसूनच्छविं,
नृत्यन्तं द्रुतमश्रुनिर्झरचयैः सिञ्चन्तमुर्वीतलम्।
—श्रीप्रबोधानन्दपाद

भुवं सिञ्चन्नश्रुश्रुतिभिरमितः सान्द्रपुलकैः,
परीताङ्गो नीपस्तवकनवकिञ्जल्कजयिभिः॥
—श्रीचैतन्याष्टक श्रीरूपगोस्वामीपाद

३. ....तेऽद्वैतचन्द्रादयः।
अहो वैकुण्ठस्थैरपि— यदनुचरवक्रेश्वरमुखाः।
—चैतन्यचन्द्रामृत

भी कठोर हृदय को चीर कर भीतर की ओर धँसती जा रही है। इसकी एक बार की चितवन ने मेरी जीवनभर की कमाई विरक्तता को चुरा लिया। इस कपट सन्यासी ने तो मुझे कहीं का न रखा। यह कह कर वे साधारण-जनों की भांति रो उठते हैं। वे भली प्रकार जानते हैं कि एक सन्यासी के लिए सार्वजनिक मार्ग पर रोना अनुचित है पर करें तो क्या करें? यह आनन्द के आंसू रुक ही नहीं पा रहे हैं। उनका सारा शरीर भीगता जा रहा है। सिसकियों से गला भी रुँध चला। हृदय सरोवर में आनन्द की शत-शत उत्ताल तरंगें बार-बार आ और जा रही हैं किन्तु इस स्वर्णवर्ण प्रतिमा के नृत्य का विराम नहीं। सहसा वे मूर्च्छित हो गिर पड़ते हैं। भक्तवृन्द उन्हें उठा कर सावधान करते हैं. संज्ञा होने पर वे स्वयं 'हरि-हरि' कहकर नाचने लगते हैं। प्रभु के निरन्तर साहचर्य से प्रकाशानन्द की भाव दशा बदल गई वे अपने स्व को भूलकर श्रीगौरभक्ति के बिना सर्वजन-वन्दित ख्याति,आश्चर्य-जनक बहुकाल-व्यापिनी सिद्धि और सारुप्य मुक्ति को भी तुच्छ समझने लगे।

दयामय महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव ने प्रकाशानन्द के मानस पटल की मिटती हुई अद्वय ज्ञानतत्त्व प्रकाश रेखाओं के स्थान पर विशुद्ध सच्चिदानन्द घनश्यामल गौरयुगल तत्त्वका वास्तविक प्रबोध देखकर उनका नाम[1] प्रबोधानन्द रखा और उन्हें श्रीधाम वृन्दावन गमन का आदेश दिया। प्रकाशानन्द प्रबोधानन्द के रूपमें प्रभुके श्रीचरणों में सश्रद्ध नमन कर नीलाचल से नदी पथ द्वारा[2] मथुरा आये एवं वहां कुछ दिनों रहकर श्रीवृन्दावन के उस सुरम्य स्थान जहाँ नागपत्नियों ने श्रीकृष्ण से अपने पति कालिय नाग के लिये—

'न्यायो हि दण्डः कृतकिल्विषेऽस्मिन् तवावतारः खलनिग्रहाय।

श्रीमद्भागवत १०।१६।३३

कहा था अतः अपने को कालिय नाग के समान पातकी और श्रीगौर-सुन्दर को खलनिग्रहकारी अवतार मानकर प्रबोधानन्दसरस्वती कालीदह पर निवास करने लगे।

---

१. प्रकाशानन्दसरस्वती नाम तार छिल।
प्रभुह प्रबोधानन्द वलिया राखिल।।

—वङ्गभक्तमाल

२. आज भी यह स्थान प्रबोधानन्द की निवास स्थली के कारण 'यतिघाट' नाम से प्रसिद्ध है।

'श्रीचैतन्यचन्द्रामृत'[१] तथा 'चैतन्यचरितामृत'के टीकाकार 'आनन्दिन' एवं 'श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्ती के अनुसार काशी निवासी सर्वश्रेष्ठ परिब्राजक एवं अप्रतिम विद्वान् 'प्रकाशानन्द सरस्वती' भगवान् श्रीचैतन्यदेव के 'प्रिय पार्षद' प्रबोधानन्द सरस्वती के रूप में श्रीवृन्दावन आये थे इसे ही श्रीगोपाल-भट्ट गोस्वामी ने स्वरचित 'भगवद्भक्ति विलास' स्मृति के प्रारम्भिक श्लोकों में—

'चैतन्यदेवं भगवन्तमाश्रये,
प्रबोधानन्दस्य…………[२]भगवत्प्रियस्य ।'

श्रीचैतन्यदेव की पूर्णतम भगवत्ता तथा स्वपितृव्य प्राध्यापक श्रीप्रबोधानन्द की भगवत्प्रियता अर्थात् भगवान् चैतन्यदेव के प्रिय अथवा भगवान् जिनके प्रिय हैं प्रतिपादित की है।

'साधनदीपिका'[३] तथा श्रीजीवगोस्वामी कृत 'वैष्णववन्दना' में भी व्रजस्थित श्रीप्रबोधानन्द को श्रीगोपालभट्ट के पितृव्य प्राध्यापक तथा 'चैतन्य-चन्द्रामृत'के रचयिता के रूपमें परिवर्णित किया गया है। श्रीवृन्दावन स्थिति-काल में श्रीप्रबोधानन्द[४] श्रीरूप तथा श्रीजीव के सहयोगी[५] गौरगुण गायक के रूप में माने जाते थे।

---

१. सन्यासिनः प्रकाशानन्दादयः मुख्याः श्रेष्ठास्तावत् काश्यां नितराम्"……।

२. वहुव्रीहिणा तत्पुरुषेण वा समासेन तस्य माहात्म्यजातं प्रतिपादितम् ।
भगवद्भक्ति-विलास की दिग्दर्शिनी टीका

३. श्रीमत्प्रबोधानन्दस्य भ्रातुष्पुत्रं कृपालयम् ।
श्रीमद्गोपालभट्टं तं नौमि श्रीव्रजवासिनम् ॥ अष्टम-कक्षा

४. रूपः जीवः श्रीप्रबोधानन्दः । वैष्णवाभिधान

५. सा प्रबोधानन्दयतिः गौरोद्गानसरस्वती ।
—श्रीकविकर्णपूर

अहो श्रीप्रबोधानन्द निवेदि तोमारे ।
गौरगुणे ते वारेक माताओ आमारे ॥
—श्रीनरहरिदास

प्रबोधानन्द गोसांई वन्दिव यतने ।
जे करिल महाप्रभुर गुणेर वर्णने ॥
—श्रीदेवकीनन्दन

श्रीप्रबोधानन्दसरस्वतीपाद ने शतसहस्राधिक श्लोकप्रमाण अपूर्व धाम-निष्ठात्मक 'श्रीवृन्दावन-महिमामृत'[1] शत शतक, 'नाम-निष्ठात्मक' 'श्री-चैतन्यचन्द्रामृत' रसात्मक 'सङ्गीत-माधव', रासरस विशेष-परक 'आश्चर्यरास-प्रबन्ध', श्रीराधाकृष्ण युगल की नित्य विहारात्मक[2] 'गीतगोविन्द व्याख्या' वेदान्तप्रतिपाद्य व्रजरसाभिव्यञ्जक 'श्रुतिस्तुति-व्याख्या' कामगायत्री तथा काम-वीज की सारगर्भित व्याख्यायें एवं गोपालतापनी की 'कृष्णवल्लभा' टीका आदि अपूर्व ग्रन्थों का प्रणयन किया जिसमें श्रीराधिका के समुज्वल-सौन्दर्यैकसीम रससार सान्द्र सुधा स्वरूप की पाण्डित्य पूर्ण परिवर्णना की गई है। श्रीसरस्वतीपाद द्वारा प्रतिपादित इस स्वारहस्यसमन्वित सिद्धान्त निधि ने कोटि-कोटि विषम भवतापतापितजनों को उनके अशान्तमय जीवन से उठाकर प्रशस्त प्रेमपथ पर पुरस्सर होने की प्रेरणा दी। इनकी 'हरिलीला भागवत रहस्य'[3], एवं दार्शनिक 'सिद्धान्तमुक्तावली' नामक अनुपम कृतियों का भी अनुसन्धान मिला है। इनकी अधिकांश रचनाओं में स्थान-स्थान पर [4]'सरस्वती' [5] प्रवोध' नामों के समुल्लेख होने से इनकी एकरूपता स्वतः सिद्ध हो रही है।

गोपालतापनी की 'कृष्णवल्लभा' टीका के आरम्भिक मङ्गलात्मक श्लोकों में आपने प्रच्छन्न रूप से ब्रह्मलोक में ब्रह्मा द्वारा आराधित अष्टा-दशाक्षर[6] गोपालमन्त्र का समुल्लेख किया है—

'कन्दर्पानन्द (क्लीं) कृष्णाय गोविन्दाय नमोऽस्तुते।
गोपीजनवल्लभाय स्वानुरक्तात्महारिणे॥

---

१. वर्त्तमान में १७ शतक उपलब्ध हैं। १७ वें शतक का पद्यानुवाद 'भगवत-मुदित' द्वारा १७०७ वै० में किया गया है।

२. गीतगोविन्द व्याख्या में भक्तिरसामृतसिन्धु तथा उज्वलनीलमणि का उल्लेख होने से इसकी रचना काल १६०५ वैं० के लगभग है।

३. वृन्दावन-शोध संस्थान में उपलब्ध श्रीजीवगोस्वामी की हस्ताक्षरित सूची।

४. गायन रसिकसरस्वतीवर्णितमुज्वलभावविहारम्।

—सङ्गीत-माधव

५. राधाकान्तमधुरप्रेमोद्भूत्यै श्रुतिस्तुतिम्।
व्याख्याति वहुयत्नेन प्रबोधस्तज्जुषां मुदे॥

—श्रुतिस्तुति—व्याख्या

६. जार ध्यान निजलोके करे पद्मासन।
अष्टादशाक्षर मन्त्रे करे उपासन॥

'श्रीमद्गोपालतापनीश्रुतेः टीकां शुभावहाम् ।
कुर्वे श्रीकृष्णचैतन्यशक्त्या श्रीकृष्णवल्लभाम् ।।'

एवं इसके उपान्त में–

'इति श्रीपरमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीश्रीप्रबोधानन्दसरस्वती प्रकाशितायां श्रीश्रीगोपालतापनीयोपनिषद् टीकायां श्रीकृष्णवल्लभाख्यायामुत्तरभागटीका समाप्ता'। यह अभिलेख प्राप्त होता है।

श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती द्वारा विरचित टीका एवं उसके उपान्त श्लोक का उद्धरण श्रीजीवगोस्वामीपाद ने गोपालतापनी की स्वरचित 'सुखबोधनी' टीका में भी किया है—

विश्वेश्वरजनार्दनभट्टाभ्यां वैदिकाग्र्याभ्याम् ।
तद्वत् प्रबोधयतिना लिखितं विरचितमत्र तारतम्येन ।।

उपान्त श्लोक—

गान्धर्वीवरगान्धर्वो गन्धवन्धुरशर्म्मणे ।
वृन्दावनाबनिवृन्दवन्दिते नन्दितात्मने ।।

श्रीमन्हाप्रभु चैतन्यदेव के प्रधान आनुगत्यरूप में रसराज महाभावस्वरूप श्रीराधामाधव की नित्य नव निभृत निकुञ्ज लीला रसोल्लास एवं सखीगण समन्वित नित्य निकुञ्ज विहार रसोपासना का सर्वप्रथम समुपासन एवं प्रचलन अपनी रचनाओं के माध्यम से श्रीप्रबोधानन्दसरस्वतीपाद ने श्रीवृन्दावन धाम में किया था।

नव गौर श्यामल द्वन्द श्रीराधामाधव की निर्द्वन्द रसकेलि परम्परा की प्रत्यक्षानुभूतपरिवर्णना में जितना सरस्वतीपाद सफल हुए हैं उतना अन्य कोई नहीं; वस्तुतः यह सरस्वतीपाद की प्रेरणा और समाश्रयता है जिसके वल पर अन्य अनेक साधक इस लीला रस परिपाक का चित्रण एवं अनुचिन्तन में समर्थ हुए हैं।

श्रीप्रवोधानन्दसरस्वतीपाद श्रीचैतन्यदेव के नित्य प्रिय पार्षद होने के कारण विशुद्ध परकीयावाद अनुयायी थे, स्थान-स्थान पर इनकी रचनाओं में स्वतः इस सिद्धान्त का प्रतिपादन हो रहा है किन्तु इनका कुछ झुकाव स्वकीयावाद पर भी था वे प्रत्यक्ष व्रजरसोल्लास की दृष्टि से उसके समाश्रयरूप में थे, वे नहीं चाहते थे कि इस ऐकान्तिक ध्येय परकीयावाद सिद्धान्त का सार्वजनीनरूप में प्रचार प्रसार हो, साथ ही वे अपने आराध्य श्रीगौर-

सुन्दर की नागरवर समुपासना एवं परिवर्णना में भी कुछ हानि नहीं समझते थे किन्तु उनका यह सिद्धान्त श्रीरूपानुग वैष्णवजनों के लिये अभिप्रेत नहीं था। यह विश्व वैष्णव राजसभा सभाजन श्रीरूप सनातनानुशासन वेला थी, कोई भी माध्वगौडेश्वर-सम्प्रदायानुगत वैष्णव व्रज में इस निर्द्धारित दृढ़ वज्र रेखा के बाहर नहीं जा सकता था और बाहर जाने पर पुन: उसके प्रत्यावर्त्तित होने का प्रश्न ही नहीं था किन्तु उस समय प्रबोधानन्द के प्रखर पाण्डित्य, नित्य श्रीचैतन्यानुगतत्त्व एवं वयोज्येष्ठ श्रेष्ठ वैष्णवाचार्य होने के कारण विरक्त गौड़ीय वैष्णवगण इसे सार्वजनीनरूप में विवेचना का प्रश्न नहीं बनाना चाहते थे, दूसरा कारण यह भी था कि श्रीसरस्वतीपाद अपने अन्यतम सहयोगी श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी के पितृव्य थे अत: 'भिन्नरुचिर्हि लोक:' मानकर गौड़ीय वैष्णव समुदाय उनके जीवन काल में प्राय: मौन ही रहा।

श्रीरूपगोस्वामीपाद के अन्तर्द्धान के पश्चात् एक ऐसा समय भी आया जब कुछ गौड़ीय वैष्णवजन सम्प्रदाय-पथ से हट कर श्रीप्रबोधानन्दसरस्वतीपाद समाश्रित स्वकीयावाद सिद्धान्त को मान्यता देने लगे इसी को लक्ष्य कर श्रीजीवगोस्वामीचरण द्वारा 'उज्वल-नीलमणि' की 'लोचन-रोचनी' टीका के उपान्त श्लोक में—

स्वेच्छया लिखितं किञ्चित् किञ्चित् तत्र परेच्छया।
यत्पूर्वापरससम्बन्धं तत्पूर्वमपर परम् ॥

यहाँ स्वेच्छाक्रम से कुछ परेच्छाक्रम से जो कुछ लिखा गया है वह पूर्वापर सम्बन्धयुक्त स्वेच्छा और सम्बन्धशून्य परेच्छाकृत समझना चाहिये।

प्राय: एक शतक पर्यन्त यह स्वकीयावाद सिद्धान्त वैष्णवों में कुछ-कुछ अस्वाभाविक गति से चलता रहा अन्त में १७०० वीं शताब्दी के मध्यकाल में श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्तीपाद ने अपनी प्रौढ़ प्राञ्जल युक्तियुक्त रचनाओं के माध्यम से इस स्वकीयावाद सिद्धान्त का खण्डन करते हुये श्रीरूपानुग गौड़ीय वैष्णवजनों के लिये परकीयावाद सिद्धान्त ही सर्वश्रेष्ठ और समुपास्य है यह निर्णय लिया।

श्रीसरस्वतीपाद की ऐकान्तिकनिष्ठ नील पीताभ युगल रसोपासना इतनी समुज्वल और सर्वोत्कृष्ठ थी कि श्रीकविकर्णपूर द्वारा इन्हें सखीसमाज में सर्वश्रेष्ठा जिनके वाक्यों को श्रीराधा कभी अमान्य नहीं करती

दक्षिण प्रखरा[1] तुङ्गविद्या के रूप में रखा गया। दूसरा यह भी श्लेषार्थ है कि उनकी तुङ्ग अर्थात् सर्वोच्च विद्यावैदग्धी के कारण उन्हें सर्वशास्त्र-विशारदा तुङ्गविद्या प्रधान सखी का पद दिया गया हो।

श्रीनाभा जी कृत 'भक्तमाल' के प्राचीन मुख्य टीकाकार श्रीप्रियादास का निम्नांकित पद श्रीसरस्वतीपाद की रसिकता, श्रीराधाकृष्ण की कान्त कुञ्ज केलि की प्रत्यक्षानुभवता एवं श्रीमन्महाप्रभु चैतन्यदेव की प्रियपार्षदता का तात्त्विक चित्रण करा रहा है—

श्रीप्रबोधानन्द बड़े रसिक आनन्दकन्द,
श्रीचैतन्यचन्द्रजू के पारषद प्यारे हैं।
राधाकृष्ण कुञ्ज केलि निपट नवेली कही,
झेलि रस रूप दोऊ किये दृग् तारे हैं॥

अन्त में श्रीप्रबोधानन्दसरस्वतीपाद दीर्घायुष्य प्राप्त कर सोलहवीं वैक्रमीय के द्वितीय दशक के अन्तिम भाग में श्रावण कृष्णा प्रतिपदा को श्री-गौर गुण गान करते हुये तिरोहित हुये। आज भी प्राचीन कालीदह के समीप आपकी दिव्य समाधि[2] का दर्शन भवतापतापितजों के अन्तस्तल में निरंतर श्रीचैतन्यचन्द्र की शीतल ज्योत्स्ना किरणों का अभिवर्षण कर रहा है।

मधुर-मिलन—

१५८८ वैक्रमीय के अन्तिम भाग में दक्षिण देश से श्रीगोपालभट्ट श्रीवृन्दावन आये और यहाँ की रम्य रासस्थली पर निवास करने लगे।

एक दिन श्रीरूप सनातनगोस्वामी के साथ गोपालभट्ट शतशत तरु लतापरिवेष्टित कलिन्दजा के कल कल निनाद और मयूरों के केका रवों को सुनते हुये श्रीवृन्दावन परिक्रमा पथ से 'कालीदह' के उस दिव्य स्थान पर

---

१. तुङ्गविद्या व्रजे यासीत् सर्वशास्त्रविशारदा।
सा प्रबोधानन्दयतिः गौरोद्गान सरस्वती॥

२. सेई सरस्वती गोस्वामीर जे समाध।
तथाय कालियदमन लीला करेन आस्वाद॥

—बङ्गभक्तमाल

पहुंचे जहाँ एक तपोपुञ्ज साधक गौर गुण गान कर रहे थे। दर्शन की उत्कट लालसा से सभी उनकी कुटीर द्वार पर उपस्थित हुए। साधक ने उपस्थित-जनों को देखा,स्मृति की अस्पष्ट रेखायें साफ होती गईं। पहिचानने में देर न हुई। यह तो अपना ही प्रिय गोपाल है जिसे मैंने गोद में खिलाया पढ़ा लिखा कर बड़ा किया। जिसप्रकार गाय बहुत दिनों से बिछुड़े बछड़े को देखकर उसकी ओर दौड़ती है उसीप्रकार प्रबोधानन्द गोपालभट्ट की ओर दौड़े। मैं यह क्या देख रहा हूँ? यह तो मेरे ही वे पितृव्य हैं जिनके श्रीचरणों में बैठ-कर मैंने शास्त्राध्ययन किया था। कटे वृक्ष की भाँति रोते हुये गोपालभट्ट उनके श्रीचरणों में गिर पड़े। प्रबोधानन्द झुके ओर झट से गोपालभट्ट को अपनी गोद में बैठा लिया एवं बारम्बार मस्तक पर अपना वरद हस्त रखते हुये अजस्र प्रेमाश्रुओं से गोपालभट्ट के सर्वाङ्ग को सिञ्चित करने लगे। श्रीरूप सनातन ने इस महा मधुर मिलन को बड़ी भाव विह्वलता के साथ देखा।

गोपालभट्ट को दुलराते हुये प्रबोधानन्द कहने लगे—

गोपाल! तुझे बहुत दिनों के बाद देखा है। तू तो बहुत बड़ा हो गया। अच्छा किया जो यहाँ आगया। श्रीवृन्दावन प्राप्ति अनेक जन्मार्जित पुण्य फलों से होती है। वृन्दावन के लिए बड़ी कड़ी साधना और तितीक्षा की आवश्यकता है। साधकों के लिये यह आवश्यक है कि वे किसी से असद्व-व्यवहार न करें, न कभी असद्वार्त्तायें कहे और सुने। अच्छा खाना, पहिनना तथा द्रव्य सञ्चय उनके लिये सदैव वर्जित है। उन्हें चाहिये कि वे बिना किसी के दोषों को देखते हुए अपना अवशिष्ट समय भगवच्चिन्तन में लगावें। कूटीनाटी अर्थात् इधर की उधर करना, परनिन्दा, अहम्मन्यता, वर्ग और, वर्णगत भेद भावना ब्रजबास करने वालों के प्रबल शत्रु हैं। इनसे बच कर ही ब्रज का वास्तविक सुख प्राप्त कर सकोगे। कहीं ऐसा न हो कि मिथ्या, गौरव और प्रतिष्ठा तुम्हारे प्रशस्त भक्ति मार्ग में काँटे बन जाँय, इस पर भी पूर्ण दृष्टि रखनी होगी। जब तुम यहाँ आ ही गए हो तो ऐकान्तिकनिष्ठ भावना से गौर श्यामल स्वरूप का अनुक्षण चिन्तन करते रहो। सदा छाया की भाँति श्रीरूप सनातन के साहचर्य में रहना एवं इनके निर्देशवर्त्ती होकर व्रज के बिलुप्त तीर्थों का समुद्धार तथा वैष्णस्मृति, दर्शन ग्रन्थों का प्रणयन करना, इसके द्वारा ही श्रीचैतन्यदेव की मनोऽभीष्ट भावना की पूर्त्ति होगी, यही मेरा आन्तरिक आशीर्वाद है। अब जाओ। अत्यन्त आवश्यकता पड़ने पर ही मेरे समीप आना। अत्यन्त स्नेहानुबन्धन ही वैराग्य मार्ग में बाधक होता है। वत्स! यह मेरा अन्तिम आदेश है—

प्रति बिटप तल विटप वास करना यहाँ वसन जीर्ण प्राचीन परिधान लो,
नीर यमुना का शीतल सदा पान कर ग्राम-ग्रामों में जा भीख का धान लो।
सन्मान को मान विषपान सम सुधारूप अपमान को मान लो,
राधिकाकृष्ण भज ब्रज को तजना मना वत्स! इतनीसी बातें जरा जानलो॥

श्रीगोपालभट्ट श्रीरूप सनातन के साथ श्रीप्रबोधानन्द के चरणोंमें सश्रद्ध अभिवादन कर पुनः परिक्रमा पथ से अपने निर्दिष्ट स्थान पर आगये।

श्रीगोपालभट्ट के श्रीवृन्दावन-आगमन को सूचना—

इधर से श्रीरूप सनातन नीलाचलगामी वैष्णवमण्डली के साथ श्रीमन्महाप्रभु चैतन्यदेव के लिये उनकी प्रिय वस्तु रासस्थली की बालुका, टेंटी और पीलू के फल, मोर के पंख तथा गुञ्जामालायें श्रीब्रज एवं वृन्दावन के नवीन सम्वादों की सूचना-पत्र के साथ प्रेषित करते थे, उधर से श्रीचैतन्यदेव भी वृन्दावनगामी गौड़ीय वैष्णवों के द्वारा श्रीजगन्नाथदेव की साढे चौदह हाथ लम्बी प्रशस्त प्रसादी तुलसीमाला, छुट्टा प्रसादी पान, अपने आदेशपत्र के साथ श्रीरूप सनातन के पास प्रेषित करते थे। यह वृन्दावन नीलाचल की आवश्यक नैमितिक सूचना पद्धति थी। इधर श्रीरूप सनातनगोस्वामी ने श्रीगोपालभट्ट का श्रीवृन्दावन-आगमन सम्वाद श्रीमन्महाप्रभु की प्रिय वस्तुओं के साथ माघ मास के आरम्भ में श्रीजगन्नाथदेव की चन्दन-यात्रा दर्शनार्थी वैष्णवमण्डली द्वारा नीलाचल प्रेषित किया।

नीलाचल स्थितिकाल में श्रीमन्महाप्रभु चैतन्यदेव का दैनिक नियम श्रीजगन्नाथ दर्शन के पश्चात् श्रीपण्डित गदाधर के आवास स्थान में आकर श्रीमद्भागवत श्रवण का था। आज भी वे भक्त-मण्डली के साथ श्रीजगन्नाथ विग्रह दर्शन कर श्रीपण्डित गदाधर के स्थान पर आये। गदाधर ने साक्षात् भगवदवतार श्रीमन्महाप्रभु चैतन्यदेव के श्रीचरणों में सश्रद्ध नमन कर उन्हें उच्चासन पर विराजमान करा प्रसादी चन्दन, माला से उनकी अभ्यर्चना की। प्रभुने प्रिय पार्षद गदाधर का हाथ पकड़ कर अपने पास बिठाया और प्रतिदिन की भाँति श्रीमद्भागवत पाठ की आज्ञा दी। गदाधर की वाणी में एक एसा मिठास था जब वे श्रीमद्भागवत की रसमयी व्याख्या करते तब श्रोतागण झूम उठते, उनके शरीर में सात्त्विक भावों का उदय होने लगता, उनके अजस्र अश्रुविन्दुओं से समस्त धरातल भीग जाता। श्रोता और वक्ता

दोनों ही भाव रस सागर में बहने लगते। उनकी वाणी के गद्गद् स्वर हा कृष्ण ! कहकर ध्वनित हो उठते। श्रीमन्महाप्रभु की भावदशा में तो सौगुना उछाल था। वे श्रीमद्भागवत के पृष्ठों को गदाधर के हाथों से लेकर अपने हृदय में लगाते हुये घण्टों रोते रहते, उनके आँसुओं की अविरल धारा से श्रीमद्भागवत के पृष्ठ भीग जाते थे, जिससे अक्षरों की रेखायें धुँधली हो रही थी।

आज श्रीमन्महाप्रभु चैतन्यदेव का मन विशेष उद्विग्न हो रहा, उन्हें सहसा व्रज-वृन्दावन लीलाओं का अनुस्मरण हो आता है। वे गदाधर का हाथ पकड़ कर बार-बार ब्रजलीला वर्णन का उनसे अनुरोध कर रहे हैं। पण्डित गदाधर ने रासलीलारम्भ में श्रीकृष्ण के अन्तर्द्धान के पश्चात्—

'हा नाथ ! रमण ! प्रेष्ठ ! क्वासि क्वासि महाभुज!।
दास्यास्ते कृपाणाया: मे सखे ! दर्शय सन्निधिम् ॥
श्रीमद्भागवत १०।३०।४०

रसराज महाभाव स्वरूपिणी श्रीराधिका की वियोग दशा का मार्मिक बर्णन एवं एक एक छन्द की जो अनेकार्थ शब्द योजना प्रस्तुत की उससे श्रोताओं का समूह चमत्कृत हो उठा। वृन्दावन की स्मृति ने प्रभु को विचलित कर दिया। बहुत दिनों से बृन्दावन का कोई समाचार नहीं आया न जाने मेरे कन्था, करङ्गधारी कङ्गाल वैष्णवों की व्रज में क्या दशा होगी ? यह चिन्ता प्रभु को उद्वेलित कर रही है। इतने में ही एक गौड़ीय वैष्णव वृन्दावन से श्रीरूप सनातन का पत्र लेकर श्रीप्रभु के चरणोपान्त में उपस्थित हुआ एवं साष्टाङ्ग प्रणति कर प्रभु की प्रिय वस्तुओं के साथ पत्र श्रीप्रभु के कर कमलों में समर्पित किया।

प्रभु ने वृन्दावन से आई हुई पोटली को अत्यन्त श्रद्धा से मस्तक पर रखा और स्वयं उसे खोल कर रासस्थली के बालुका कणों को मुख में डाला, टेंटी और पीलू के फल बड़े चाव से खाये, गुञ्जा की श्वेत लाल मालायें गले में धारण की और मोर के पंखों को देख श्रीकृष्ण भावना से विभोरित हो उन्हें अपने मस्तक में बाँधा। व्रजभावविभावित गौराङ्ग ने पोटली की वस्तुयें भक्तों में वितरण के लिये गोविन्द को दी।

भक्तों ने भी श्रीवृन्दावन के प्रसाद रूप में रासस्थली की बालुका को अत्यन्त श्रद्धा के साथ मुख में डाला, टेंटी और पीलू के फलों को बड़े आस्वाद से खाया, जो जानते थे उन्होंने पीलू निगल कर खालिये जो नहीं जानते थे

वे चबाकर खाने लगे उनके मुखों में छाले पड़ गये लार बहने लगी। प्रभु ने इस दृश्य को बड़ी कौतुक भावना से देखा। वृन्दावन के पीलू फल की यही तो लीला है। इसीसे आज भी व्रज में कहावत के रूप में 'तुम्हारे तो सब पीलू ही हैं' कहते हैं।

प्रभु ने वृन्दावन से आया हुआ पत्र पढ़ने के लिये गदाधर को दिया। गदाधर ने उसे शान्तभाव से पढ़ा उसमें—

गौड़ीय वैष्णवों की कुशलता, भजन की स्थति, व्रज के विलुप्त तीर्थों का उद्धार एवं दक्षिण देश से गोपालभट्ट के वृन्दावन आगमन की सूचना थी। प्रभु रूप सनातन के पत्र को पढ़वा कर परम प्रसन्न हुये। गोपाल वृन्दावन आ गया यह अच्छा ही हुआ। यह कहने लगे।

गोपालभट्ट के प्रति प्रभु की उत्सुकता एवं प्रसन्नता जान कर वैष्णवों की इच्छा गोपालभट्ट के विषय में जानने की हुई। उन्होंने इस इच्छा की पूर्ति के लिये श्रीप्रभु के चरणों में निवेदन किया। दयामय प्रभु भक्तों की आन्तरिक अभिलाषा जान गोपालभट्ट की शतमुख से प्रशंसा कर कहने लगे—

जब मैं नीलाचल से दक्षिण प्रान्तस्थ पुण्य सलिला कावेरी नदी के सुरम्य कूलस्थित श्रीरङ्ग क्षेत्र में भगवान् श्रीरङ्गनाथ के दर्शन को गया तब मन्दिर के प्रधान अर्चक वेङ्कटभट्ट ने मेरा मन प्राण से स्वागत किया और मुझे अपने आवास स्थान पर लिवा ले गये।[१] वहाँ मुझे एक परम तेजोदीप्त वेङ्कटभट्ट का एकमात्र पुत्र गोपालभट्ट मिला जो सश्रद्ध नमन करता हुआ मेरे समीप आकर बैठ गया। मैंने उस बालक की इच्छानुसार उसके मस्तक पर अपना पदविन्यास करते हुये कहा—

गोपाल! हरि, हरि कहो, मेरा इतना कहना था कि वह बालक कृष्ण, कृष्ण कहकर नाचने लगा, उसके सम्पूर्ण शरीर में सात्त्विक भाव का उदय होने लगा, उसकी सम्पूर्ण चपलता नष्ट हो गई। मैं उसकी प्रेमवैचित्री दशा

१- गोपालनामा वालोऽस्य प्रभोः पार्श्वे स्थितस्तदा।
तं दृष्ट्वा तस्य शिरसि पादपद्मं दयार्द्रधीः॥
दत्त्वा वद हरिञ्चेति सोऽपि हर्षसमन्वितः।
बाल्यक्रीडां परित्यज्य कृष्णं गायन् ननर्त्त च॥

—श्रीमुरारीगुप्ता कड़चा

देख विमुग्ध हो उठा। मैंने उत्सुकता से बालक की भावदशा के विषय में वेङ्कटभट्ट से पूँछा—

उन्होंने कहा जब हम सपरिवार [१] श्रीजगन्नाथ दर्शन के लिये पुरीधाम गये तब साथ में यह पाँच वर्ष का बालक गोपाल भी था। इसने वहाँ हमारे साथ ही श्रीजगन्नाथ के दर्शन किये और उसी समय से इसकी भावदशा में परिवर्त्तन आगया। यह बार-बार दर्शन के लिये मचल उठता, मन्दिर से हटता ही नहीं था; जगन्नाथ ! जगन्नाथ ! कह कर सदा रोता ही रहता। पुरी से आकर तो इसकी दशा ही बदल गई। यहाँ यह एकान्त में बैठकर जगन्नाथ ! कह कर रोता, नाचता और गाता रहता है। इसकी प्रखर बुद्धि ने [२] इतनी अल्प अवस्था में ही संस्कृत साहित्य, व्याकरण, न्याय विषयों में प्रागाढता प्राप्त करली। इसकी ईश्वरीय प्रदत्तप्रतिभा से मुझे स्वयं ही आश्चर्य हो रहा है।

उस समय चातुर्मास्य आसन्न था, वेङ्कटभट्ट के आत्यन्तिक अनुरोध से मैं चारमास उनके आवास स्थान पर रहा। मेरी देख-रेख का समस्त भार इन दिनों गोपालभट्ट पर था। वह सदा छाया की भाँति मेरे साथ रहता, अनेक शास्त्रगत प्रश्नों का मुझ से समाधान कराता, दर्शन की गहनतम गुत्थियों को वह चुटकी में सुलझा देता। उसके इस प्रतिभामय ज्ञान पर मुझे सन्तोष था। अन्त में चातुर्मास्य समाप्ति के दिन आ पहुंचे। गोपालभट्ट उस विदा कल्पना से विचलित हो चला। बार-बार मेरे साथ जाने का अनुरोध करने लगा। गोपालभट्ट की इस वेगवती भावना देख वेङ्कटभट्ट परिवार चिन्तित हो उठा। मैंने विशेषरूप से गोपालभट्ट को समझाया और कहा—तुम अपने माता पिता की अनन्य निष्ठा से सेवा करते रहना और उनके निधन के पश्चात् ही सीधे वृन्दावन जाना और वहाँ व्रज के विलुप्त तीर्थों का समुद्धार एवं वैष्णवशास्त्रीय ग्रन्थों की रचना करना।

इसके साथ ही वेङ्कटभट्ट से गोपालभट्ट को वैवाहिक-बन्धन में बाँधने का निषेध किया। गोपालभट्ट की मेरे प्रति अनन्यनिष्ठा देख वेङ्कटभट्ट के अनुरोध पर मैंने गोपालभट्ट को अष्टादशाक्षरगोपालमन्त्र की दीक्षा दी। अन्त में मैं भट्ट परिवार से विदा ले अवशिष्ट दक्षिण प्रान्तस्थ तीर्थों का परिभ्रमण कर पुनः नीलाचल आगया।

१- बाल्याबस्था है ते गोपालेर चेष्टा कथ।

२- जैछे नीलाचले जगन्नाथेर दर्शने।
जैछे स्फूर्त्ति व्याकरण आदि अध्ययने॥ —भक्तिरत्नाकर १ तरङ्ग

श्रीगोपालभट्ट के लिए प्रसादी वस्त्र प्रेषण—

विजयादशमी के बाद ही कुछ वैष्णवजन नीलाचल से श्रीवृन्दावन जा रहे हैं यह जान कर महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव ने पण्डित गदाधर से एक पत्र रूप सनातन के लिये जिसमें—

गोपालभट्ट वृन्दावन आ गया यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उसे अपने ही निकट अनुजभाव से रखना। व्रज के विलुप्त तीर्थों का उद्धार, व्रज-भावनिष्ठ ग्रन्थों की रचना में इसके द्वारा तुम्हें विशेष सहयोग प्राप्त होगा। मैं भी शीघ्र वृन्दावन आ रहा हूँ। मेरे कन्था करुआधारी निर्धन वैष्णवों का सदा ध्यान रखना। समय-समय पर व्रज वृन्दावन का सम्वाद देते रहना। मैं पत्रवाहक वैष्णवमण्डली के साथ गोपालभट्ट को देने के लिए अपना डोर, कोपीन, वहिर्वास तथा श्री सम्पत्ति सौभाग्यस्वरूप काष्ठासन (पट्टा) भेज रहा हूँ लिखवाया। वृन्दावनगामी[1] विश्वस्त वैष्णवमण्डली के हाथों पत्रसहित अपनी प्रसादी वस्तुएँ दे प्रभु निश्चिन्त हुए।

महाप्रभु द्वारा गोपालभट्ट के लिए अपनी प्रसादी वस्तुयें वृन्दावन भेजी गई यह जानकर नीलाचलवासी वैष्णवों का मन आशङ्का से भर उठा। गुरु[1] द्वारा अपने शिष्य को तभी उत्तरदायित्व-पूर्ण भार दिया जाता है जब वह यह समझ लेता है कि उसका समस्त जागतिक कार्य शेष हो गया है। अभी उसी दिन श्रीअद्वैताचार्यप्रभु ने अपूर्वभाव-भङ्गिमायुक्त एक पहेली—

वाउल कहिह लोक हईल वाउल (पागल)।
वाउल के कहिह हाटे ना विकाय चाउल ॥
वाउल के कहिह काये नाहिक आउल (आतुर)।
वाउल के कहिह इहा कहियाछे वाउल ॥

भी भेजी थी जिसे पढ़कर उसीसमय से प्रभु की भावदशा में परिवर्त्तन आगया है। वैष्णवों ने इस घटनाक्रमों को बड़ी आशङ्का के साथ देखा।

वृन्दावनगामी वैष्णवमण्डली झारिखण्ड तथा भागीरथी नदी मार्ग से पटना, काशी, प्रयाग एवं यमुना के कछारों में होती हुई वृन्दावन पहुँची। वैंष्णवमण्डली ने महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव द्वारा दी हुई वस्तुयें पत्र के साथ रूप सनातन को सौंपी।

१- ऐंछे परिधेय वस्त्र आदिक दिया।
श्री डोर कोपीन वहिर्वास पत्री दिला ॥ भक्तिरत्नाकर १ तरङ्ग

२- प्रभुवरगतिसौभाग्येन विख्यातपट्टः,
स्फुरतु हृदि मे गोस्वामिगोपालभट्टः। श्रीकृष्णदास कविराज

प्रभु प्रेषित पत्र पढ़कर रूप सनातन भाव विभोरित हो गये। उनकी आँखों से अजस्र अश्रुधारायें बहने लगीं। अन्त में शान्त हो वे प्रभु प्रदत्त प्रसादी वस्तुओं को लेकर वैष्णवमण्डली के साथ गोपालभट्ट की कुटी की ओर प्रस्थानित हुये।

इधर गोपालभट्ट रासस्थली की वटवृक्ष-वेदिका पर श्रीराधाकृष्ण की दिव्य लीलाओं का अनुस्मरण कर रहे थे। दूर से आती हुई वैष्णवों की सङ्कीर्त्तनध्वनि दिग्दिगन्तों को शब्दायमान कर आगे बढ़ी चली आ रही थी। सामने वैष्णवमण्डली के साथ रूप सनातन को देख गोपालभट्ट ससम्भ्रम उठे और साष्टाङ्ग प्रणाम कर संकुचित भाव से खड़े हो गये। श्रीरूप गोस्वामी ने गोपालभट्ट को हृदय से लगा लिया और वे रासस्थली की स्वच्छ बालुका में बैठ गये। कीर्त्तन का विराम हुआ। गोपालभट्ट को अपने मध्य बिठाकर श्रीसनातनगोस्वामी कहने लगे—

गोपालभट्ट! संसार में आज तुम्हारे समान अन्य कोई भाग्यशाली नहीं है। यह पत्र पढ़ो। दयामय प्रभु ने नीलाचल से तुम्हारे लिये अपना प्रसादी परिधान डोर, कोपीन, बहिर्वास तथा आसन के रूप में यह पट्टा भेजा है, प्रभु द्वारा प्रेषित वस्तुओं को सादर ग्रहण कर भक्तजनों को नयन-सुख प्रदान करो।

गोपालभट्ट ने प्रभु प्रेषित पत्र को पढ़ा। प्रभु की अपने ऊपर अपार कृपा पारावार राशि का अनुस्मरण कर वे भावविगलित हो रोने लगे। उनकी अजस्र अश्रुविन्दुओं से रासस्थली की रज: कणिका आर्द्र होगई, वे रोते हुये हा गौरसुन्दर! कहकर बार-बार पुकारने लगे। श्रीसनातन-गोस्वामी ने उन्हें धैर्य बँधा कर कहा—

गोपालभट्ट! इतने भाव विक्लवित क्यों हो रहे हो? प्रभु की तुम पर अपार कृपा प्रवर्षित हुई है इसे ग्रहण करो विलम्ब की अब आवश्यकता नहीं है। यह सुन गोपालभट्ट कहने लगे। प्रभो! आप ही बतलाइये प्रभु की प्रसादी वस्तुयें जो सर्वथा अभिनन्दनीय है को मैं किस प्रकार पहिरूँ? उनके वन्दनीय आसन पर मैं किस प्रकार बैठूँ? मेरे लिये क्या यह उचित है? मुझे इस महदपराध के लिए कितना नारकीय दण्ड भुगतना होगा। कृपा कर आप मुझे इस घोर अपराध से बचावें। गोपालभट्ट की आर्त्त वाणी सुन कर श्रीसनातनगोस्वामी कहने लगे—

गोपालभट्ट! 'आज्ञा गुरूणामविचारणीया' गुरुजनों की आज्ञा सदा अविचारणीय होती है, उसमें ननु नच करना ही महदपराध होता है। जगत्

का शाश्वत नियम है कि गुरु अपनी अनुपम निधि अपने आप्त शिष्य को देते हैं, प्रभु ने तुम्हें सर्वथा योग्य जानकर ही अपनी वस्तुयें तुम्हारे लिये भेजी हैं। अब सङ्कोच की आवश्यकता नहीं है। प्रभु की आज्ञा, भक्तजनों का अनुरोध एवं हमारे आग्रह को मानकर इस पीठासन पर बैठ प्रभु के प्रसादी वस्त्रों को धारण करो।

श्रीरूपगोस्वामी ने वैष्णवजनों को 'गौरचन्द्रिका' गान की आज्ञा दी। खोल, करताल, मृदङ्ग, मञ्जीर के मृदु, मन्द, मधुर स्वर बोल उठे, उसके प्रत्येक थाप पर वैष्णवजन भावविभावित हो उद्दाम कीर्त्तन करने लगे। दिग्-दिगन्तव्यापिनी ध्वनि से रासस्थली का कण-कण मुखरित होने लगा। गोपालभट्ट श्रीसनातनगोस्वामीपाद की वेदवाक्यवत् वाणी को शिरोधार्य कर वैष्णवों की तुमुल-नाम-सङ्कीर्त्तन ध्वनि के मध्य श्रीचैतन्यचन्द्र के चारु चरणों का अनुचिन्तन कर प्रभु के परिधान वस्त्रों को मस्तक पर चढ़ा कर प्रभु के नित्य विराजित काष्ठासन (पट्टा) पर आसीन हुये[१]। वैष्णवों के पारस्परिक परम्परागत प्रेमालिङ्गन प्रणाम के पश्चात् सङ्कीर्त्तन का विराम हुआ। वैष्णववृन्द प्रतिपद आनन्दाम्बुधि की अमित शत-शत उत्ताल तरङ्गों की भांति रासस्थली की रम्य बालुका में धूलि-धूसरित हो लोटने लगे। नील श्वेताभ रजः कणों ने वैष्णवजनों की शारीरिक शोभा को और भी बढ़ा दिया।

---

१. स्थानीय श्रीराधारमणमन्दिर में श्रीचैतन्यमहाप्रभु प्रदत्त श्यामवर्णीय सुचिक्कण काष्ठपीठासन (पट्टा) श्रीगोपालभट्टगोस्वामी के रूप में श्रीराधारमणजी के दक्षिण पार्श्वस्थ रजत सिंहासन पर विराजित है। प्रत्यह स्नान एवं श्रीजी के प्रसादी गन्ध, चन्दन, माला, तुलसी, धूप, दीप एवं प्रसाद निवेदन द्वारा पूजित और आराधित हो रहा है—

साथही प्रभु के परिधान वस्त्र डोर, कोपीन, वहिर्वास का भी दैनिक आराधन होता है और व्रज चोरासीकोसस्थ वैष्णवजनों के अनुरोधपत्रानुसार सम्प्रति वर्ष में केवल चार बार—

श्रीराधारमणजयन्ती (वैशाख शुक्ला पूर्णिमा)
श्रीगोपालभट्टगोस्वामी की तिरोभावतिथि
(श्रावण कृष्णा पञ्चमी तथा षष्ठी)
श्रीकृष्णजन्माष्टमी (भाद्र कृष्णा अन्टमी)

को श्रीमन्महाप्रभु चैतन्यदेव के परिधान वस्त्रों के दर्शन होते हैं।

पत्र परिशिष्ट में संलग्न

साक्षात् महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव की इस अनुपम अनुकम्पा अभिवर्षण से व्रज-वृन्दावन धन्य हो उठा। यह था माध्वगौडेश्वरपीठ स्थापना का प्रारम्भिक पदक्षेप !

श्रीचैतन्यदेव की महाभाव दशा—

गोपालभट्ट के लिये अपना परिधानवसन तथा आसन भेजने के पश्चात् ही श्रीमन्महाप्रभु चैतन्यदेव की भाव दशा में विशेष परिवर्त्तन आगया था। प्रतिदिन उनकी, उदासीनता बढ़ती ही जा रही थी। वे नित्य श्रीजगन्नाथदेव के दर्शनों को जाते अवश्य थे किन्तु उनकी उद्दाम कीर्त्तन,नर्त्तन लीलायें समाप्त सी हो गई थी। वे कभी गम्भीरा की उस छोटी सी परिधि में बैठ अनुक्षण श्रीराधाकृष्ण की निकुञ्ज लीलाओं का अनुचिन्तन करते या कभी भाव निमग्न हो उसके प्राचीरप्रस्तरों पर अपना मुखकमल रगड़ क्षत-विक्षत हो जाते, कभी वे सागर की विशाल नीलजल राशि को यमुना समझ उसमें कूदते, डुबकियाँ लगाते और उछलते, कभी व्रज की धेनुओं के ज्ञान से तैलङ्ग-देशीय गौओं के समूह में जाकर मूर्च्छित हो जाते थे। प्रतिपल उनकी यह भावोन्माददशा बढ़ती ही जा रही थी।

१५९० वैक्रमीय वर्ष की आषाढ़ कृष्णा पञ्चमी रविवार का दिन एक-भाव विकलता का सन्देश लेकर आया है। प्रभु अपने नित्य सहचर गोविन्द, स्वरूप, दामोदर के साथ श्रीजगन्नाथदेव के दर्शनों के लिये जाते हुए गरुड-स्तम्भ के समीप प्रतिदिन की भाँति खड़े हो भावविक्लवितदशा में श्रीविग्रह को अपलक दृष्टि से देख रहे हैं। उनकी भावोन्माद दशा चरम सीमा पर पहुँचती जारही है। वे अपनी सम्पूर्ण देहेन्द्रिय मनोवृत्तियों को श्रीकृष्णपाद-पद्मों में लगा अपने नयनयुगलों से अजस्र अश्रु विन्दु धारायें बहाते हुये वाणी के गदगद् स्वर से हा कृष्ण ! कृष्ण ! कह करुणक्रन्दन कर रहे हैं। उनकी रोमाञ्चित स्वर्णिम दुर्बल देह अनुपम शोभा की वृद्धि कर रही है। वे जगती के नाथ अपने सामने विराजित जगन्नाथ से कह रहे हैं—

[१] नाथ ! मुझे धन, जन की कामना नहीं है मैं तो केवल आपकी अहैतुकी भक्ति चाहता हूँ।

१- श्रीभगवान् चैतन्यदेव कृत शिक्षाष्टक श्लोक ४,५,६,७,८।

नन्दनन्दन ! मैं विषम भवसागर में निरन्तर डूबता जा रहा हूँ कृपा-कर सहारा दे बचालो।

प्रभो ! बिना आपके दर्शनों के मेरा एक-एक क्षण कोटि-कोटि युगों के समान बीत रहा है। आँखों से आँसुओं की धारा बहती जा रही है। मेरे लिये बिना आपके यह सारा संसार सूना सा दीख रहा है।

प्राणनाथ ! चाहे आप मुझे हृदय से लगायें या पैरों से ठुकरायें या अदर्शनजन्य मर्माहत वेदनायें दें किन्तु मेरे तो आप ही सब कुछ हैं।

[१] जगन्नाथ ! अब और नहीं सहा जाता, तनिक आँखों के सामने आ दर्शन दो। साथ के भक्तों ने मधुर स्वर लहरी से—

'जगमोहन पर मुन्डा (बलिहारी) जाओं'।

उडिया पद गायनारम्भ कर दिया। पद गान सुन कर महाप्रभु की भावोन्माद दशा विशेष वलवती हो जाती है,वे गदगद् स्वर से जगन्नाथ! जगन्नाथ! ज—ज—ग—ग कह कर अस्थिर हो रहे हैं। इसी भावदशा में वे जगन्नाथ-विग्रह को पकड़ने के लिये आगे बढ़ रहे हैं, उनके सहचर उन्हें पकड़ने के लिये दौड़ रहे हैं। उनकी यात्रा का विराम नहीं। वे गरुड-स्तम्भ की सीमा को लाँघ जगमोहन में आपहुंचे। न जाने प्रभु की आज क्या लीला है? किसी का साहस नहीं हो रहा है जो उन्हें आगे बढ़ने से रोके। सहसा प्रभु कुछ रुके। उनकी भावोन्माददशा ने तनिकसा मोड़ लिया। भक्तजन कुछ आश्वस्त हुये। प्रभु ने एकबार अपलक दृष्टि से जगन्नाथ की ओर देखा और फिर दौड़ कर आगे बढे। किसकी शक्ति है जो उन्हें रोके। आज न जाने कहाँ से प्रभु में मत्त केशरीकिशोर की भाँति इतना बल आगया ? लाख चेष्टा करने पर भी वे रुक नहीं पा रहे हैं। सहसा रत्नवेदी को पार कर देखते-देखते यह स्वर्णिम देदीप्यमान प्रकाशपुञ्ज गर्भ मन्दिर में प्रविष्ट होगया और दोनों हाथोंसे जगन्नाथ विग्रह को हृदय से लगा उसमें विलीन हो गया। जिस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिये प्रभु इस धराधाम पर अवतरित हुये थे उसे पूर्ण कर जागतिकजनों के हृदयों में अविरत चैतन्यचन्द्रछटा-कौमुदी छिटकाते हुये वे तिरोहित हो गये। भक्तों ने इस अलौकिक दृश्य को आश्चर्यजनक भाव से देखा। वे महाप्रभु के अदर्शनों से विचलित हो भूमि पर मूर्च्छित हो गिर पड़े। उनके आर्त्तनाद से जगन्नाथमन्दिर का कण-कण व्याकुल हो उठा। हा पतितपावन ! महाप्रभो !

---

१. जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे। श्रीचैतन्यदेववाणी

आपने यह क्या लीला की ? हमें भी क्यों नहीं साथ लेते गये ? अब हम यहाँ किसके सहारे जियेंगे। हमारा इस संसार में कौन रक्षक है ? उनके करुण-क्रन्दन ने पत्थर को भी पिघला दिया, कठोर वज्र के भी दो टुकड़े कर दिये। जिसने सुना वह रोता हुआ मन्दिर की ओर भागा। भक्तों की वियोगदशा प्रभु से सही न गई वे भाव-विह्वल हो भक्तों के हृदयाकाश में प्रकाशरूप से प्रकट हुये और कहने लगे—

[१] मैं तुम से भला अलग कब हूँ ? [२] मेरा निवास सदा उन भक्तों के हृदय में रहता है जो मेरा नाम रटते रहते हैं। उठो ! अधीर मत बनो। तुम सब मिलकर कलियुग का एकमात्र साधन भगवन्नामकीर्त्तन के प्रचार प्रसार में लग जाओ। मुझे विश्वास है कि एकदिन एसा भी आवेगा जब विश्व के कोने-कोने में मेरे नाम का प्रचार होगा यह कहकर प्रभु पुनः तिरोहित हो गये।

श्रीमन्महाप्रभु चैतन्यदेव की भावदशा का वृन्दावन में प्रकाश—

प्रचण्ड झंझाबात के समान श्रीचैतन्यदेव का श्रीजगन्नाथ विग्रह में विलीन होने का दारुण सम्वाद देश के कोने-कोने में फैलता हुआ वृन्दावन आया। उससमय रासस्थली की सुरम्य सैकत-स्थली पर श्रीरूप, सनातन, भूगर्भ, लोकनाथ, गोपालभट्टगोस्वामीगण व्रज वृन्दावन के वैष्णव-वृन्दों के साथ श्रीगौर गुण गान कर पुलकायित हो रहे थे।

इधर नीलाचल से श्रीमन्महाप्रभु का कोई सम्वाद न आने से वे सर्वाधिक चिन्तित थे, कुछ दिनों पूर्व पण्डित जगदानन्द से महाप्रभु की निरन्तर बढती हुई महाभाव दशा को वे सुन चुके थे। उनका मन आशङ्काओं के सङ्कल्प विकल्प में चञ्चल हो रहा था। उसी समय दूर से उठते हुये हा गौर ! हा महाप्रभो ! इस आर्त्तनाद को सबों ने सुना।

१- अद्यावधि सेई लीला करे गोराराय।
केहू केहू भाग्यवान् देखिवार हू पाय ॥

२- मद्भक्ताः यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद !।

३- पृथ्वी ते आछे जत नगरादि ग्राम।
सर्वत्र हईवे मम नामेर प्रचार ॥

जो जितना अधिक प्रियजन होता है उसकी अनिष्ट आशङ्का उतनी ही अधिक होती है[१]। वैष्णवों का मन दुश्चिन्ताओं से भर उठा। विचक्षण बुद्धिमान्, बङ्गाल के विगत मन्त्री श्रीसनातन उन आर्त्तस्वरों से श्रीमन्महाप्रभु का लीला-सम्वरण समझ गये किन्तु वे कह पाने की स्थिति में न थे। उनके हृदय में प्रतिपल व्यग्रता बढ़ती जारही थी। करुणक्रन्दन का स्वर बढ़ता हुआ सामने आ चला था। एक विक्षिप्तसा वैष्णव हा गौर! हा गौर! कहकर रासस्थली की बालुका में लोट रहा है। उसके आर्त्त स्वर का विराम नहीं। उसने आगे बढ़कर श्रीसनातनगोस्वामी जो व्रजमें बड़े गोस्वामी के नाम से प्रसिद्ध हैं के चरणों को दोनों हाथों से पकड़ लिये। [२]स्वजनों को देख दुःखों के द्वार अपने आप खुल जाते हैं। वह हा गौर! कहकर उच्चस्वर से रोने लगता है। श्रीरूपगोस्वामी ने उसे अपने समीप बुलाकर सांत्वना दी और अकारण रोने का कारण पूँछा। वह कुछ आश्वस्त हुआ, उसकी वियोग ज्वाला कुछ प्रशमित हुई। वह हा हुताश! हो कहने लगा—

जिस स्वर्णिम प्रकाश-पुञ्ज गौरचन्द्र ने विश्व के मायावद्ध जीवों को बन्धन से छुड़ा श्रीकृष्णपद-प्राप्ति का सर्वोच्च साधन 'श्रीहरिनाम सङ्कीर्त्तन' बतलाया था वे महाप्रभु हम सबों को अनाथ कर श्रीजगन्नाथ विग्रह में विलीन हो गये। इतना सुनना था कि समस्त उपस्थितजन उच्चस्वर से हा गौरसुन्दर! महाप्रभो! कह कर विलाप करने लगे। उन्हें अपने देह की संज्ञा न रही। वे मूर्च्छित हो गिर पड़े. चारों ओर दुःख की दारुण निशा छा गई अन्त में उन्हें तनिक संज्ञा हुई और वे रोते हुये कहने लगे—

[३]अब कौन इस संसार में अपने अनुगतजनों को स्वकीय विशुद्ध भक्ति का समुज्वल स्वरूप बतलावेगा? और कौन ही व्रजाङ्गनाओं की प्रेम गाथाओं के साथ श्रीराधिका के महत्व का वर्णन करेगा?

क्या हम [४]फिर कभी उस गैरिक पटधारी कृष्ण-कृष्ण कहने वाले श्रीचैतन्यदेव का इन आंखों से दर्शन कर सकेंगे? क्या हम फिर प्रतिदिन

१- अनिष्टशङ्कीनि बन्धुहृदयानि भवन्ति। अभिज्ञानशाकुन्तलम्

२- स्वजनस्य च दुःखमग्रतः विवृत्तद्वारमिवोपजायते। कालिदास

३- श्रीरूपगोस्वामीपाद। श्रीचैतन्याष्टक

४- गौराङ्ग ना हइत केमन हइत केमन धरिताम देहरे।
राधार महिमा प्रेमरससीमा जगते जानात केहरे॥

पुलिन, पुष्पवाटी जाते, श्रीजगन्नाथदेव के रथ के सामने नाचते, और पृथ्वी को अपने अश्रुजल से अभिसिञ्चित करते उस भक्तिरसबिस्तारी, दीनोद्धारी, नदिया-विहारी गौरसुन्दर को इन आँखों से देख सकेंगे ?

सबों के साथ गोपालभट्ट ने भी प्रभु का अन्तर्द्धान समाचार सुना, वे इस दारुणतम आघात को सह न सके और हा गौर ! कह कर मूच्छित हो गिर पड़े । कुछ समय पश्चात् इन्हें स्वतः संज्ञा हुई वे अवरुद्ध कण्ठ से व्यथित हो कहने लगे—

प्रभो ! यह आपने क्या लीला की ? क्या आपने इसीलिये अपना डोर कोपीन, वहिर्वास और पट्टा भेजा था ?

नाथ ! किस अपराध के कारण मुझे नीलाचल न बुलाकर वृन्दावन जाने की आज्ञा दी । क्या मैं आपके दर्शनों से वञ्चित नहीं हुआ ?

हे अगत्यैकगते! आपने सब कुछ त्यागकर अपने शरण में आने को कहा था मैं तो सब त्याग कर आपके चरणों में आया हूँ,अब आपही मुझे छोड़कर चल दिये । अब मैं आपके चरणों को छोड़ कहाँ जाऊँ ? क्या करूँ ? इस संसार में आपको छोड़कर मेरा कौन है ? क्या इसी कारण दुःखों को दिखाने के लिये मुझे अपने स्नेहपाश में बाँध आपने कावेरी नदी के किनारे अपना उद्दाम सङ्कीर्त्तन दिखलाया था? क्यों आपने नित्य चरणोदक एवं उच्छिष्ट प्रसाद से मेरा मन बहलाया था ? अब कौन मुझे वैष्णव सिद्धान्तों का उपदेश देगा? इस संसार में मेरा जीना व्यर्थ है । यह कालिन्दी की धारा ही आज मेरी सहायक है । वैष्णवजनों एवं गोपालभट्ट की इस दारुण वियोग दशा ने तरु, लता, वल्लरी, पशु, पक्षी, चर, अचर सबों को भाव विभोरित कर दिया ।

प्रभु से स्वजनों की यह दयनीय दशा न देखी गई, वे प्रत्येक के हृदयाकाश में सूर्य विम्व की भाँति उदित हुये और कहने लगे—

तुम इतने अधीर क्यों होते हो ? मैं तुम सबों को छोड़ कर कहाँ गया हूँ ? सदा तुम्हारे पास हूँ, जव चाहोगे तब देख सकोगे । उठो ! सांसारिक जीव जनजाति के हृदयान्धकार दूर करने के लिये जो'नामसङ्कीर्त्तन' ज्योतिप्रकाश मैंने तुम्हारे सबल हाथों में सोंपा है उसे बुझने न देना । यही मेरा आदेश और निर्देश है ।

वे पुनः गोपालभट्ट की ओर मुड़े और अपने विशाल अङ्क में उन्हें बैठा कर कहने लगे—

गोपाल ! इतने अधीर बनने से क्या काम चलेगा ? उठो, यह लीला तो मैंने तुम्हारे समीप आने के लिये की है। अब मैं सदा तुम्हारे समीप ही रहूँगा।

यह जो परिधान वस्त्र तथा पट्टा मैंने तुम्हारे लिये भेजा है उसके द्वारा तुम्हारे हृदय में एक अपूर्व शक्ति का सञ्चार होगा। इसीके आश्रय से तुम दार्शनिक एवं रसपरक ग्रंथों का निर्माण करोगे। साथ ही तुम एक एसी स्मृति का भी सङ्कलन करोगे जो विश्व में वैष्णव-स्मृति के रूप में सदा समादर प्राप्त करती रहेगी।[1] तुम सदा सनातन एवं रूप के सान्निद्ध में रहना और उनके निदेशवर्त्ती हो व्रज के विलुप्त तीर्थों का समुद्धार तथा वैष्णव ग्रन्थों का प्रणयन करना। तुम नयपाल प्रदेश जाओ और वहाँ गण्डकी नदी के उद्भव स्थान से प्राप्त शालग्राम की विधिवत् आराधना करो उसीमें शीघ्र मेरे स्वरूप का तुम्हें दर्शन होगा।

इसके साथ ही मेरा तुम्हारी शिष्यानुशिष्य वंश परम्परा के लिये यह आन्तरिक आशीर्वाद है कि भविष्य में—

इस सर्वोत्तम वंश परम्परा की यह विशेषता होगी कि इसमें अनेक अप्रतिम विद्वान्, विविध भाषा और कलाविद, भागवतजन उत्पन्न होंगे जिनकी सार-समन्वय सिद्धान्तावलियों को संसार सदा मान्यता देता रहेगा।

'तोमार शिष्येर द्वारे जगत् व्यापिवे।'

—भक्तिरत्नाकर; प्रथम तरङ्ग

इसी श्रीप्रभु के आदेश को श्रीकृष्णदास कविराज ने 'चैतन्यचरितामृत' के शाखा निर्णय में—

'गोपालभट्टेर एक शाखा सर्वोत्तम।
[2]रूप सनातन सङ्गे जार प्रेम आलापन॥'

आदिखण्ड १०।१०५

लिख कर स्पष्ट किया है।

---

1. HARIBHAKTI VILASA OR BHAGVAT BHAKTIBILASA —IT THE LASTNIBANDHA GRANTHA COMPILED BY BHATGOPAL.

—History of Dharmashastra Vol. 1 P. Kane

२. सनातनप्रेमपरिप्लुतान्तरं श्रीरूपसख्येन विलक्षिताखिलम्।
नमामि राधारमणैकजीवनं गोपालभट्टं भजतामभीष्टदम्॥

भगवान् श्रीगौरचन्द्र की अपने अन्यतम शिष्य श्रीगोपालभट्टगोस्वामी पर जो अनुपम अनुकम्पा प्रवर्षित हुई है उसीको इस शिष्यानुशिष्य परम्पराश्रित श्रीयदुनन्दन ठाकुर जो सोलहवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में उपस्थित थे द्वारा श्रीकृष्णदास कविराज विरचित 'गोविन्दलीलामृत' की अपनी[1] 'गोविन्दलीलामृतरस' परक पद्यानुवाद टीका में इसप्रकार अभिव्यक्त किया गया है—

वन्दों गुरुपदतल, चिन्तामणिमय-स्थल, सर्वगुणखानि दयानिधि
आचार्य प्रभुर सुता नाम श्रीहेमलता ताहार स्मरणे सर्व सिद्धि ॥
[2]अज्ञानेर अन्धकारे, पतित देखिया मोरे, ज्ञानाञ्जन दिला दया करि।
जाहार करुणा हइते नेत्र हइल प्रकाशिते दूरे गेल अन्धकारावलि ॥
वन्दों श्रीआचार्य प्रभु, आमार प्रभुर प्रभु तार पदे कोटि परनाम।
श्रीगोपालभट्ट नाम, राधाकृष्ण प्रेमधाम, परात्पर गुरु कृपा धाम ॥
वन्दों प्रभु गौरचन्द्र, सकल आनन्दकन्द, परमेष्ठि गुरु तिह हय।
जिह कृष्ण प्रेम वन्या,दिया कइल क्षिति धन्या, अनन्त प्रणति तार पाय॥

इसी शाखा निर्णय को भक्ति-रत्नाकर के रचनाकार श्रीनरहरिदास ने स्वगुरु वन्दनात्मक मङ्गलाचरण श्लोक में—

१- श्रीकृष्णपददास बाबाजी, वृन्दावन द्वारा १३३० बङ्गाब्द में प्रकाशित पृष्ठ ११।

२- अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

शिष्यानुशिष्य क्रम —

श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभु (परमेष्ठि गुरु)
|
श्रीगोपालभट्टगोस्वामी (परात्पर गुरु)
|
श्रीनिवासाचार्य (परम गुरु)
|
श्रीहेमलता (गुरु)

श्रीमन्महाप्रभु कृष्णचैतन्य
|
श्रीगोपालभट्टगोस्वामी
|
श्रीनिवासाचार्य

का स्पष्ट निर्देशन करते हुये यह—

'श्रीकृष्णचैतन्यचन्द्र-प्रेमकल्पद्रुमस्य हि।
श्रीनिवासप्रभोर्नित्यं शाखावर्गानहं भजे' ।।

लिखा है।

वैष्णवजन एवं गोस्वामिगण साक्षात् प्रभु के सान्त्वनास्वरूप का सन्दर्शन कर कुछ आश्वस्त हुये उनके हृदय की भीषण वियोग ज्वाला प्रशमित हुई, वे श्रीप्रभु की आज्ञा शिरोधार्य कर व्रज के विलुप्त तीर्थों के समुद्धार तथा वैष्णव-सिद्धान्त ग्रन्थों के निर्माण में लग गये।

श्रीगोपालभट्टगोस्वामी ने श्रीप्रभु के परिधान वस्त्र, काष्ठासन (पट्टा) को श्रीप्रभु का ही स्वरूप मान कर स्वकुटी के सर्वोन्नत स्थान पर उनकी संस्थापना की और विधिवत् इसकी आराधना और अर्चना में अपना समय अतिवाहित करने लगें।

'वन्दे श्रीभट्टगोपालं द्विजेन्द्रं वेङ्कटात्मजम्।
श्रीचैतन्यप्रभोः सेवानियुक्तश्च निजालये' ।।

भक्तिरत्नाकर १।१८

श्रीगोपालभट्टगोस्वामी की नयपाल-प्रदेश यात्रा
और
श्रीगोपीनाथदासजी की दीक्षा—

श्रीचैतन्यदेव के अन्तर्द्धान के पश्चात् गोपालभट्ट का मन प्राण उद्विग्न रहने लगा। उनके धैर्य का बाँध टूट चुका था। वे दिन रात एकान्त में बैठ हा गौर ! कह कर रोते रहते थे। उनकी वियोग दशा चरम सीमा पर थी। इनके चारों ओर वियोग की गहन अन्धकार निशा बढ़ती जारही थी, वे सर्व दिशाहारा की भाँति शून्य की ओर बढे जा रहे थे। गौर से और गोपाल

भट्ट की यह दारुण दशा न देखी गई, वे एकबार पुनः गोपालभट्ट के सामने स्वप्न में प्रकट हो अपना वरद हस्त गोपालभट्ट के मस्तक पर रख कहने लगे—

गोपालभट्ट ! इतने अधीर न बनो। मैं तुमसे भला दूर कब हूँ ? मैंने तो तुमसे उसी दिन कहा था कि मैं शीघ्र तुम्हारे समीप आरहा हूँ। उठो ! अब विलम्ब न कर गण्डकी नदी के उद्गम स्थान नयपाल प्रदेश जाओ एवं वहाँ से प्राप्त शालग्राम की विधिवत् अर्चना करो इसीके द्वारा ही तुम्हारे अभीष्ट की पूर्त्ति होगी। यह कह कर प्रभु अन्तर्हित होगये। वियोग की यह पर्यवसान वेला थी। वे उठे अपने चारों ओर चकितभाव से देखा पर अब वह स्वर्णिम प्रभा प्रकाश जा चुका था। उसके स्थान पर प्रातःकालीन अरुणिम किरणजाल आशापूर्त्ति के रूप में हृदय की आशाओं के कण-कणों को प्रभासित कर आगे बढ़ रहा था। शुभ कार्य में विलम्व नहीं, यह समझ गोपालभट्ट व्रज वसुन्धरा के वैष्णववृन्दों का अभिवन्दन कर अपनी लक्ष्यपूर्त्ति की दिशा में अग्रसरित हुये। यह राज्य विप्लव वेला थी। आये दिन की उथल पुथल ने शासन तन्त्र को विखेर दिया था परन्तु स्थिर-निश्चयव्रती गोपालभट्ट को अब जाने से कौन रोक सकता था। क्या नीचे की ओर जाती जलधारा को कोई रोक पाया है ?

उनके साथ सम्बल था प्रभु का आदेश वे केवल उसी के बल पर विविध विघ्न वाधाओं को पीछे ढकेलते हुये हिंसक पशु एवं दुर्दान्त दस्युयों द्वारा उत्पीड़ित पथ की ओर बढे जारहे थे। उन्हें प्रचण्ड वर्षा, कंपकपाती वायु और दारुण शीत की चिन्ता न थी, वे कन्था, करुआ, कोपीन-धारी चैतन्य के कङ्गाल वैष्णव के रूप में कलियुग का एकमात्र साधन हरिनाम धन दोनों हाथों से लुटाते हुये आगे की ओर बढ़ रहे थे।

उनके निर्झरित प्रेमाश्रुओं की अमित विन्दु धारा तुलसीमाला के मनकों एवं भावहीन जन-जन के मन को भिगो रही थी वे कभी गङ्गा कभी यमुना के किनारे 'करतल भिक्षा, तरुतलवासी' के रूप में सहारनपुर जनपद के सुप्रसिद्ध गौड ब्राह्मणों की आवास भूमि देववन्द्य पहुँचे। तत्कालीन वारोठ ग्रामवासी पण्डित विद्याधर गौड के पुत्र श्रीमाधवप्रसाद जो उस ग्राम के जागीरदार थे तथा जिन पर राजस्व अधिग्रहण का पूर्ण भार था वे प्रातः भ्रमण के लिये घर से बाहर आये। उन्होंने ग्राम की पूर्व दिशा की ओर विशाल वट वृक्ष की सान्द्र छाया में एक भजनरत साधक को देखा। वे शान्तभाव से उनके समीप बैठ गये। भजन साधन के पश्चात् गोपालभट्ट की

भावमुद्रा इधर की ओर मुड़ी। उन्होंने सामने साष्टाङ्ग प्रणाम करते हुये एक भावुक जन को देखा। गोपालभट्ट ने माधवप्रसाद को उठाकर अपने गले लगाया और 'श्रीकृष्णभक्तिरस्तु' का आशीर्वाद दिया।

माधवप्रसाद आग्रह पूर्वक गोपालभट्ट को अपने निवास-स्थान लिवा लाये और उन्हें अपनी पार्श्वस्थ आम्र-वाटिका में रख उनकी सेवा सुश्रुषा का समस्त भार अपने ज्येष्ठ पुत्र गोपीनाथ को सोंपकर निश्चिन्त हुये। छाया की भाँति गोपीनाथ, गोपालभट्ट के साथ रहने लगे। उन्हें अहर्निश उनकी सेवा का ध्यान रहता था। गोपीनाथ की निःस्वार्थ भावना से गोपाल-भट्ट परम प्रसन्न हुये।

माधवप्रसाद के विशेष आग्रह से गोपालभट्ट वहाँ कुछ दिनों और रुके एवं ग्रामवासियों को श्रीगौरकृष्णतत्त्व का उपदेश देते रहे। गोपालभट्ट के श्रीचरणों में गोपीनाथ की ऐकान्तिक भावनिष्ठा देख पारिवारिकजन विमुग्ध हो उठे और उन्होंने श्रीगोपालभट्ट से उन्हें अपने शरणापन्न लेने की प्रार्थना की।

पारिवारिकजनों के अनुरोध पर १५९२ वैक्रमीय को श्रीगोपालभट्ट-गोस्वामी ने श्रीगोपीनाथ को अष्टादशाक्षर गोपाल-मन्त्र की दीक्षा दी, साथ ही उन्हें विवाह न करने तथा शीघ्र वृन्दावन जाने की आज्ञा दे वे ग्राम-वासीजनों को भावरससागर में डुबोते हुये एकाकी वदरिकाश्रम मार्ग से नयपाल पथ की ओर प्रस्थानित हुये।

नयपाल प्रान्त पथपर जिस नैसर्गिक सौन्दर्य का उन्होंने अवलोकन किया उससे वे भावविमुग्ध हो उठे। वे उसे देखकर आगे बढे—एक ओर चन्द्र अपनी चान्द्रमसी ज्योत्स्ना को अपने विस्तृत आंचल में समेट अस्ताचल की शिखरों में छिपने जारहा है तो दूसरी ओर सूर्य अपनी अरुणिमा बिखेर उदयाचल की उन्नत शिखर सीमान्त लांघ धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा है, इस एक साथ उदय-अस्त क्रम से यह ज्ञात होता है कि किसी विविध रङ्गों से सुशोभित हिमालयरूपी हाथी पर रश्मि रज्जु जाल से बँधे हुये दो विशाल घण्टे लटक रहे हैं।

अभी अरुणोदय में कुछ क्षणों का विलम्ब है धीरे-धीरे आकाश साफ हो चला है, बीती रात अपनी काली चादर बाँध अब जाने की भूमिका में हैं मानो विस्तृत व्योम मध्य गङ्गा के यमुना की शत शत गौर श्यामल तरलित तरङ्गें इधर से उधर आ जा रही हैं।

अभी-अभी हिमगिरि शिखरों पर बिखरे हुये श्वेत मालती के पुष्पों को सूर्य की अरुणिमा ने लाल बना दिया।

चन्द्र के छिपने के साथ ही सरोवर में विकसित कुमुदिनी सकुचा उठी है, सूर्य के उदय से कमल मुकुल चटाचट खिलते जारहे हैं। यह उदय अस्त-क्रम सम्पत्ति और विपत्ति कभी किसी के एक साथ नहीं रहती यह बतला रहा है।

समस्त संसार को अपने प्रखर तेज से तपाता हुआ मध्याह्न सूर्य सहसा सन्ध्या के आरम्भ में नीचे की ओर गिरता जारहा है उसके सहस्रों कर अर्थात् किरणें उसे उठा रही हैं परन्तु वह नीचे की ओर चला जारहा है यही तो वास्तविक भाग्य की विडम्बना है।

सन्ध्या द्वार पर आपहुँची अतः सूर्य के लिये मुनिजनों ने जो रक्तिम पुष्पों का अर्घ्य दिया है, उस अरुणिमा को अपने अङ्क में सजोकर सूर्य अब जारहा है। उसे न आने की प्रसन्नता है, न जाने की वेदना इसीलिये तो उदय और अस्त में महज्जनों की भाँति सूर्य का एक समान सा अरुणरूप दिखलाई देता है।

आकाश के विस्तृत आँचल में ये चमकते हुये तारे मुनिकन्याओं द्वारा अस्तमित सूर्य के लिये श्रद्धा से समर्पित सुमनों के समूह की भाँति सुशोभित होरहे हैं।

मुग्ध गोप बालक पूर्ण चन्द्र की सान्द्र धवल ज्योत्स्ना को पृथ्वी पर बिखरा हुआ दूध समझकर गायों के स्तनों के नीचे दुग्ध पात्र रख रहे हैं कहीं दूध और न फैल जाय यह शङ्का उनके मन को सता रही है। ये शबर-कन्यायें बिखरे हुये लाल वेरों को गज मुक्ता समझकर बीन रही हैं। चन्द्र की इस चारु-चन्द्रिका ने प्रत्येक जन मानस में एक भ्रान्ति सी उत्पन्न कर दी है। यह विस्तृत आकाश नहीं, क्षीरसिन्धु की अगाध जल राशि है। उसमें यह चमकते तारे न होकर टूटते-जुड़ते जल के फेन कण हैं, यह चन्द्र नहीं, कुण्डलित शेषनाग है और उसके मध्य की यह कलङ्क कालिमा भगवान् विष्णु के नव घन श्यामल स्वरूप को बतला रही है।

यह देखो! सामने से वह डरावनी काली निशा दौड़ती हुई आरही है जिसमें देखते-देखते यह सम्पूर्ण संसार सो जायगा केवल एक संयमी ही एसा व्यक्ति है जो जागता रहेगा, उसपर निशा का तनिक भी असर न होगा।

जिसप्रकार गुणों के समूह में चन्द्र का एक कलङ्क-कालिमारूप दोष छिप जाता है उसीप्रकार अनन्त रत्नों की निधि हिमगिरि के ऊपर छायी हुई यह विशाल हिम राशि उसका दोष न होकर उसके गुण-सौन्दर्य के विकास में ही सहायक हो रही है।

अभी-अभी कीचड़ से सने हुये भेंसे की भाँति ये काले कजरारे बादल आकाश में छा रहे हैं, बादल और तमाल द्रुमों से सारी की सारी पृथ्वी काली हो चली है देखते-देखते तीक्ष्ण शर की भाँति ये पानी की बूंद पृथ्वी के उदर को चीर कर धँसती जारही है।

भागीरथी के निर्झर जल कणों से शीतल वायु ने देवदारु के वन-प्रान्त को कंपा कर रख दिया है।

चारों ओर गहन अन्धकार छा रहा है हाथ से हाथ दिखलाई नहीं दे रहा है किन्तु कहीं-कहीं बिखरा हुआ मणि, रत्न और दिव्य औषधियों का प्रकाश उस अन्धकार को भगा रहा है।

उत्तर की ओर अपनी उन्नत शिखर शेखरों से सुशोभित 'शरणागत की रक्षा महज्जन ही करते हैं, इस भावना से अन्धकार को अपनी गहन कन्दराओं में छिपाता हुआ पृथ्वी के मानदण्ड के समान-स्थित देव-स्वरूप हिमालय की इस नैसर्गिक पर्वतीय सौन्दर्य सुषमा को देखते हुये गोपालभट्ट हिमालय के दुर्गम मध्य भाग से वदरिकाश्रम आये। यहाँ इनको नरनारायण का प्रत्यक्ष दर्शन एवं भक्त-प्रवर उद्धव का साक्षात्कार हुआ।

वे उसी मार्ग से पुनः गण्डकी नदी के उद्गम स्थान पर पहुँचे। एकान्त, कान्त, शान्त, वन-प्रान्त की देख वे बड़े आनन्दित हुये और रात्रि में एक सिंसपा वृक्ष के नीचे उन्होंने विश्राम किया।

वही सह्याद्रि[1] के समान उन्नत हिमगिरि शिखर, कावेरी सा ही गण्डकी नदी का कल-कल निनाद, वैसे ही प्रस्फुटित पुष्पोद्यान इन प्राकृतिक दृश्यों को देखकर गोपालभट्ट भावविमुग्ध हो उठे। वे यहाँ कुछ दिनों रुके। त्रिकाल

---

१. कविवर माघ, त्रिविक्रम, गौरकृष्ण, वाणभट्ट, भगवद्गीता, शूद्रक, भास, जयदेव, कालिदास तथा अन्यान्य कवियों की सूक्ति के आधार पर।

नदी जल स्नान, वन फल भोजन एवं अविराम हरिनाम कीर्त्तन यह थी उनकी दैनिकचर्या। अभी तक उनके मनोऽभीष्ट की पूर्त्ति न होने से वे कुछ खिन्न थे ! उनकी प्रतिक्षण व्यग्रता बढ़ रही थी। प्रभु की इस लीलावैचित्री को वे कुछ समझ नहीं पारहे थे।

आज इन्होंने भगवत् प्रिय द्वादशी का निर्जल व्रत रखा है, परदिन पारण का समय [1]अत्यन्त अल्प है। पारण परदिन निश्चित अवधि में होना चाहिये यह शास्त्रीय निर्देश है। इन्हें व्रत्तौचितता को दृष्टिकोण में रख कर ही निर्दिष्ट समय पर पारण करना है, रात्रि में नदी-स्नान तथा पारण दोनों अनुचित हैं। अब कुछ ही क्षणों में ब्राह्म वेला आरम्भ होने वाली है। गोपाल-भट्ट त्वरित गति से गण्डकी नदी तट पर पहुँचे। आकाश कुछ-कुछ अरुणिमा लेता जारहा है। इस अरुणोदय वेला में उन्होंने पवित्र भारतीय नदियों का स्मरण करते हुये—

[2]स्मरामि भूमण्डलगण्डगण्डकीं,
प्रकामचण्डाँशुप्रकाशपाण्डुराम्।
अकाण्डभिन्नाण्डकटाहवाहिनीं,
प्रचण्डप्रत्यूहहरां हराम्वराम्॥

गण्डकी नदी का सश्रद्ध स्मरण किया एवं नमन कर वे नदी में प्रविष्ट हो स्नान करने लगे। इधर हिमगिरि की उन्नत शिखरों से सूर्य झाँक रहा था। गोपालभट्ट ने सूर्योपस्थान के लिये जैसे ही अञ्जलिपुट बाँध जल लेने का उपक्रम किया वैसे ही उनकी अञ्जलि में द्वादशांगुल परिमाण शालग्राम आगये।

गोपालभट्ट प्रभु की अनुपम अनुकम्पा और लीलावैचित्री को देख भाव विभोरित हो प्रेमाश्रु बहाने लगे। वे शालग्राम के लक्षणों से पूर्ण परिचित थे, इसका ही प्रतिपादन उन्होंने अपनी वैष्णव-स्मृति 'भगवद्भक्ति-विलास' में आगे चलकर किया है। उन्होंने शालग्राम को ध्यान से देखा, यह तो

---

१. एकादशी विषयक निर्णय परिशिष्ट में संलग्न।

२. गण्डक्याश्चैव देशे यत् शालग्रामस्थलं महत्।

गौतमीयतन्त्र। भगवद्भक्ति-विलासा-
न्तर्गतपञ्चमविलास। शालग्राम प्रकरण।

विलक्षण लक्षणयुक्त [1]दामोदर शालग्राम हैं। इसीप्रकार के शालग्राम की नित्य आराधना व्रजराज श्रीनन्द महाराज किया करते थे। उन्हें तुरन्त प्रभु का वह भाव समुद्रमग्न गोलाकृतिरूप ध्यान में आया, वे उसी भावना में खोगये। आनन्द की अतिरेक प्रकाश रेखायें प्रतिपल उनके अन्तस्तल को प्रभासित कर रहीं थी। प्रतिक्षण उन्हें उस विलक्षण लक्षणयुक्त नवीन शालग्राम में एक सौन्दर्य आभामण्डल दिखलाई दे रहा था।

वे परमानन्दित हो अञ्जलिपुट में शालग्राम को लिये हुये नदी तट पर आये। यहाँ उन्होंने पुष्प पल्लवों की एक शय्या बनाई एवं उस पर अपने आराध्य शालग्राम को विराजमान कराया। गोपालभट्ट पुनः सूर्योपस्थान के लिये नदी के मध्य में प्रविष्ट हुये एवं सूर्य-स्तवन के पश्चात् जैसे ही जलपात्र में उन्होंने नदी जल भरना चाहा वैसे ही कल-कल कर छोटे-बड़े अनेक लक्षणों से युक्त एकादश शालग्राम और उस जलपात्र में आगये।

जो [2]द्वादश शालग्रामों की प्रतिदिन विधिवत् अर्चना करता है वह व्यक्ति निश्चय ही पुण्यवान् है। उसका एक दिन का अर्चन करोड़ों कल्प की

---

१. स्थूलः दामोदरः ज्ञेयः सूक्ष्मरन्ध्रो भवेत्तु यः।
चक्रे च मध्यदेशस्थे पूजितः सुखदः सदा ॥
उपर्यधश्च चक्रे द्वे नातिदीर्घं मुखे बिलम्।
मध्ये च रेखा लम्बैका स च दामोदरः स्मृतः ॥

—पद्मपुराण। भगवद्भक्ति-विलासान्तर्गत पञ्चम विलास।
शालग्राम प्रकरण।

पुराणों के अनुसार जिसमें स्थूल शरीर, मुख भाग में सूक्ष्म छिद्र, ऊपर नीचे दो चक्र तथा मध्यभाग में एक लम्बी रेखा हो उसे 'दामोदर' 'शालग्राम कहते हैं। 'दामोदर' शालग्राम का विधिवत् आराधन सदा सुखप्रद होता है।

२. शिलाः द्वादश भो वैश्य! शालग्राम-समुद्भवाः।
विधिना पूजिताः येन तस्य पुण्यं वदामि ते ॥
कोटिद्वादशलिङ्गैस्तु पूजितैः स्वर्णपङ्कजैः।
यत्स्यात् द्वादशकल्पैस्तु दिनैकेकेन तद्भवेत्॥ पद्मपुराण। भगवद्भक्ति-
विलास। ५।२१२

प्रत्यहं द्वादशशिलाः शालग्रामस्ययोर्चयेत्।
स वैकुण्ठे महीयते ॥ स्कन्दपुराण। भगवद्भक्ति-
विलास। ५।२२५

अर्चना से भी कहीं अधिक पुण्यदायक है। प्रतिदिन द्वादश शालग्रामों की अर्चना कोटि-कोटि शिवस्वरूप की स्वर्ण कमल पुष्पों से की गई अर्चना के समान फलदायक मानी गई है। यह सब गोपालभट्ट जानते थे। आज उनके अभीष्ट की पूर्त्ति द्वादशीव्रत के द्वादश शालग्राम प्राप्तिरूप में हुई है इस घटनाक्रम से वे स्वयं आश्चर्यचकित थे।

'अब विलम्ब की आवश्यकता नहीं है' यह विचार कर उन्होंने भोजपत्र तथा दृढ़ लताओं की एक मञ्जूषा बनाई एवं उसमें उन शालग्रामों को रख उसे गले लटकाया और वे उत्तर प्रदेश के सीमान्त राजपथ से पश्चिमोत्तरवासी जनों को बिना किसी जाति वर्ण भावना के 'हरिनाम' धन लुटाते हुये धीरे-धीरे मथुरा आये।

यहाँ कुछ दिनों रुककर गोपालभट्ट विश्रान्त-तीर्थ पर यमुना स्नान, [1]माथुर चतुर्वेदी ब्राह्मणों का पूजन एवं श्रीगतश्रमनारायण, दीर्घविष्णु, आदिकेशव प्रभृति विग्रहों का दर्शन कर श्रीवृन्दावन आये।

श्रीगोपालभट्ट का वृन्दावन आगमन समाचार तडिद्वेग से व्रज और वृन्दावन के कण-कणों में व्याप्त हो गया। श्रीरूप, सनातन, प्रबोधानन्द, भूगर्भ, लोकनाथ तथा अभी-अभी नीलाचल से समागत रघुनाथदास, काशीश्वर आदि गोस्वामीगण विशाल वैष्णवमण्डली के साथ गोपालभट्ट से मिलने आये। परस्पर अभिवादन, आलिङ्गन के पश्चात् उभयपक्षों द्वारा कुशल समाचार सुनाये गये।

---

१. इस परम्परा का निर्वाह आज भी स्थानीय श्रीराधारमण मन्दिर में प्रतिवर्ष श्रीगोपालभट्टगोस्वामी द्वारा पूजित माथुर चतुर्वेदी ब्राह्मणों के वंशजों का——

श्रीगोपालभट्टगोस्वामी की तिरोभाव तिथि
(श्रावण कृष्णा पञ्चमी)

श्रीदामोदरदासगोस्वामी की तिरोभाव तिथि
(कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा)

श्रीगोपीनाथदासगोस्वामी की तिरोभाव तिथि
(पौष शुक्ला पूर्णिमा)

पर प्रसाद भोजन एवं दक्षिणा द्वारा सत्कार किया जाता है।

गोपालभट्ट ने भी सबों को अपनी नयपाल यात्रा तथा गण्डकी नदी से शालग्राम प्राप्ति का पूर्ण विवरण सुनाया। इस समाचार को सुनकर वैष्णवगण परमानन्दित हुये। गोपालभट्ट पर श्रीमन्महाप्रभु की अपार कृपा का स्मरण कर उनके आनन्द की सीमा न रही। गोपालभट्ट ने सबों को शालग्रामों का दर्शन कराया। वे सब उस अद्भुत 'दामोदर' शालग्राम का सन्दर्शन कर कृतकृत्य हो उठे।

गोपालभट्ट ने उस शालग्राम मञ्जूषा को रासस्थली-स्थित विशाल वटवृक्ष की शाखा में टाँगा और प्रतिदिन विधिवत् उनकी अर्चना तथा ग्रन्थ-निर्माण में अपना समय व्यतीत करने लगे।

शनैः शनैः वृन्दावन श्रीचैतन्यदेव के अनुयायी कन्था, करुआधारी वैष्णवजनों से भरने लगा।गौड़ीय गोस्वामीगणों द्वारा [1]लक्ष-लक्ष श्लोकात्मक ग्रन्थों का सङ्कलन तथा प्रणयन उच्चस्तर पर किया जारहा था। श्रीजीव-गोस्वामी भी बङ्गाल से आकर इस परियोजना में सम्मिलित हो गये। इस समय वृन्दावन का कण-कण समुज्वल भक्तिरस धारा से सरावोर हो रहा था। यहाँ के तोता,मेना पक्षी तक भी श्रीराधाकृष्ण की नित्य निकुञ्ज लीलाओं का प्रत्यक्ष दर्शन कर उसे [2]गा-गा कर सुना रहे थे। वे वास्तव में पक्षी न होकर मुनिगणों के रूप में थे जो ध्यानावस्थितभाव से श्रीराधाकृष्ण की उस सौन्दर्यसुधा का अविरत पान कर रहे थे।

[3]यह ज्ञानशून्य मृग-समूह बार-बार आकर अपने विशाल नयनों से श्रीकृष्ण की लावण्य माधुरी का अवलोकन कर फूला नहीं समा रहा था। उस समय साधकों की साधना इतने उच्चस्तर की थी कि वे रूपमञ्जरी की रसाल रागानुगा भावना के आश्रय से गौर श्यामल युगलस्वरूप के प्रत्यक्ष सेवासुख का सौभाग्य प्राप्त कर रहे थे।

---

१. चारि लक्ष संग्रह ग्रंथ दुहें विस्तार करिल।

—चैतन्यचरितामृत मध्य ४।७२

२. शुक शारिका प्रभुर हाते उड़ि पड़े।

प्रभु के सुनाईया कृष्णेर गुण श्लोक पढ़े।

—चैतन्यचरितामृत मध्य १७।७६

३. मृगेर पुलक अङ्ग अश्रु नयन। चैतन्यचरितामृत मध्य १७।७६

श्रीचैतन्यचरितामृत के अनुसार [1]श्रीचैतन्यदेव का अपने अनुगत गौड़ीय वैष्णजनों के लिये यह स्पष्ट आदेश था कि वे गोवर्द्धन पर्वत के ऊपर जाकर श्रीगोपालदेव के दर्शन न करें, कारण श्रीचैतन्यदेव गोवर्द्धन को भगवत्स्वरूप मानते थे।

अपने ब्रज-यात्रा क्रम में जब श्रीचैतन्यदेव गोवर्द्धन पधारे तब उनके हृदय में श्रीगोपालदेव के दर्शनों की तीव्र उत्कण्ठा हुई पर उस समय श्रीगोपाल विग्रह गोवर्द्धन के शिखर निर्मित मन्दिर पर विराजते थे। श्रीमन्महाप्रभु वहाँ कैसे जाते ? अतः मन मानकर रह गये।

गोपालदेव से अपने ही स्वरूप की उत्कण्ठा कैसे छिप सकती थी ? वे राज्यविप्लव की आशङ्का से ग्रामवासियों द्वारा गांठोली ग्राम ले जाये गये। [2]प्रभु तीन दिन गाँठोली में रहकर श्रीगोपाल के दर्शन करते रहे।

[3,4]श्रीरूपगोस्वामी वृद्ध हो चले थे वे इस जराजर्जरित अवस्था में गोवर्द्धन जाकर गोपालदेव के दर्शन नहीं कर सकते थे। गोपाल दर्शन की उत्कण्ठा उनके मन में प्रतिपल बढ़ रही थी।

'भक्तेर वाञ्छा पूर्ण करेन नन्देर नन्दन।'

---

१. गोवर्द्धने ना चढ़िह देखिते गोपाल। चै० च० अन्त्य १३।४

२. एई मत तीन दिन गोपाल देखिला। चै० च० मध्य १८।१७

३. पर्वते ना चढ़े दुई रूपसनातन। चै० च० मध्य १८।१८

४. वृद्ध काले रूपगोसांई ना पारे दूर जाईते।
वाञ्छा हइल गोपालेर सौन्दर्य देखिते॥

गोपाल आईल मथुरा नगरे। एक मास रहिल विट्ठलेश्वर घरे॥
तबे रूपगोसांई निजगण लैया। एक मास दर्शन करिल मथुराते रहिया॥
सङ्गे गोपालभट्ट——

एई सब मुख्य भक्त लैया निजसङ्गे। गोपाल दरसन कइल बहुरङ्गे॥
चै० च० मध्य १८।१९-२०

भक्त की अभिलाषा भगवान् के द्वारा पूर्ण होती है। गोपाल राज्य-विप्लव के भय से मथुरा पधारे। गोपाल का मथुरा आगमन व्रज के वैष्णव-जनों ने सुना। आशा पूर्त्ति का मूर्त्तस्वरूप प्राप्त कर श्रीरूपगोस्वामी परम प्रसन्न हुये अन्त में अपने मुख्य श्रीगोपालभट्ट आदि गणों के साथ श्री-विट्ठलनाथजी के सतघड़ा-स्थित आवास स्थान में एक मास पर्य्यन्त रहकर गोपाल के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त करते रहे।

गौड़ीय वैष्णवाचार्य एवं श्रीबल्लभ कुल के गोस्वामी स्वरूपों का सदा से ही परस्पर स्नेह सम्बन्ध रहा है। ये दोनों सदा एक दूसरे के पूरकरूप में रहे हैं।

[1]श्रीरूपगोस्वामी के स्तवावली की 'उत्कलिका-वल्लरी' एवं विदग्ध-माधव[2] का समापन भी श्रीविट्ठलनाथजी के गोकुलस्थ आवास स्थान पर ही हुआ था।

वृद्धावस्था में श्रीरघुनाथदासगोस्वामी की देख-रेख का भार श्रीविट्ठल-नाथगोस्वामीजी पर था। आचार्य श्रीवल्लभ ने श्रीचैतन्यदेव का अपने अड़ेल (प्रयाग)स्थित आवास स्थान पर विशेषरूप से स्वागत किया था एवं वे नीला-चल में कुछ दिनों तक श्रीचैतन्यदेव के समीप रहे थे। 'श्रीराधाष्टक' तथा 'परिवृढ़ाष्टक' स्तोत्र की रचना भी[3]श्रीचैतन्यदेव से प्रभावित होकर आचार्य श्रीबल्लभ ने की थी। श्रीरघुनाथदासगोस्वामी ने गोपाल को 'विट्ठलोरुसख्य' रूप से प्रतिपादित किया है। [4]श्रीचैतन्य मुखनिःसृत 'निजप्रेमामृतस्तव' की टिप्पणी आचार्य श्रीविट्ठलनाथजी द्वारा की गई थी।

वस्तुतः व्रजभाषा, साहित्य, संस्कृति, सभ्यता को अक्षुण्ण रखने में 'गौड़ेश्वर-वैष्णवाचार्य एवं श्रीवल्लभ सम्प्रदाय के आचार्यों की बहुत बड़ी साधना रही है।

श्रीगोपालभट्टगोस्वामी की विद्वता एवं वाग्मिता का प्रभाव उनकी एक मास तक मथुरा स्थिति के कारण श्रीआचार्यविट्ठलनाथजी पर पड़ चुका था।

---

१. पौषे गोकुलवसिना

२. विदग्धमाधवं नाम नाटकं गोकुले कृतम्।

३. डा० व्रजेश्वर वर्मा 'सूरदास' पृ० १२८।

४. श्रीमूलचन्द तुलसीवाला तथा श्रीधैर्यलाल सांकलिया द्वारा प्रकाशित 'प्रेमामृत' की प्रस्तावना।

श्रीगोपालभट्ट के हृदय में भी श्रीविट्ठलनाथजी के प्रति अत्यन्त समादर भाव था।

आन्तरिक प्रीति के लिये किन्हीं वाह्य उपाधियों की आवश्यकता नहीं होती; इसका सञ्चरण दोनों पक्षों में स्वाभाविकरूप से होता है।

कमल को सूर्योदय कौन बतलाता है ? वह सूर्य को देखकर अपने आप खिलने लगता है चन्द्रकान्तमणि चन्द्र की ज्योत्स्ना को देखकर स्वयं पिघलने लगती है। यही आन्तरिक प्रीति के चिह्न हैं।

इस पक्ष को श्रीगोपालभट्टगोस्वामी एवं श्रीविट्ठलनाथगोस्वामी ने अपने जीवन काल तक पूर्णरूप से निभाया।

श्रीआचार्य विट्ठलनाथगोस्वामी जब वृन्दावन आते थे तब अवश्य श्रीगोपालभट्टगोस्वामी के आवास स्थान पर आकर [1]श्रीराधारमण विग्रह के दर्शन करते थे।

---

१. प्रतिवर्ष श्रीवल्लभकुल के श्रीगोस्वामी बालक अपनी ब्रज यात्रा प्रसङ्ग में श्रीवृन्दावन आकर इस परम्परा के निर्वाह-स्वरूप श्रीदामोदर शालग्राम से स्वयं प्रकट श्रीराधारमण विग्रह का अवश्य दर्शन कर दूध घर का श्रीप्रसाद ग्रहण करते हैं।

इसी परम्परा शृङ्खला में श्रीराधारमणीय सार्वभौम श्रीमधुसूदनगोस्वामी, श्रीराधाचरणगोस्वामी, श्रीललिताचरणगोस्वामी, श्रीदामोदरलालगोस्वामी शास्त्री, श्रीबालकृष्णगोस्वामी तथा श्रीदामोदराचार्यगोस्वामी आदि का नित्यलीला-गत श्रीगोस्वामीदेवकीनन्दनाचार्य (कामवन) श्रीगोस्वामीघनश्यामलालजी (मथुरा) श्रीगोवर्द्धनलाल गोस्वामी, श्रीगोविन्दलालगोस्वामी, श्रीदामोदरलाल गोस्वामी, (नाथद्वारा) तथा श्रीगोकुलनाथगोस्वामी (बम्बई) से प्रगाढ़ सम्बन्ध रहा था।

वर्त्तमान में लेखक का भी राजकीय-चिकित्सालय, गोकुल(मथुरा) के राजपत्रित चिकित्साधिकारी के रूप में तत्कालीन श्रीवल्लभ सम्प्रदाय के गोस्वामी स्वरूपों से घनिष्ट सम्बन्ध रहा है।

लेखक ने अपनी भीषण ज्वरग्रस्तता से श्रीगोकुलनाथजी का स्वप्नादेश प्राप्त कर निम्न 'श्रीगोकुलेश्वराष्टक' की रचना द्वारा मुक्ति प्राप्त की थी।

श्रीराधारमण प्राकट्य—

ब्रजस्थितिकाल में श्रीरूप,सनातन आदि गोस्वामीगण श्रीचैतन्यदेव के आदेश से व्रज के विलुप्त तीर्थ स्थानों पर जाकर शास्त्रीय प्रमाणों के अनुसार उनके श्रीकृष्णलीलाकालीन नाम, लीलाधामों का वास्तविक स्वरूप प्रकाश करते थे ।

सूर्यात्मजातरलतुङ्गतरङ्गरङ्ग—
सङ्गाङ्गसंश्रितनरामरवृन्दवन्द्यम् ।
कान्तं नितान्तविविधान्तकवेदनान्तं,
वाञ्छामि गोकुलपतेश्चरणारविन्दम्॥१॥

श्रीरूपदेवरघुनाथसनातनाग्र्य—
गोपालभट्टजनजीवनजीवजीवम् ।
श्रीविठ्ठलेशवरवंशविलासवीजं,
वाञ्छामि गोकुलपतेश्चरणारविन्दम्॥२॥

वृन्दारकार्चितमनन्तजनावलम्वं,
वित्रस्तविश्वजनताकरुणाकदम्वम् ।
अम्भोजिनीनवदलारुणरागविम्वं,
वाञ्छामि गोकुलपतेश्चरणारविन्दम्॥३॥

गोपाङ्गनोन्नतपयोधरमण्डलाग्र—
सिंहासनोपरिविराजितराजरूपम् ।
वज्रध्वजाब्जप्रवरांकुशचापचिह्नं,
वाञ्छामि गोकुलपतेश्चरणारविन्दम्॥४॥

गोविन्दसुन्दरवधूनयनारविन्द—
नित्योत्सवोत्तमप्रकारविकासकन्दम् ।
आनन्दमन्दिरममन्दमुनीन्द्रनन्दं,
वाञ्छामि गोकुलपतेश्चरणारविन्दम्॥५॥

विख्यातविश्ववरवन्दितवल्लभार्य—
ध्यानैकगम्यमखिलश्रुतिसारसारम् ।
लीलाविलासरसरासरसाभिसारं,
वाञ्छामि गोकुलपतेश्चरणारविन्दम्॥६॥

इसी शृङ्खला में श्रीमधुपण्डितगोस्वामी ने एक दिन स्वप्न में यह देखा कि वंशीवट तट पर एक श्यामवर्ण बालक वंशी बजा रहा है उसकी वंशी के स्वरों से विमोहित हो सहस्रों गोपाङ्गनायें उसके पास आकर एकत्रित हो रही हैं पर वह वैसा ही मुस्कराता हुआ वंशी बजा रहा है। उसकी वंशी का विराम नहीं। सहसा गोपाङ्गनायें अन्तर्हित हुईं सामने वह बालक खड़ा हुआ कह रहा है—बाबा! मुझे यहाँ से ले चलो, उनकी तन्द्रा भङ्ग हो गई, वे उठे एवं उसी [२]वंशीवट के नीचे उन्हें श्रीगोपीनाथ विग्रह की प्राप्ति हुई। [३]वर्त्तमान में जहाँ आज गोपीनाथ मन्दिर है वहाँ ही प्राचीन

चन्द्रावलीचन्द्रकचुम्बिताग्र्यं,
गान्धर्विकामदनमादनकाभिरामम्।
लीलाललामभविरामगुणैकग्रामं,
वाञ्छामि गोकुलपतेश्चरणारविन्दम्॥७॥

माणिक्यमौक्तिकतमोमणिताक्ष्र्यहीर—
वैडूर्यनीलवरविद्रुमपुष्परागम्।
रत्नप्रभाच्छुरितमञ्जुलनूपुरालिं,
वाञ्छामि गोकुलपतेश्चरणारविन्दम्॥८॥

श्रीगोकुलेश्वरवराष्टकमत्युदारं,
श्रेयस्करं परतरं पठति प्रभाते।
वाधाविवादविविधाधिविधाविमुक्तः
साक्षात्लभेत भगवतश्चरणारविन्दम्॥

—✿—

२. श्रीमद्रासरसारम्भी वंशीवटतटस्थितः।
कर्षन् वेणुस्वनैर्गोपी गोपीनाथः श्रियेस्तु नः॥
—चैतन्यचरितामृत आदि १।१७

३. यमुनाप्लावित एई वंशीवट स्थान।
वंशीवट यमुनाय हइल अन्तर्द्धान॥
तार एक डालि आनि गोस्वामी आपने
करिल रोपन एई पूर्वेर सन्निधाने॥ —भक्तिरत्नाकर पञ्चमतरङ्ग

वंशीवट था किन्तु यमुना के कटाव-से वह प्राचीन वंशीवट वृक्ष नष्ट हो गया श्रीनित्यानन्दप्रभु ने अपनी वृन्दावन यात्रा में एक वट वृक्ष की डाली लगा कर उसके प्राचीन गौरव की रक्षा की थी।

एक दिन श्रीसनातनगोस्वामी ने महावन में अनेक गोप बालकों के साथ एक श्यामवर्ण का बालक देखा जो अपने सौन्दर्य-स्मितहास्य से त्रिभुवन को विमोहित कर रहा है। सनातन उसकी मुस्कराहट पर अपना तन-मन समर्पित करने के लिए व्यग्र हो उठे। वे उसे पकड़ने को दौड़ रहे हैं पर वह भला कभी किसो के हाथ आया है;वह हँसता और उन्हें अँगूठा दिखाता हुआ छिप जाता है। सनातन उसके अदर्शन से भाव-विह्वल हो रोने लगते हैं। रोते-रोते सारी रात बीत जाती है; इधर उन्हें तनिक सी झपकी लगती है, देखते हैं कि फिर वही बालक सामने आकर कहता है कि—

सनातन ! मुझे यहाँ से ले चलो। सनातन की निद्रा टूटी और वे बालक के बतलाये हुये स्थान पर भिक्षा लेने पहुँचे। सामने वही बालक सिंहासन पर बैठा हुआ उसीप्रकार मुस्करा रहा है। सनातन उस बालक को अपलक दृष्टि से देख भावावेश में रोने लगते हैं। सनातन का अब वहाँ नित्य जाना और उस श्याम विग्रह को देख कर रोना। एकदिन उस विग्रह के प्रधान अर्चक श्रीपरशुराम चतुर्वेदी श्रीसनातनगोस्वामी से यह कहने लगे कि—

बाबा ! मैं अब वृद्ध हो चला हूँ मुझसे अब इस विग्रह की यथोचित सेवा नहीं हो पारही है; सेवा न होने से यह बालक दिनों दिन दुबला होता जारहा है अब तुम इसे ले जाओ और भावनिष्ठा से इसकी सेवा करो। श्रीसनातन उस प्राचीनतम विग्रह को लेकर वृन्दावन आये और १५९० वै० की माघ शुक्ला द्वितीया को आदित्यटीला के समीप इस त्रिभुवनजन मन-मोहन [1]श्रीमदनमोहन विग्रह की स्थापना की।

---

१. जयतां सुरतौ पङ्गोर्मममन्दगतेर्गती।
मत्सर्वस्वपदाम्भोजौ राधामदनमोहनौ॥
—चैतन्यचरितामृत आदि १।१५

श्रीमन्मदनगोपालोऽप्यत्रैव सुप्रतिष्ठितः। स्कान्द। मथुराखण्ड।

मदनमोहन कहि मदनगोपाले। भक्तिरत्नाकर पञ्चमतरङ्ग

भक्तिरत्नाकर तथा साधनदीपिका के अनुसार श्रीचैतन्यदेव के अन्तर्द्धान के एक वर्ष पूर्व श्रीरूपगोस्वामी के मन में यह भावना उत्पन्न हुई कि शास्त्रीय ग्रन्थों में [1]वृन्दावन स्थित योगपीठ स्थान और उसमें सदा विराजित श्रीगोविन्ददेव का उल्लेख मिलता है किन्तु वह स्थान कहाँ है ? इसका वे अब तक निर्णय नहीं कर पा रहे थे। एकदिन एक अत्यन्त सुन्दर व्रजवासी बालक आकर उनसे कहता है कि बाबा ! तुम इतने उदास क्यों हो ? उसकी बातों से मुग्ध हो श्रीरूप योगपीठ तथा गोविन्ददेव की अभी तक प्राप्ति नहीं हुई बतलाते हैं। यह सुनकर वह व्रजवासी बालक कहता है। रूप बाबा! सामने का वह ऊँचासा टीला [2]'गोमाटीला' ही योगपीठ है। यहाँ नित्य एक गौ इसपर दूध चढ़ाकर चली जाती है,ढूँढ़ो। यहाँ ही गोविन्दजी तुम्हें मिलेंगे। यह कह कर वह बालक अन्तर्हित हो जाता है। श्रीरूप सहसा उस व्रजवासी बालक के अन्तर्हित हो जाने से मूर्च्छित होकर गिर पड़ते हैं। थोड़ी देर बाद उन्हें चेतना होती है वे उसीसमय व्रजवासियों को बुलाकर उस निर्दिष्ट-स्थान को खुदवाते हैं और दस हाथ नीचे उन्हें श्रीकृष्ण प्रपौत्र वज्रनाभ द्वारा प्रतिष्ठित श्रीगोविन्दविग्रह की प्राप्ति होती है। श्रीगोविन्दविग्रह की [3]प्राप्तिमात्र

---

१. श्रीविग्रह श्रीगोविन्द व्रजेन्द्रकुमार।
सदा योगपीठे स्थिति शास्त्रे ए प्रचार ॥
—भक्तिरत्नाकर द्वितीयतरङ्ग

२. गोमाटीला (गौ+मा का टीला) ख्याति योगपीठ वृन्दावने।
— भक्तिरत्नाकर द्वितीयतरङ्ग तथा साधनदीपिका

३. गोविन्द प्रकटमात्र श्रीरूपगोसांई।
क्षेत्रे पत्री पाठाइला महाप्रभु ठांई ॥

श्रीगोविन्द प्रकट हइल रूपद्वारे ॥
——भक्तिरत्नाकर द्वितीयतरङ्ग तथा साधनदीपिका

दिव्यद् वृन्दारण्यकल्पद्रुमाधः श्रीमद्रत्नागारसिंहासनस्थौ।
श्रीमद्राधाश्रीलगोविन्ददेवौ प्रेष्ठालीभिः सेव्यमानौ स्मरामि ॥
——चै० च० आदि १।१५

स्मेरां भङ्गी त्रयपरिचितां साचिविस्तीर्णदृष्टिं,
वंशीन्यस्ताधरकिसलयामुज्वलाँ चन्द्रकेण।

श्रीरूप पत्र द्वारा श्रीचैतन्यदेव को इसकी सूचना देते हैं और पुरी से श्री-गोविन्ददेव की सेवा-पूजा के लिये प्रभु अपने प्रिय पार्षद श्रीकाशीश्वर को वृन्दावन भेजते हैं। [1]वैक्रमीय तर्ष १५६२ की माघ शुक्ला बसन्त पञ्चमी के दिन एक छोटे से मन्दिर में श्रीरूपगोस्वामी द्वारा पुन: श्रीगोविन्ददेव की प्रतिष्ठापना की गई।

[2]उस समय यह तीनों विग्रह गौड़ीय वैष्णवगणों के आराध्यरूप में माने जाते थे। प्रत्येक सम्प्रदाय का वैष्णव नित्य प्रातः श्रीगोविन्ददेव की मङ्गला, श्रीमदनमोहन का शृङ्गार तथा श्रीगोपीनाथ का सान्ध्य दर्शन करता था।

इसीसमय नयपाल यात्रा से प्रत्यावर्त्तित हो श्रीगोपालभट्ट वृन्दावन आगये और उनके आने के कुछ ही दिनों बाद देववन से श्रीगोपीनाथ अपने गुरुदेव की सेवा के लिये वृन्दावन उपस्थित हुये श्रीगोपालभट्ट श्रीगोपीनाथ के आगमन से अत्यन्त आनन्दित हुये। अब वे गुरु-शिष्य दोनों अपने आराध्य शालग्रामस्वरूप की अर्चना एवं ग्रन्थ निर्माण योजना में पूर्णरूप से अपना समय अतिवाहित करने लगे।

वृन्दावन-स्थितिकाल में श्रीगोपालभट्टगोस्वामी अपने आराध्य स्वरूप शालग्राम की सेवा करने के साथ नित्य श्रीगोविन्द, श्रीमदनमोहन एवं श्री-गोपीनाथ विग्रहों का दाक्षिणात्य तथा व्रज-परम्परागत पद्धति के अनुसार शृङ्गार सेवा करते थे। उनकी शृङ्गार सेवा से वैष्णवगणों को परम सन्तोष होता था यद्यपि गोपालभट्ट इन तीनों विग्रहों की शृङ्गार रचना से अत्यन्त आनन्दित थे तथापि उनके अन्त: मन में एक एसी भावोत्कण्ठा छिपी थी कि इस शालग्रामस्वरूप में मुझे तीनों विग्रहों का दर्शन हो पर क्या यह सम्भव है? जब उनके हृदय की अन्तर्वेदना बढ़ती तब वे कहने लगते मेरे एसे भाग्य कहाँ हैं?

गोविन्दाख्यं हरिजनुमितः केशीतीर्थोपकण्ठे,
मा प्रेक्षिष्ठास्तव यदि सखे ! बन्धुसङ्गेऽस्ति रङ्गः ॥

—भक्तिरसामृतसिन्धु पूर्व-विभाग २।१११

१. सेवा-प्राकट्य

२. एई तीन ठाकुर गौडीया के कइल आत्मसात्।

मैं तो सदा से ही अभागा रहा हूँ। प्रभु ने अपनी दक्षिणदेश यात्रा पर मुझे अपना नव नदियानागर गौर रूप दिखा कर संसार को रुलाने वाला अपना सन्यस्तरूप दिखाया था, जब इससे भी उनका मन न भरा तब वे घन श्यामलस्वरूप में उपस्थित हुये। मैं उनके श्रीचरणों को पकड़कर मस्तक झुका पायाही था कि वे अपनी मनोमुग्धकारी माधुरी छटा दिखाकर अन्तर्हित होगये। मैं कितना रोया,कलपा,बार-बार याचना की कि मुझे साथ ले चलिये पर उन्होंने नोलाचल न आकर सीधे वृन्दावन जाने की आज्ञा दी।

मैं उनके श्रीचरण दर्शन से बञ्चित हो भटकता हुआ वृन्दावन आया, यहाँ सुना कि प्रभु वृन्दावन आरहे हैं। मुझे विश्वास हुआ कि अब मेरी आशा लता पुष्पित और फलवती होगी, मैं एकबार फिर उनके [1]फेला (अधरामृत) लवों (कणों) का आस्वादन प्राप्त कर सकूँगा किन्तु मेरी यह स्वर्णिम स्वप्न साम्राज्य सजोने की कल्पना तब पूरी तरह टूट चुकी जब वे अपार करुणा पारावार प्रभु अपना परिधान-वस्त्र तथा पट्टा मुझे सोंप श्रीजगन्नाथ विग्रह में विलीन होगये।

विधातः ! तुम इतने निठुर क्यों हो? पहले तो तुम मिलन सुख प्रदान कर उसे आनन्दित करते हो अन्त में तिनके के समान प्रीति को तुड़वाकर उसे दारुण दुःख के गहनगर्त्त में ढकेलते हो। पहिले तो मिलाना ही नहीं था यदि मिलाना था तो बिछुड़ाना कैसा ? इस प्रकार की निर्दयी भावना तुम क्यों रखते हो ? क्या तुम्हें केवल तड़पाना ही आता है। देखो ! तुम्हारी प्रेरणा से ही उस कृष्ण कन्हैया ने वंशी बजाकर आधी रात पर अपना घर द्वार छुड़ाते हुये अपने पास गोपियों को बुलाया था फिर उनसे व्याध की भाँति निर्दयता दिखा घर लौट जाने की आज्ञा दे कितना रुलाया, कलपाया। क्या यह तुम्हारे लिये लज्जा की बात नहीं है ?

प्राणनाथ !

मैं आज दिशा हारा की भाँति केवल तुम्हारे दर्शन पाने के लिये इधर से उधर भटक रहा हूँ। मेरे प्राण तुम्हारे दर्शनों की आशा पर टिके हुये हैं। आकर दर्शन दे हृदय की ज्वाला को शान्त करिये।

---

१. कृष्णेर जे भुक्त शेष तार फेला नाम।
तार एक लव पाय सेई भाग्यवान्॥ चै० च० अन्त्य १६।४२

प्रभो ! मैंने सदा से यह सुन रखा है कि आपके श्रीचरणकमल अपने अनाथ भक्तों की अभिलाषा पूर्त्ति के साधन और आश्रयस्थल के रूप में रहे हैं पर आज मुझसे एसा कौन सा अपराध बन गया ? जो आपने मेरी ओर से मुख फेर लिया।

नाथ ! आप समस्त जीवजनों के हृदय में विराजते हो इसलिये मेरी कोई बात आप से छिपी हुई नहीं है। आओ ! एकबार अपना वह विश्व-विमोहन वदन चन्द्र को दिखाकर मेरे मन की तपन को मिटा दो।

दयानिधे ! आपने अपने एकबार चरणस्पर्श से कालियनाग को पापों से छुड़ा दिया था। कृपाकर एकबार मुझ अभागे के मस्तक पर भी अपने श्रीचरणों को रख पापों से छुटकारा दिलादो।

मनमोहन ! एकबार क्या फिर उन—

कारी सटकारी लहरदार छविदार अतर सों पाली है,
मखतूल नीलमणि चञ्चरीक उपमा के जिय में साली है।
कर साफ अतर से मुखड़े को बेतरह पेचवां डाली है,
या लालबिहारी की जुल्फें मत छेड़ नागिनी काली है॥

काली सटकारी केशों की छटा को न दिखलाओगे ?

ठगीले ठाकुर! अब बिना मोल के चाकर को ठुकराओ मत। श्रीकृष्ण! इस संसार में मुझ जैसा अधम और नहीं मिलेगा। मैं उस व्याध, अजामिल से करोड़ों गुना अधिक पापी हूँ। मेरे अपराध उस ग्राह से कम नहीं हैं। मैं शवरी शूद्र और केवट से लाखों गुना नीच हूँ। मेरो दशा पर तरस खाकर अब कौन मुझे बचावेगा ? चारों ओर भटक कर अब मैं आपकी शरण में आया हूँ। अब आप आश्रय दो या ठुकराओ। सब कुछ तुम्हारी इच्छा पर ही निर्भर है।

वृन्दे ! तुम तो सदा से ही उस आनन्दकन्द गोविन्द चरणों की प्रेयसी रही हो। तनिक एकबार अपने उस अशरणशरण विश्वमनहरण राधारमण से जाकर कहो न क्यों अकारण अपने दारुण आचरण द्वारा निज शरणागत को इतना कष्ट दे रहे हो ?

यमुने ! तुम तो वही तमाल तरुवरों से ढकी हुई नील सलिला तरणि-तनूजा हो। तुम्हारे ही इस सुरम्य विशाल तट पर उस नीलकान्तमणि ने अपना सब कुछ श्रीराधा के चरणों में समर्पित किया था। तुम ही जाकर एकबार उनसे मेरे मन की बात कहो कि तुम्हारा दास बहुत तड़प चुका है अब उसे अधिक न तड़पाओ। उस दर्शन के प्यासे को बदन सुधाधारा पिला कर उसकी पिपासा को शान्त करो।

आज श्रीनृसिंह-चतुर्दशी की संध्या समुपस्थित है, गोपीनाथ अपने गुरुदेव श्रीगोपालभट्ट से अभिषेक विधि सम्पन्न करने की प्रार्थना करते हैं। उन्होंने अभिषेक की समस्त सामिग्री सजोकर रख दी है। जैसे ही श्रीगोपालभट्ट अभिषेक स्थान पर पहुँचकर भगवान् श्रीनृसिंहदेव का—

पीताम्बर ! महाविष्णो ! प्रह्लादभयनाशकृत् !

भगवद्भक्तिविलास १४।१५६

रूप में ध्यान करते हैं वैसे ही उनकी भावोन्माद दशा तीव्र हो उठती है। वे उस शालग्राम में अपनी कल्पना के साकार स्वरूप का दर्शन कर कह उठते हैं,आजके हो दिन अपने अनुगत प्रह्लाद पर कृपा कर भगवान् नृसिंहदेव

'सत्यं विधातुं निजभृत्यभाषितं व्याप्तिञ्च भूतेष्वखिलेषु चात्मनः।
अदृश्यतात्यद्भुतरूपदर्शनं स्तम्भे सभायाँ–'

श्रीमद्भागवत ७।८।१७

उसके वाक्यों की सत्यता प्रतिपादन के लिये पाषाण स्तम्भ को विदीर्ण कर अवतरित हुये थे। क्या वे मेरे इस शालग्राम से अपने चिर चिन्तनीय अलौकिक रूप में पुनः प्रकट नहीं हो सकेंगे ? गोपालभट्ट की आर्त्ति प्रतिपल बढ़ती जा-रही है। गोपीनाथ अपने गुरुदेव के पास खड़े हो उनकी भाव विकलवित दशा देख रहे हैं। सन्ध्या में ही श्रीनृसिंहदेव का अभिषेक विधेय है। वे बार-बार गुरुदेव ! उठिये और चलकर अभिषेक विधि समापन करिये, यह अनुरोध कर रहे हैं पर उन्हें चेतनता नहीं है। कालिन्दी के निर्झर शीकरों के अभिसिञ्चन से उन्हें तनिक संज्ञा आती है। वे उठकर शालग्राम का अभिषेक करते हैं,अभिषेक के पश्चात् जब वे शालग्राम को पोंछकर पुष्पदोल पर विराजमान करा उनके स्वरूप का अवलोकन करते हैं तब उन्हें उस शालग्राम में अपने आराध्य घनश्यामलस्वरूप का दर्शन होता है। गोपालभट्ट उस नव घनश्यामलस्वरूप के दर्शनमात्र से भावरस सागर की शत शत तरलित तरङ्गों में डूबते उछलते दिखलाई देते हैं। उनकी भावोन्माद दशा प्रतिक्षण सहस्रोंगुणित उच्छ्वलित होने लगती है।

नाथ ! आज मेरी आपके इस ललित त्रिभंगी रूप के शृङ्गार की बड़ी उत्कण्ठा होरही है। मुझे दिन रैन-चैन नहीं है अब बिलम्ब न कर अपनी अनुपम दिव्य रूपमाधुरी छटा का दर्शन दीजिये। यह कह कर गोपालभट्ट जोरों से रोने लगते हैं।

अनाथों के नाथ ! व्रजनाथ ! एकबार आकर मेरी इस विरह-वेदना को दूर करिये। इतना कहकर वे उस रासस्थली की पुलिन भूमिपर मूर्च्छित हो गिर पड़ते हैं। गोपीनाथ उन्हें सम्भालते हैं। उनकी चेतनता का प्रयत्न करते हैं पर आज गोपालभट्ट को संज्ञा नहीं है। वे बार-बार—

हा नाथ ! हा रमण ! तुम कहाँ हो ? एकबार आकर मेरी तपन मिटाओ। कह कर रोरहे हैं।

गोपीनाथ ने शालग्राम का षोडशोपचार पूजन कर उन्हें मञ्जूषा में रख दिया है। चतुर्दशी की चान्द्रमसी ज्योत्स्ना गोपालभट्ट के विरह-विदग्ध हृदय को शीतल न कर उद्दीपित ही कर रही है। उनके विलाप का विराम नहीं। आज क्या होने वाला है ? यह विषाद रेखा गोपीनाथ के मस्तक पर उभरती आरही है। भगवान् से भक्त की अन्तर्वेदना छिपी न रही।

वे जिस प्रकार व्रजाङ्गनाओं के—

इति विक्लवितं तासां श्रुत्वा [1]योगेश्वरेश्वरः।

—श्रीमद्भागवत १०।२९।४२

विरह व्यथित वाक्यों को सुन रासस्थली पर योगेश्वरेश्वर पीताम्बरधारी, वनमाली, साक्षात् कोटि कन्दर्पदर्पापह श्रीकृष्णरूप में प्रकट हुये थे उसी-प्रकार आज वैशाखी पूर्णिमा की पूर्व प्रभात वेला में—

अपने गुणमञ्जरी भावापन्न श्रीगोपालभट्ट के विरह विक्लवित वाक्यों को सुनकर वे अगेश्वरेश्वर, नीलाचलनाथ के भी ईश्वर, योगासन (पट्टा) प्रदानकारी राधाभावद्युति-सम्बलित भगवान् चैतन्यदेव, श्रीगोवर्द्धनधारी नव घन श्यामल श्रीकृष्ण के रूप में स्वयं प्रकटित हो अपने मृदु मन्द स्मित हास से त्रिभुवन जन-मन को विमुग्ध करते हुये गोपालभट्ट के सन्निकट आ कहने लगते हैं—

गोपालभट्ट ! उठो ! मैं तुम्हारे प्रेमबन्धन में बंधकर आगया हूँ। अब मैं सदा तुम्हारे पास ही रहूँगा। तुम जिस रूप की कल्पना करते थे मैं उसी गोविन्द के समान मुखकान्ति, गोपीनाथ के समान वक्षः स्थल छटा तथा मदन-मोहन के समान चरणमाधुरी धारण कर एकही विग्रह में तुम्हारे पास आया हूँ। अब तुम मन प्राण भरकर मेरा श्रृङ्गार करना।

---

१. पदच्छेद—यः अगेश्वरेश्वरः
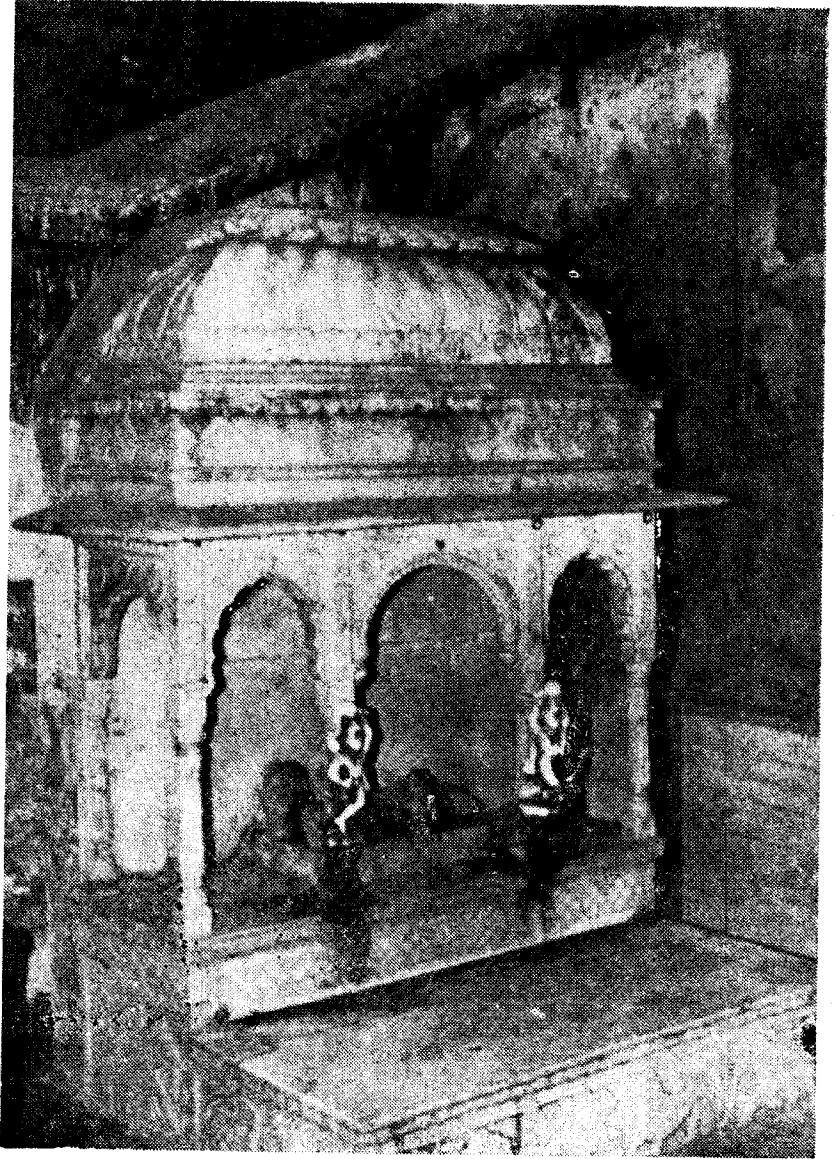
स्वयम्भु श्रीराधारमण-प्राकट्यस्थल मन्दिर रास-स्थली परिसर

गोपालभट्ट की स्वप्न निशा का अवसान हुआ वे सचेत हो उठ खड़े हुये। प्रभात का अरुणिम प्रकाश आकाश के कोने-कोने को प्रभासित कर रहा है। गोपालभट्ट अविलम्ब स्नानकर मञ्जूषा खोलने को उठते हैं,उन्हें मञ्जूषा का उपरिस्थित भाग कुछ उन्नत सा दिखलाई देता है, वे झुककर उसे देखते हैं कि उसमें से उन्हें एक उज्वल नीलिमा झाँकती हुई दिखाई देती है। वे विषधर की स्थिति से किञ्चित् चोंक उठते हैं। सहसा उन्हें उस मञ्जूषा में एक साथ अनेक विस्तीर्ण 'प्रकाश रेखायें' प्रकाशित सी दिखाई दी।

उन्होंने तुरन्त गोपीनाथ को अपने समीप बुलाकर जैसे ही मञ्जूषा को खोला वैसे ही उन्हें उस मञ्जूषा में शालग्राम के स्थानपर एक अपरूप कोटिलावण्य-प्रभास्वरूप षोडशांगुल परिमाण नव नील नीरद श्याम विग्रह का दर्शन हुआ। वे उभय गुरु-शिष्य उस नयनाभिराम सकल सुख धाम परि-पूर्ण काम नव श्यामलस्वरूप को निरख कर भावविह्वल हो उठे।

गोपालभट्ट कहने लगे—

गोपीनाथ ! क्या यह विद्युत्-प्रभासिता श्रीराधिका के साथ का बादल का एक कोना है ? अथवा श्रीराधा के भाल पर सुशोभित मृगमद की यह एक श्यामल विन्दु है ? क्या यह श्रीराधा के चरणों में निपतित वह कृष्ण भ्रमर है ? नहीं यह तो बाबा नन्द का खिलौना, माँ यशोदा का ढिटोना और ग्वाल वालों के माथे का एक काला-टोना है। यह सुन गोपीनाथ कहने लगे—

गुरुदेव ! यह आपकी उस भव्य भावना के अजस्र अश्रुकणों से पूरित आपके मानस सरोबर में विकसित नव नील जलजात की एक स्वयं प्रभासित नीलिमा है।

व्रज-वृन्दावन के कण-कण में श्रीगोपालभट्ट के शालग्राम से घन-श्यामलस्वरूप विग्रह का स्वयं प्रकाश हुआ है यह सम्वाद व्याप्त होगया।

भगवद्‌विग्रह का प्रकाश सुनकर श्रीरूप, सनातन, भूगर्भ, लोकनाथ, रघुनाथ,रघुनाथभट्ट,काशीश्वर,जीव आदि प्रमुख गोस्वामीगण एवं जराजर्जरित प्रबोधानन्द विशाल वैष्णव-मण्डली सहित श्रीगोपालभट्ट की उस रास-स्थली भूभाग में उपस्थित हुये। इनके आनन्द के सीमा न रही। गोपालभट्ट की वर्षों की साधना आज पूर्ण हुई। वैष्णव-मण्डली उच्चस्वर से—

दृग सुख लेओ री आली आस पुजाईये ।
सखियन देओ री आली आस मन हुलसाईये ॥

वेष बनाओ री आली निरतत चालिये ।
कुसुम बिखेरो री आली पथ सुगमाईये ॥

गान करने लगी—

[1]आज वे जन-जन के मनचोर, रससागर, गौर नागर अपने में श्रीराधा भाव कान्ति को अंकोर गोपालभट्ट पर कृपाकर नव घनश्यामल किशोर विग्रह स्वरूप में अवतरित हुये हैं वृन्दावन के इस छोर से उस छोर तक यह शोर मच गया।

देखते-देखते अपार जन पारावार रासस्थली की संकतभूमि पर एकत्रित होने लगा विशाल वैष्णववर्ग अपवर्ग की आकांक्षाओं को छोड़कर भाव रस रङ्ग के साथ नृत्य करता हुआ प्रेमानन्दसिन्धु की उत्ताल तरङ्गों में वहने लगा।

सकल रसिकराज समाज अपने साज के साथ समुपस्थित हो अपने वाद्य यंत्रों के मृदु मन्द मधुर स्वरों से रास-स्थली के कण-कणों को मुखरित करने लगा।

वे शत शत सुकुमारी ब्रजनागरी अपने मस्तकों पर दूध दही की गागरी रख गोपालभट्ट के द्वार पर उपस्थित होने लगीं।

[2] १५९९ वैक्रमीय की वैशाखी पूर्णिमा का यह मङ्गल प्रभात

१- राधारमण मूर्त्ति अति मनोहर। भाग्यवान् जनेर से नयन गोचर ॥
अति सुमधुरभंगी विदित भुवने। प्रकट समये महानन्द वृन्दावने ॥
—भक्तिरत्नाकर चतुर्थतरङ्ग

२- तवे कत दिन परे शालग्राम हईते।
आपनि प्रकट हइल लोकेर विदिते ॥
श्रीगोविन्द गोपीनाथ मदनमोहन।
ए तिनेर मुख वक्ष श्रीचरण ॥
तिन प्रभु एकत्र दर्शन एक ठांई।
एछे परिपाटी पूर्वे चिन्तिल गोसांई ॥ —भक्तिरत्नाकर चतुर्थतरङ्ग

श्रीगोपालभट्टगोस्वामी द्वारा चिरचिन्तित एकही नवश्यामल विग्रह में श्री-गोविन्द की मुखकान्ति, श्रीगोपीनाथ की वक्षः शोभा तथा श्रीमदनमोहन की रुचिर छटा का सन्दर्शन है यह सन्देश लेकर आया है।

शालग्राम से स्वयं अवतरित स्वरूप के सम्वाद को सुनकर गोपालभट्ट के [1]दो गुजरात-निवासी शिष्य श्रीशम्भूराम और मकरन्द जो उस समय मथुरा में रहते थे, वृन्दावन आये और उन्होंने श्रीरूपगोस्वामी के निर्देश से अभिषेक–सम्बन्धित वस्तु, सिंहासन, वस्त्र, आभूषण, तिल, गुड़ आदि भोग सामिग्री की व्यवस्था की।

यद्यपि अभिषेक सम्बन्धित विविध विधाओं का श्रीगोपालभट्टगोस्वामी द्वारा 'भगवद्भक्ति-विलास' के श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी प्रकरण में पूर्णत: प्रतिपादन

पीठ पर रेखा दोऊ अंसन में चक्र,
सौले अंगुर को वपु श्याम अनुपम तन है।
गोविन्ददेव को सौ मुख, गोपीनाथ को सौ हीय,
मदनगोपाल केसे राजत चरन हैं।
बैशाख मास पूरनमासी चन्द्रवार पुनि,
पन्द्रह सौ निन्यानवे सम्वत वरन है।
विशाखा नक्षत्र, सानुकूलग्रह निशि शेष,
शालिगराम जब भये राधिकारमन हैं।
—श्रीगोपालभट्ट-चरित्र—गोपालकवि—१९०० वैक्रमीय

१- आर दुई शिष्य भट्टेर बड़ प्रेमराशि।
शम्भूराम मकरन्द गुजरातवासी ॥ —प्रेमविलास १८

जनश्रुति के अनुसार गुजरात के भृगुकच्छ देश निवासी भार्गव तथा जयपुर का टाटीवाला परिवार इन दोनों महानुभावो के ही वंशज हैं और वे चतुर्दशपीढ़ियों से श्रीगोपालभट्टगोस्वामीजी के शिष्यानुक्रम श्रीराधारमणीय वंश परम्पराओं में दीक्षित होते आरहे हैं।

इन्हीं दोनों महानुभावों द्वारा तिल और शर्करा की श्रीजी के दीर्घायुष्य कामना से भोग व्यवस्था की गई थी। इस तिल, शर्करा भोगा-र्पण परम्परा का पालन आज भी उसीप्रकार श्रीजी के भोग में अभि-षेक के पश्चात् यथावत् किया जाता है।

किया गया है तथापि श्रीसनातन, श्रीगोपालभट्टगोस्वामी आदि विद्वानों के निर्देश से शास्त्रीय एवं लौकिक परम्पराओं के प्रचलन को दृष्टिकोण में रखते हुये श्रीरूपगोस्वामी द्वारा [१] 'श्रीकृष्ण-जन्मतिथि-विधि' नामक एक सर्वजन-समादृत विधा का विशद सङ्कलन प्रस्तुत किया गया।

उस समय तक वृन्दावन में श्रीराधा के साथ श्रीकृष्ण विग्रह की प्रतिष्ठापना नहीं हुई थी, इसीलिये केवल श्रीराधारमण विग्रह की ही इसके मङ्गलात्मक श्लोक में [२]'वृन्दाटवीनाथौ' के रूप में अभिवन्दना की गई है।[३] इसके साथ ही श्रीकृष्णजन्माष्टमी के दिन प्रातः अभिषेक का विधान भी श्रीराधारमण विग्रह के अतिरिक्त कहीं अन्यत्र नहीं था इसका भी पूर्णतः प्रतिपादन इसमें किया गया है।

[४] प्रतिवर्ष श्रीराधारमण विग्रह की महाभिषेक आयोजना जिसे कि [५] 'सिंहासन यात्रा' कहा जाता था विशेष समारोह के साथ सम्पन्न होती थी एवं इस आयोजना में [६] श्रीगोपालभट्टगोस्वामी विशेषरूपेण व्यस्त रहते थे।

---

१. Aufrecht Leipzig catalogue (No. 621) में 'श्रीकृष्ण-जन्मतिथि-विधि' का समुल्लेख है।

२. नत्व वृन्दाटवीनाथौ प्रभूणां विनिदेशतः।
लिख्यते शास्त्रलोकाभ्यां कृष्ण-जन्मतिथेर्विधिः।

३. अथ प्रातः सतां वृन्दैः कृष्ण-जन्माष्टमी दिने।
प्रतिवर्ष स्थानीय श्रीराधारमण मन्दिर में, वैशाखी पूर्णिमा एवं जन्माष्टमी के दिन श्रीराधारमणविग्रह का प्रातःकाल महाभिषेक किया जाता है।

४. महामहोत्सव सिंहासन विजयेते।
भट्ट प्रेमाधीन प्रभु विख्यात जगते॥
ए मत राधारमण प्रकट सुन्दर। —भक्तिरत्नाकर चतुर्थतरङ्ग

५. वैशाखेर पूर्णिमा दिवस शुभ तिथि।
राधारमणेर सिंहासन यात्रा तथि॥
महामहोत्सव भट्ट गोसांई वासाय। —भक्तिरत्नाकर नवमतरङ्ग

६. राधारमणेर सिंहासन यात्रा हन।
ए हेतु हइया व्यस्त करे आयोजन॥ —भक्तिरत्नाकर चतुर्थतरङ्ग

श्रीगोपालभट्टगोस्वामी द्वारा १५९९ वैक्रमीय वर्ष की बैशाखी पूर्णिमा के प्रभात में श्रीराधारमण विग्रह का महाभिषेक विशेष आयोजनाओं के साथ सम्पन्न किया गया था,इसीका आनुपूर्विक वर्णन श्रीगुणमञ्जरीदासगोस्वामी ने इस प्रकार पद्यात्मक रूप में किया है—

राग सारंग

पूरण बैसाखी सखी अभिलाषी राधारमण मिलाई।
श्रीवृन्दावन राज सुहावन करें अभिषेक महाई।।
मणिमय खंभा रोपें रंभा वंदनवार बंधाई।
शुभ चंद्रातप रोके आतप ध्वज पताक फहराई।।
चौक समुक्ता फल उपयुक्ता कनक कुम्भ थिरकाई।
रचौ सरोवर रुचिर मनोहर स्नानवेदि ता मांई।।
दोऊ जन भेटे सुखसों बैठे नैनन में बतराई।
अभरन मोती लालन धोती पटका पाग सुहाई।।
तिय सुकुमारी झीनी सारी भूषण रूप सदांई।
कोई लिये छत्र कोई फलपत्र कोई सु चमर डुलाई।।
कोई मोरछल कोई ले उत्पल कोई घंटान बजाई।
कोई लै पंखी करत निसंखी कोई दरपण दरसाई।।
कोई झालरी कोई करतालरी सुर घड़ियाल मिलाई।
कोई मिरदंग कोई मुहचंग सारंगी लहराई।।
कोई सखी बीणा परम प्रवीणा गामें सुरन उठाई।
कोई नाचत कोई पुस्तक बांचत वेदध्वनि नभ छाई।।
कोई रसमर्दन कोई उद्वर्त्तन धीरे अंग लगाई।
कोई जल डारे कोई निरवारे पंचामृत अवगाई।।
कोई सर्वौषधि कोई महौषधि तिल तिल नेह बढ़ाई।
पुष्प फल रत्न गंधसम्पन्न सुघट सहस्र झर लाई।।
आये स्नान अंग पोंछे पुनि सिंहासन बैठाई।
पीरो जामा सुभग पजामा दुपटा पाग झुकाई।।

मोरमुकट सिर किंकिणी कटिवर कुण्डल हार धराई।
बेंदी वेसर तिलक सुकेसर नाक मुक्त छवि छाई ।।
दामन प्यारी लगी किनारी मनभामन भरमाई।
सुन्दर सारी लगी जरतारी कंचुकि छबि दरसाई ।।
वेणी जूड़ो कर में चूड़ो चन्द्रिका सिर चहचाई।
नथ में लटकन प्रिय मन अटकन झूमक करन भ्रमाई।।
कर पद मँहदी चिबुक सुबेंदी प्रिय नैना उरझाई।
बिछिया नूपुर अति सुमधुर सुर जावक अति सुथराई।।
सिरपै दूर्वा धरी है अपूर्वा अंजन दृगन लगाई।
करि बहु रक्षा सखिजन दक्षा राई लवन उड़ाई ।।

फूलनमाला धूप रसाला मणिन दीप दरसाई।
भोजन विविध सखीजन अरपे दोऊ जन रुचिसों पाई।।
श्रीयमुना जल प्यावत निर्मल बीरी देत बनाई।
प्रान वारती करत आरती तन मन नैंन सिराई ।।
करत हैं दरसन पलकन परसन वरस कोटि पल जाई।
क्षण क्षण में रुचि बाढ़त है सुचि अनुपम रूप निकाई।।
'श्रीगुणमञ्जरी' वेगि कृपा करि लीनी निकट बुलाई।
ललितकिशोरी तृषित चकोरी निरखत दृगन अँघाई।।

श्रीगोपालभट्टगोस्वामी के प्रेम से आकर्षित इस नव घनश्यामल विग्रह की रूपमाधुरी का सन्दर्शन कर ब्रज वृन्दावन का जन-जन विमुग्ध हो उठा।

वे श्रीगोपालभट्ट के सौभाग्य की सराहना करते हुये आनन्दरस सागर की उत्ताल तरलित तरङ्गों में डूबने और थिरकने लगे। आजतक एसा चमत्कृत दृश्य विश्वमानव की आँखों के सामने नहीं आया था यह देख देख-कर वे आश्चर्यचकित हो रहे थे।

अभिषेक विधि समापना के पश्चात् श्रीरूप, श्रीसनातन आदि विज्ञ गोस्वामीजनों द्वारा रासस्थली की एकमात्र आराधिका श्रीराधिका की

नाथ ! रमण ! प्रेष्ठ !
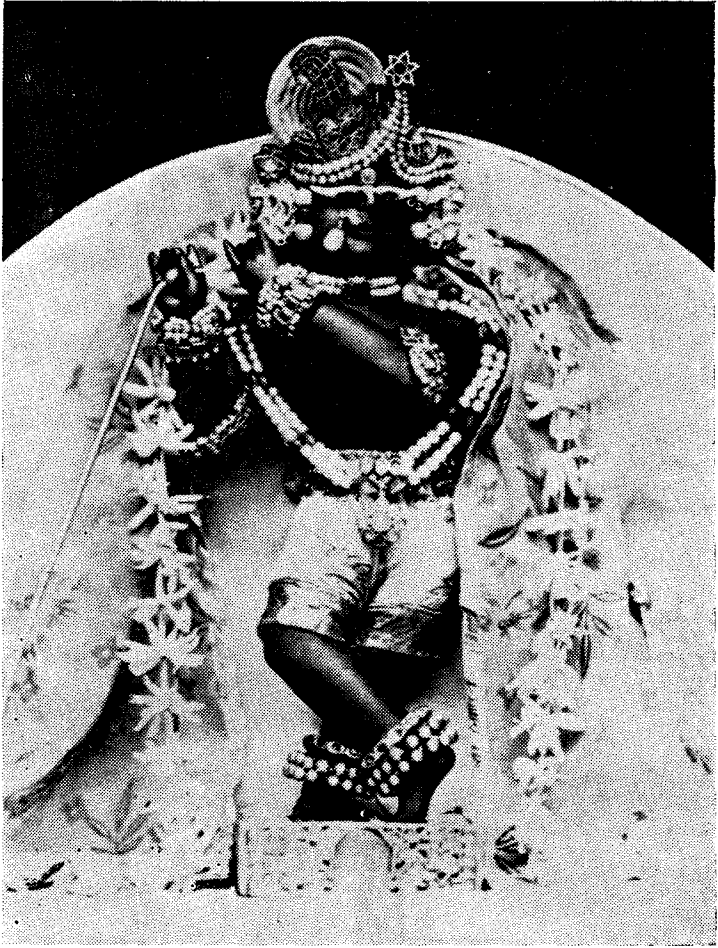
स्वयं प्रकटित विग्रह श्रीराधारमणदेव

शालग्रामशिलोत्थमूर्त्तिमहिमा कोऽप्येष लोकोत्तरः।

—आगम

श्रीमद्गोपालभट्टप्रभुप्रकटपरप्रेमपूर्णावतार-
लीलालालित्यनित्योज्वलरसविलसद्विश्वसम्व्यक्तकीर्त्तिम्।

वृन्दारण्यस्थलान्तर्गतव्रजवनितावर्गमार्गाङ्गपूर्त्ति,
वन्दे तं श्रीलराधारमणमभिनवश्यामलावण्यमूर्त्तिम्॥

—गौरकृष्ण

स्वरूप समुज्वल उदात्त भावना के शास्त्रगत पक्ष को दृष्टिकोण में रखते हुये श्रीगोपालभट्ट के इस स्वयं प्रकटित नव घन श्यामल विग्रह का नाम—

राधारमण

रखा गया।

गोपालभट्टेर प्राणधन।
गौर भये राधारमण।।

उच्चस्वर से यह गान करते हुये भावुक रसिकजन भावविभोरित हो नाचने लगे। भक्तजनों की मूर्त्तमती कामनायें आज—

'तत्त्ववादियों ने जिस [1]आत्मस्वरूपा राधा के साथ आत्मारामरूप श्रीकृष्ण के रमण का निर्देशन किया है उस रास रसिक शेखरवर 'श्रीराधा-रमण' की इस रस रागमयी रासस्थली के कोमल वन प्रान्त भाग पर नित्य नव एकान्त कान्त निकुञ्ज लीलायें होती रहें। दुःख की दारुण निशा के अवसान के साथ वियोग की कोरी कल्पनाओं के स्थान पर संयोग के समावेश स्वरूप एक ऐसे सौभाग्य सूर्य का उदय हो जिसकी आभा से रसिकजनों के कोटि-कोटि हृत्कमलमुकुल अपने आप खिल उठें एवं जिसके अमन्द मकरन्द-विन्दु से वृन्दावन का कण-कण आप्लावित होता रहे, इस आशा के साथ पूर्ण हुयी।

श्रीराधारमण के आविर्भाव की इस मङ्गलमयी मधुर वेला में श्री-गोपालभट्ट का यह अवदान स्वरूप आशीर्वाद इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों पर सदा अंकित होकर उन विस्तृत भक्तिभावनाओं को प्रतिपल अन्दोलित करता रहेगा। इस सकल सुखधाम नयनाभिराम—

'राधारमण'

नाम को सुन कर सहस्रों कण्ठों के स्वर एक साथ—

१- आत्मा तु राधिका प्रोक्ता तयैव रमणादसौ।
आत्माराम इति प्रोक्तः मुनिभिस्तत्त्ववादिभिः।। स्कान्द-भागवत माहात्म्य

लोकालोककृतिः सतामुपकृतिः विद्याविभाविष्कृतिः,
सत्सिद्धान्तवशीकृतिप्रतिकृतिः संसारिणां निष्कृतिः ।
चञ्चच्चारुचमत्कृतिस्त्वधिकृतिः काञ्चीक्वणत्झंकृतिः,
श्रीराधारमणाकृतिः विजयते वृन्दावनालंकृतिः ॥

के रूप में बोल उठे ।

इस मङ्गलमय अवसर पर समस्त बृन्दावन के वैष्णववृन्द परमानन्द निमग्न हो श्रीगोपालभट्टगोस्वामी से श्रीगुणमञ्जरीदासगोस्वामी के शब्दों में बार-बार यह याचना करते हुये—

श्रीभट्ट गुसांई दीजे मोहि बधाई ।
प्रकटे राधारमण मनोहर रसिकन के सुखदाई ॥
युगलचरण अनुराग निरन्तर सेवा करन अघाई ।
श्रीवृन्दावन वास रास रस गुणमञ्जरी वलिजाई ॥

बिदा हुये ।
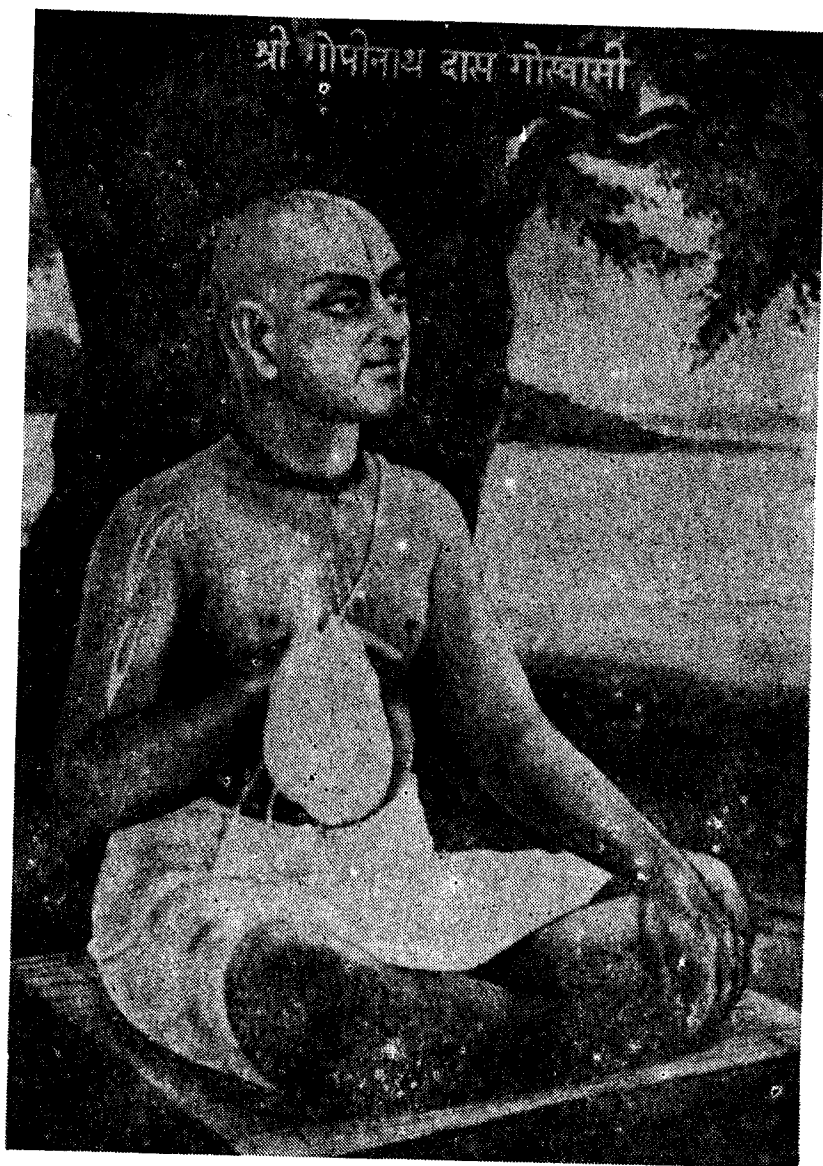
श्रीगोपीनाथदासगोस्वामी

श्रीगोपीनाथदास गोस्वामी

पन्द्रहवीं वैक्रमीय वर्ष के प्रारम्भिक काल में शाण्डिल्य-गोत्रीय शुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनी शाखानुयायी असित देवल प्रवर गौड़ ब्राह्मण-कुलोद्भव सहारनपुर जनपद के वारोठ ग्राम निवासी श्रीपण्डित विद्याधर शर्मा संस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित थे। सहस्रों छात्र आपके श्रीचरणोपान्त में शिक्षण प्राप्त कर दिग् दिगन्तों में आपकी यशो कौमुदी प्रभासित कर रहे थे।

आपके एकमात्र पुत्र श्रीपण्डित माधवप्रसाद शर्मा भी अपने पिता के अनुरूप पण्डित तथा प्रख्यात चिकित्सक थे। अपनी वाग्मिता तथा चिकित्सा प्रतिभा के कारण इन्हें राजकीय सम्मान से अलंकृत किया गया था। समयानुसार यह परिवार वारोठ से देववन आकर रहने लगा। शनैः शनैः श्रीमाधवप्रसाद इसके जागीरदार बन गये। इनकी न्याय प्रियता, सत्यपरायणता तथा तेजस्विता से प्रभावित होकर तात्कालिक शासन द्वारा इन्हें समस्त राजस्व अधिग्रहण का भार दिया गया।

इन्होंने अपनी चिकित्सा प्रतिभा के बल पर अप्रतिम धनोपार्जन किया। धन की दान, भोग और नाश तीन गतियाँ होती हैं अतः दानरूप में इन्होंने अनेक संस्कृत पाठशाला, चिकित्सालय धर्मशाला एव सार्वजनिक कूप निर्माण के साथ पथिकों की विश्रान्ति के लिये ग्राम पथ पर सघन फलवृक्षों की अरोपणा जैसे जन हितकारी कार्य किये। इनके इन उन्नत कार्यों के फलस्वरूप यह स्थान वदरिकाश्रम पथ यात्रीगणों का पड़ाव बन गया।

एकदिन श्रीमाधवप्रसाद की पत्नी अपने पारिवारिक विवाह में सम्मिलित होने के लिये पित्रालय गई थीं उसे लिवाने श्रीविद्याधर इनके पित्रालय पहुँचे एवं वहाँ से शुभ मुहूर्त्त में पुत्रवधू को विदा करा वे देववन की ओर प्रस्थानित हुये। यह आषाढ मास का अन्तिम पक्ष था। वर्षा की रिमझिम बूँदें, घनगर्जना, केकी, कीर, कोकिल कलापों के कलालापों से शस्य श्यामल वसुन्धरा का कान्त बन प्रान्त भाग मुखरित हो रहा था। स्थान-स्थान पर वकुल-कुल, कदम्ब-कादम्बक तथा जल परिपूरित सरोवरों में विकसित सरसी-

रूह समूह की सुरभित गन्ध मदान्ध मिलिन्द-वृन्द अपने सतत सिञ्जन स्वर से दिग्दिगन्तों को गुञ्जित कर रहे थे। तृणकुलों की संकुलित हरीतिमा ने मार्ग को अवरुद्ध कर दिया था। पण्डित विद्याधर अपने अनुचरों के साथ पृथक्-पृथक् रथ पर बैठकर चले जारहे थे। यह आषाढ शुक्ला तृतीया की मध्याह्न वेला थी। माध्याह्निक विश्राम के लिये मार्ग के एक सुरम्य स्थान पर डेरा डाला गया। पुत्रवधू के विश्राम के लिये एक पृथक् पर्दायुक्त डेरा की व्यवस्था की गई,रथ के बैलों को दाना चारा देने के लिये रथवानों द्वारा अपने-अपने बैल खोल दिये गये। रथवान भी अपने साथ लाये हुये तोसा पर भरोसा कर स्वच्छन्दरूप से भोजन में लग गये। सहसा पण्डित विद्याधर की पुत्रवधू को प्यास लगी। वह समीपस्थ सरोवर पर दौड़कर पानी पीने चली गई। पानी पीते ही उनकी प्रसव वेदना बढ़ गई और उन्होंने उसी स्थान पर एक सुन्दर बालक को जन्म दिया। लज्जा और संकोचवश उस नवजात बालक को पार्श्वस्थ एक सिहोरे के वृक्ष के नीचे रखकर बिना किसी से कुछ कहे सुने वे अपने डेरा पर चली आई।

यह वह समय था जब असूर्यम्पश्या भारतीय साध्वी ललनायें परदा प्रथा के कठोर बन्धनों से जकड़ी हुई थीं। अपने गुरुजनों के सामने आकर कुछ कहने का तो प्रश्न ही नहीं था।

विश्राम के पश्चात् रथ पुनः देववन की ओर चल पड़े। लज्जा की प्रतिमूर्त्ति के रूप में सुकड़ी हुई पुत्रवधू को पुनः एक पृथक् रथ में बिठाया गया। क्षुद्र घण्टियों के मुखरित स्वरों से रथ सन्ध्या के पूर्वभाग में देववन पहुँचे। वधू की अगवानी के लिये समस्त परिवार द्वार पर आगया। वधू को पकड़ कर उतारा गया, वधू ने झुककर जैसे ही अपनी सास की पदवन्दना की वैसे ही उसका उतरा हुआ पीला मुख दिखलाई दिया। सहसा सास चोंक उठी, उसने चिन्तित और व्यग्रता से गर्भ सम्बन्ध में जिज्ञासा की। वधू को अपनी सास से समस्त वृत्तान्त कहने में विशेष लज्जा का अनुभव हुआ, बहुत कहने पर पुत्रवधू ने बालक का जन्म तथा उसे सरोवर पर छोड़ आना स्वीकार किया। घर में कोहराम मच गया। विद्याधर को सब वृत्तान्त सुनाया गया, वे सब चिन्तित और व्यथित हो उठे, तुरन्त पुत्रवधू को अपने साथ रथ पर बिठाकर विद्याधर की पत्नी बालक को खोजने चल पड़ीं, फिर वही रथ एवं अनुचरों का काफिला सरोवर की ओर चलने लगा। रथवानों ने बड़ी शीघ्रता से अपने रथों को सरोवर के समीप पहुँचा दिया। मशालों के साये में विद्याधर की पत्नी पुत्रवधू के बतलाये हुये निर्दिष्ट स्थान पर

पहुँची। वहाँ जाकर उन सबों ने एक अद्भुत दृश्य देखा। सिहोरे के वृक्ष के नीचे घास पर एक गौर वर्ण बालक सो रहा है, वर्षा की बूँदों से बचाने के लिये एक उल्लू पक्षी अपने विशाल पंखों से बालक को ढक कर बैठा हुआ है, एक श्यामा गौ झुक कर उस नवजात बालक को अपने स्तनों से दूध पिलाने के साथ अपनी लम्बी पूँछ से चमर सा पंखा कर मच्छरों को भगा रही है। समीप ही एक भयानक काला साँप अपने विशाल फनों को फैलाकर बालक की चौकसी कर रहा है।

वे इस दृश्य को देख चमत्कृत हो उठे। उनका मस्तक श्रद्धा से झुक गया। ब्राह्मण दम्पति ने करवद्ध हो उनका अभिवादन और गुणगान किया। उल्लू उड़कर चला गया, काला सांप तुरन्त बिल में चला गया और श्यामा गौ देखते देखते अदृश्य होगई। विद्याधर की पत्नी ने तुरन्त जाकर उस नवजात बालक को गोद में उठा लिया। बालक अङ्क स्पर्श पाकर कुलबुलाने लगा। विद्याधर की वृद्धा पत्नी के स्तनों से स्नेह की दुग्धधारा बहने लगी। वे भाव विह्वल हो बालक का मुख चुम्बन कर उसे दुलराती हुई अपने स्तनों का दूध पिलाने लगी। यह उनका मूल से अधिक व्याज का प्रेम था। रथ फिर अपने देववन मार्ग पर चल पड़े। रथवान आनन्दमग्न हो गाना गाते हुये आगे बढे जारहे थे। पण्डित विद्याधर का द्वार आ पहुँचा। मङ्गल गीतिकाओं ने नवजात बालक के जन्म की सूचना दी। स्वर्ण थाल में दीपक सजोये गये, आम्रपल्लवों से सुसज्जित रजत कलशों को अपने हाथों में लिये सौभाग्यवती पारिवारिक ललनायें बधाईयाँ गाती हुई द्वार पर खड़ी हो गईं। मणि मुक्ताओं के चौक पर पट्टा रख कर बालक के साथ बधू को बिठा कर प्रज्वलित दीपों से आरता उतारा गया। दोनों ओर शन्ति पाठ की भांति जलधारायें गेरी गईं। स्वर्ण मुद्राओं से न्योछावर कर नेगियों को उपहार दिये गये।

शत शत गौदान के पश्चात् गृह द्वार पर साथिया(स्वस्तिक)की रचना की गई। गोमय, गौमूत्र तथा गौपुच्छ से बालक की रक्षा के लिये राई लवण से दृष्टि उतारी गई। कुलदेव की आराधना के साथ रात्रि जागरण कर शुभ मुहूर्त्त में बालक का नाम गोपीनाथ रखा गया।

आज भी श्रीराधारमणीय गोस्वामी परिवार में यह कुल-प्रथा प्रचलित है कि कोई भी सिहोरे की लकड़ी को न काटता, न तोड़ता और न जलाता है। उल्लू पक्षी का स्वर सदा अमङ्गल फल दायक होने पर भी सदा मङ्गल-

कारक रूप में माना गया है। आज तक कभी इस विस्तृत वंशपरम्परा के व्यक्ति को किसी साँप ने नहीं काटा। गौ के स्तनदान के ही कारण इन्हें गोस्वामी (वाणी के अधिकारी) पदवी प्राप्त हुई यह इसकी चिर-कालिक मान्यता है इसीलिये गौ की अपने परिवार के मूल पुरुष पर हुई इस अनुकम्पा के आधार पर नित्य अर्चना, आराधना के साथ गौ ग्रास का दैनिक प्रतिविधान रखते हैं एवं अपनी घोर विपत्तियों के समय पञ्च-गव्य सेवन तथा अर्चना से परित्राण प्राप्त करते हैं।

बालक परिवार के प्रत्येक जन का प्रचुर प्रेम प्राप्त कर प्रतिदिन पलने और बढ़ने लगा। यथासमय मुण्डन, कर्णवेध संस्कार के पश्चात् बालक की शिक्षण व्यवस्था की गई। कुशाग्रबुद्धि के बालक को जो कुछ पढाया जाता वह उसे शीघ्र ग्रहण करने लगा। अष्टमवर्षीय बालक का उपनयन संस्कार किया गया और 'पिता भवति मन्त्रदः' पिता ही मन्त्र दाता होता है, इस सिद्धांत के अनुसार श्रीमाधवप्रसाद ने अपने पुत्र गोपीनाथ को गायत्री का उपदेश दिया।

अपने परिवार के अनुरूप श्रीमाधवप्रसाद द्वारा गोपीनाथ की भली प्रकार से शिक्षण व्यवस्था की गई। वे कुछ ही वर्षों में अपनी प्रखर प्रतिभा के बल पर संस्कृत साहित्य, दर्शन तथा चिकित्सा-विज्ञान में पारङ्गत होगये। उनकी दिग्दिगन्त-व्यापिनी प्रतिभा ने इन्हें प्रतिष्ठा के सर्वोच्च सोपान पर समासीन कर दिया।

एकदिन गोपीनाथ ने अश्व पर आरुढ़ होकर अपनी आम्रवाटिका में एक तेजोद्दीप्त प्रभावलय, सतत हरिनाम गानरत व्यक्ति को देखा, वे उनकी तेजस्विता से प्रभावित हो चुम्बक की भांति उधर खिचने लगे।

वे असमोद्धर्व तेजस्वी व्यक्ति वृन्दावन से बदरिकाश्रम मार्ग होते हुये नयपाल देशस्थ गण्डकी नदी के उद्गम स्थान जाने वाले एक विरक्त साधक श्रीगोपालभट्टगोस्वामी थे जिन्हें इनके पिता ने एक सम्माननीय अतिथि के रूप में अपने यहाँ समाश्रय दिया था।

श्रीगोपीनाथ श्रीगोपालभट्ट के श्रीचरणों में गिर पड़े। श्रीगोपालभट्ट ने गोपीनाथ को उठाकर हृदय से लगाया। अब गोपीनाथ की अन्तर्मुखी मनो-वृत्ति सांसारिक कार्यों से हटकर श्रीगोपालभट्ट के श्रीचरणों की ओर उन्मुख हुई। गोपीनाथ की श्रीगोपालभट्ट के श्रीचरणों में ऐकान्तिक निष्ठा देख श्रीमाधवप्रसाद द्वारा श्रीगोपालभट्ट की समस्त सेवा सुश्रुषा का भार गोपीनाथ

को सोंपा गया। श्रीगोपालभट्टगोस्वामी गोपीनाथ की अपने प्रति ऐकान्तिक ध्येय निष्ठा भावना देख परम प्रसन्न हुये और उन्हें गौडीय वैष्णव सिद्धान्तों की तात्विक शिक्षा देने लगे।

गोपीनाथ इस अप्रतिम विद्वान् का समाश्रय प्राप्त कर धन्य हो उठे। अन्त में १५९१ वैक्रमीय वर्ष की शुभ वेला में पारिवारिकजनों के अनुरोध से श्रीगोपालभट्टगोस्वामी ने गोपीनाथ को अष्टादशाक्षर गोपालमन्त्र की दीक्षा दी। कुछ दिनों और रहकर गोपालभट्ट गण्डकी नदी के उद्गम स्थान को ओर प्रस्थानित हुये।

श्रीगोपालभट्टगोस्वामी के जाने के पश्चात् गोपीनाथ की भावोन्माद दशा प्रतिपल बढ़ चली, वे अब वृन्दावन जाने के लिये व्यग्र हो उठे। सदा वृन्दावन का स्मरण कर उनकी आँखों से अजस्र आँसूओं की बूँदें बहने लगी। उन्हें बिना वृन्दावन के दिन रेन चेन नहीं था।

हा गौरसुन्दर ! मुझे वेगि वृन्दावन की रूपमाधुरी का दर्शन दे कृतार्थ करो, यह कह कर उनके हृदय का आवेग उच्छलित होने लगा। निरन्तर व्रज वृन्दावन के स्मरण से उनके हृदय में वैराग्य की तीव्रतम भावना उत्पन्न हो चली। अब वे मायावद्ध जीवों से मुंह मोड़ कर साधु सज्जनों के साथ रहने लगे।

पारिवारिकजन उनकी इस भावोन्माद दशा देख चिन्तित हो उठे। उन्होंने इन्हें विशेषरूप से विवाह-बन्धन में बाँधना चाहा पर गोपीनाथ ने इसका दृढ़ता से प्रत्याख्यान किया। क्या कोई कभी किसी स्थिर-निश्चयव्रती को बाँध पाया है ?

गोपीनाथ कहीं वृन्दावन भाग कर न चले जांय इसलिये इनके पिता ने समीपस्थ देवीमण्डप में गोपीनाथ के रहने की व्यवस्था के साथ इनकी समुचित देख रेख के लिये दस परिजनों की नियुक्ति की जो एक क्षण के लिये इनका साथ नहीं छोड़ते थे।

गोपीनाथ की वृन्दावन जाने की उत्कण्ठा प्रतिपल बढ़ती जारही थी पर वे अवसर नहीं पा रहे थे। भगवदिच्छा से एक रात उन्हें यह अवसर मिलही गया। उनकी देखभाल करने वाले अनुचर गहरी नींद में सो गये,

यह देख कर गोपीनाथ मोरी के मार्ग से भाग कर गहन वनों में होते हुये चार दिन रात चलकर वृन्दावन पहुँचे। इधर प्रातःकाल हुआ,सहसा पहरेदारों की नींद टूटी पर वहाँ गोपीनाथ न थे देवी मण्डप के चारों ओर देखा गया परन्तु उनका पता न लगा वे व्यग्र हो माधवप्रसाद के पास गये और उन्हें इसकी सूचना दी, परिवार में हाहाकार मच गया। चारो ओर गोपीनाथ को ढूंड़ने के लिये साँडिया(सन्देश-वाहक) भेजे गये पर वे गोपीनाथ का पता न लगा पाये अन्त में पारिवारिकजन मन मार कर रह गये।

गोपीनाथ वृन्दावन आकर चारों ओर घूमते रहे पर इन्हें अपने गुरुदेव के दर्शन न हुये अन्त में वे एकदिन रोते हुये यमुना नदी के किनारे केशी-तीर्थ के समीप रासस्थली, पहुँचे वहाँ उन्हें एक गौरवर्ण, पुलक अश्रुपात से युक्त, श्रीकृष्णभावना रस धारा में सरावोर, वट वृक्ष वेदिका पर विराजमान कन्था कौपीनधारी, सतत हरिनामरत, तेजोद्दीप्त प्रभावलय का दर्शन हुआ। यह तो वे ही मेरे आश्रयदाता गुरुदेव हैं जिनके श्रीचरणों में मैं अपना सब कुछ समर्पण कर चुका हूँ।

गोपीनाथ बिना विलम्ब किये बार-बार प्रभो ! गुरुदेव ! कहकर श्रीगोपालभट्ट के श्रीचरणों में गिर पड़े। श्रीगोपालभट्ट ने अपने परम प्रिय शिष्य गोपीनाथ को उठा कर हृदय से लगाया और समाश्रय के रूप में अपने समीप रखा।

गोपीनाथ अपने गुरुदेव के श्रीचरणोपान्त में रह कर उनकी ऐकान्तिक निष्ठ भावना से सेवा सुश्रुषा करने लगे।

गोपालभट्ट ने गोपीनाथ को वृन्दावनबास की रीति नीति प्रतीति के साथ भक्तिरस ग्रन्थों का अनुशीलन एवं नाट्य गीत सङ्गीत पक्ष की शिक्षा दी। वैष्णबशास्त्रों में गोपीनाथ की विशेष अभिरुचि देखकर श्रीगोपालभट्टगोस्वामी ने इन्हें अपने निर्णीत निर्मित ग्रन्थों के विलेखन और संशोधन की भी आज्ञा दी। श्रीरूप सनातन आदि गोस्वामीगण भी इनकी प्रखर प्रतिभा से प्रभावित हुये। इन्होंने बड़ी लगन से अपने श्रीगुरुदेव के सान्निध्य में रहकर 'भगवद्भक्तिविलास' की दिग्दर्शनी टीका तथा [1]'संस्कार दीपिका' के अवशिष्टांश की पूर्त्ति की।

१- तदन्तः पातिता येयं नाम्ना संस्कारदीपिका।
तन्यते गोपीभृत्येन साधूनामर्थयाञ्चया॥

व्रज भाषा पर भी आपका सामञ्जस्य पूर्ण अधिकार था, आपके द्वारा विरचित श्रीराधारमणदेव की संध्या आरती का पद अत्यन्त भावपूर्ण रचना का सुमधुर सरस संगीत स्वर है।

शालग्राम से स्वयं राधारमण के प्रकट होने के पश्चात् श्रीजी की सेवा का समस्त भार श्रीगोपीनाथ पर था वे एकान्तिक निष्ठ भावना से सेवा करते और समय मिलने पर ग्रन्थों का संशोधन।

गोपालभट्टगोस्वामी अब वृद्ध हो चले थे उन्होंने मन में विचारा कि विरक्तजनों से श्रीजी की सेवा न हो सकेगी इसका भार तो किसी सद्‌ग्रहस्थी को दिया जायगा तब ही वंश परम्परा क्रम से इनका लाड़ लड़ाया जाएगा।

इधर श्रीराधारमणदेव के आविर्भाव के पश्चात् कुटीर प्रतिष्ठापना के साथ प्रभु की सेवा निमित्त प्राप्त वस्त्र, अलङ्कार आदि अनेक वैभवपूर्ण सम्पतियां संग्रहीत होने लगीं। उनका रख रखाव किस प्रकार हो ? जब ठाकुर विराजमान हैं तो भोग राग परम्परा का पालन कुछ न कुछ तो होना ही चाहिये। कल तक तो व्रजवासीजनों के रूखे सूखे रोटियों के टुकड़ों से अपना काम चल जाता था पर अब ठाकुर के लिये और कुछ नहीं तो सूखा आटा चाहिये ही।

अभी उसी दिन श्रीजी ने स्वप्न में कहा था कि—सूखी रोटी गले में अटकती है, तनिक नमक ही मिला दिया करो। माखन, मिश्री सदा खाता आया हूँ और कुछ नहीं तो छठे छमाहे गुड़ की एक डेली ही भोग में रख दिया करो। बिना घी.तैल, रुई के सान्ध्य प्रदीप किस प्रकार जलाया जाय ? किन-किन वस्तुओं के लिये किस-किस से कहा जाय। फिर विरक्त वैष्णवजन की सम्पत्ति के अधिकार पर उनके शिष्यों में पारस्परिक विवाद सदा से होता चला आया है। भविष्य में हमारे प्राणधन श्रीराधारमण की सेवा किस प्रकार चलेगी ? आदि अनेक समस्यायें गोपालभट्ट के सामने थी इन सबों का समाधान किस प्रकार किया जाय ?

यह चिन्ता गोपालभट्ट को उत्पीड़ित कर रही थी। इसी चिन्ता में एक दिन आधीरात बीतने के बाद गोपालभट्ट की नींद उचट गई उन्होंने गोपीनाथ को जगाया और उनसे अपनी चिन्ता के समाधान का उपाय पूँछा। गोपीनाथ भी कुछ समझ नहीं पारहे थे। बहुत कुछ विचार विमर्श किया गया अन्त में

गोपालभट्ट ने गोपीनाथ से कहा कि—श्रीजी की सेवा परम्परा का सुचारू रूप से सञ्चालन सद्ग्रहस्थ परम्परा से ही सर्वथा सम्भव है। तुम्हारी अभी तरुण अवस्था है मुझे पूर्ण विश्वास है कि एकमात्र तुम ही श्रीजी की सेवा परम्परा का सुचारुरूप से संचालन कर सकोगे, अतः तुम्हारा विवाह सम्पादन ही इसका समीचीन समाधान है।

गोपीनाथ ने गुरु के आदेश को सुना वे तडिदाहत व्यक्ति की भांति अपने गुरुदेव के श्रीचरणों में गिरकर रोते हुये कहने लगे—प्रभो ! यह आप क्या आज्ञा दे रहे हैं ? मैंने अपना सब कुछ आपके श्रीचरणों में समर्पित कर विरक्त वैष्णव वेषाश्रयता ग्रहण की है क्या मैं पुनः मायावद्ध जीव की भाँति 'वान्ताशी' अर्थात् वमन का खाने वाला बनूँ ?

जब सन्यासी के लिये स्त्री के मुख दर्शन की कल्पना व्याघ्र के मुख के समान भयङ्कयर मानी गया है, तब उसको'आकारादपि भेतव्यम्' देखना ही भय का कारण बन जाता है। जब 'न स्पृशेद्दारवीमपि' लकड़ी से बनी हुई स्त्री का भी स्पर्श विरक्तजनों के लिये सर्वथा निषिद्ध है तब मैं आपका चरणाश्रित बाबाजी बन कर वा बाजी अर्थात् घोड़े की भाँति अपने में शक्ति सञ्चार के लिये क्या वाजीकरण औषधियों का सेवन करूँ? भग तजी का रूप धारण कर ढोंगी भगतजी बनूँ ! कृपासिन्धो ! आपही बताइये क्या मैं अब 'मुण्डितशिर कर दण्डधर' वैष्णव सन्यासी का कपट वेष धारण कर घर-घर भीख का अलख जगाता रहूँ ? जिसके नाममात्र से शरीर में सिहरन उत्पन्न हो, क्या मैं उस स्त्री के पीछे-पीछे डोलता फिरूँ ?

प्रतिदिन एक-एक वृक्ष के तले में रहने, करपात्र में जल पीने तथा पुरानें फटे कपड़े पहरने वाले विरक्त वैष्णव के लिये मठ मन्दिरों का निर्माण, सोने चाँदी के पात्रों में भोजन, पान तथा रेशमी वस्त्रों का परिधान क्या कभी उचित है ? आपने ही उसदिन बतलाया था कि एक दिन जगदानन्द ने श्रीमन्महाप्रभु की मस्तिष्क वेदना शमन के लिये प्रचुर मात्रा में चन्दन तैल मँगवाया था जिसे देखकर प्रभु ने कहा था कि—

जगदानन्द ! क्या तू मुझे 'दार-सन्यासी' बनाना चाहता है ? सांसारिकजन मुझे देख कर क्या कहेंगे ? आज तैल मंगवाया है तो कल मालिस करने वाले का भी प्रबन्ध करेगा।

मैं आपका श्रीचरणाश्रित होकर 'दार-सन्यासी नहीं बनाना चाहता। मैं सदा से आपका दास रहा हूँ और रहूँगा। कृपाकर ! कृपा कर अब मुझे ठुकराईये मत। यह कह कर रोते हुये गोपीनाथ ने श्रीगोपालभट्टगोस्वामी के श्रीचरणों को कस कर पकड़ लिया और वे उच्चस्वर से हा प्रभो ! गुरुदेव ! कह कर करुण क्रन्दन करने लगे। श्रीगोपालभट्ट ने गोपीनाथ को उठाकर हृदय से लगा कर यह कहा कि—

गोपीनाथ ! मुझे तुमसे ऐसी ही आशा थी। तुम वास्तव में विरक्त वैष्णव वेषाश्रयता के योग्य पात्र हो। तुम ही बताओ मैं क्या करूँ ? श्रीजी की सेवा परम्परा का संचालन किस प्रकार हो ?

श्रीगोपीनाथ अपने एकमात्र आराध्य श्रीगोपालभट्ट की सान्त्वना वाणी को सुनकर आश्वस्त हुये और करबद्ध हो निवेदन करने लगे—

प्रभो ! देववन में मेरा एक अनुज दामोदर अत्यन्त सुशील, सुयोग्य, सेवाभावापन्नजन है यदि आप आज्ञा दें तो उसे यहाँ बुला लिया जाय और सद्गृहस्थी के रूप में उसे श्रीजी की समस्त सेवा, सम्पत्ति की व्यवस्था संचालन का कार्य सोंप दिया जाय। मुझे पूर्ण विश्वास है कि वह श्रीजी की सेवा परम्परा का परिपालन पूर्णनिष्ठा से कर सकेगा।

श्रीगोपीनाथ की सारगर्भित विवेचना सुनकर श्रीगोपालभट्टगोस्वामी परम प्रसन्न हुये और श्रीजी की सेवा सञ्चालनार्थ देववन से दामोदर को यथाशीघ्र बुलाने की आज्ञा दी।

गोपीनाथ ने देववन से दामोदर को बुलाने के लिये दो वैष्णवों की व्यवस्था की एवं दामोदर को देने के लिये—

'व्रज-वृन्दावन की वस्तुस्थिति, श्रीजी के प्राकट्य का पूर्ण विवरण के साथ उनकी सेवा सञ्चालनार्थ यथाशीघ्र वृन्दावन आगमन का निदेश-पत्र दिया। श्रीगोपालभट्ट की अनुमति प्राप्त कर दामोदर को बुलाया गया।

१६११ वैक्रमीय को श्रीगोपालभट्टगोस्वामी द्वारा दामोदरदास-गोस्वामी को अष्टादशाक्षर गोपालमन्त्र की दीक्षा दी गई और श्रीजी की समस्त सेवा का भार श्रीदामोदरदासगोस्वामी को अर्पित किया गया। अपने गुरुदेव श्रीगोपालभट्ट के अन्तर्द्धान पश्चात् श्रीगोपीनाथदास रासमण्डल-स्थित

भजनकुटी में निवास करने लगे।[१]अन्त में१६७० वैक्रमीय वर्ष के पश्चात् पौष शुक्ला पूर्णिमा को आपने स्वेष्ट लाभ प्राप्त किया। आपकी समाधि का दर्शन श्रीगोपालभट्टगोस्वामी की समाधि के सन्मुख है। स्वेष्ट लाभ प्राप्त कर आप गन्धमञ्जरी के रूप में विख्यात हुये।

प्रकटे गन्ध मञ्जरी गोपी।
वाली वयस कुञ्ज सेवा हित कुल मरजादा लोपी॥
मनहुँ बसन्तादिक उत्सव की शुभ विध अंकुर रोपी।
'श्रीगुणमञ्जरी' नित अपनाई पिय प्यारी चित्त चोपी॥

श्रीराधारमणांघ्रिपद्मयुगलध्यानैकतानोन्नतं,
श्रीचैतन्यमहाप्रभोः भगवतः कारुण्यकादम्बकम्।
श्रीगोपालकभट्टपादप्रथितप्राप्तप्रसादात्मकं,
गोपीनाथमनाथनाथमनिशं नित्यं वयं संस्तुमः॥
—श्रीदामोदरदास गोस्वामी

१- वैक्रमीय वर्ष १६६३ की मार्गशीर्ष कृष्णा द्वितीया को लिखित श्रीजीव-गोस्वामी की संकल्पपत्री (वसीयत नामा) पर साक्षीरूप में श्रीगोपी-नाथदास के हस्ताक्षर हैं।
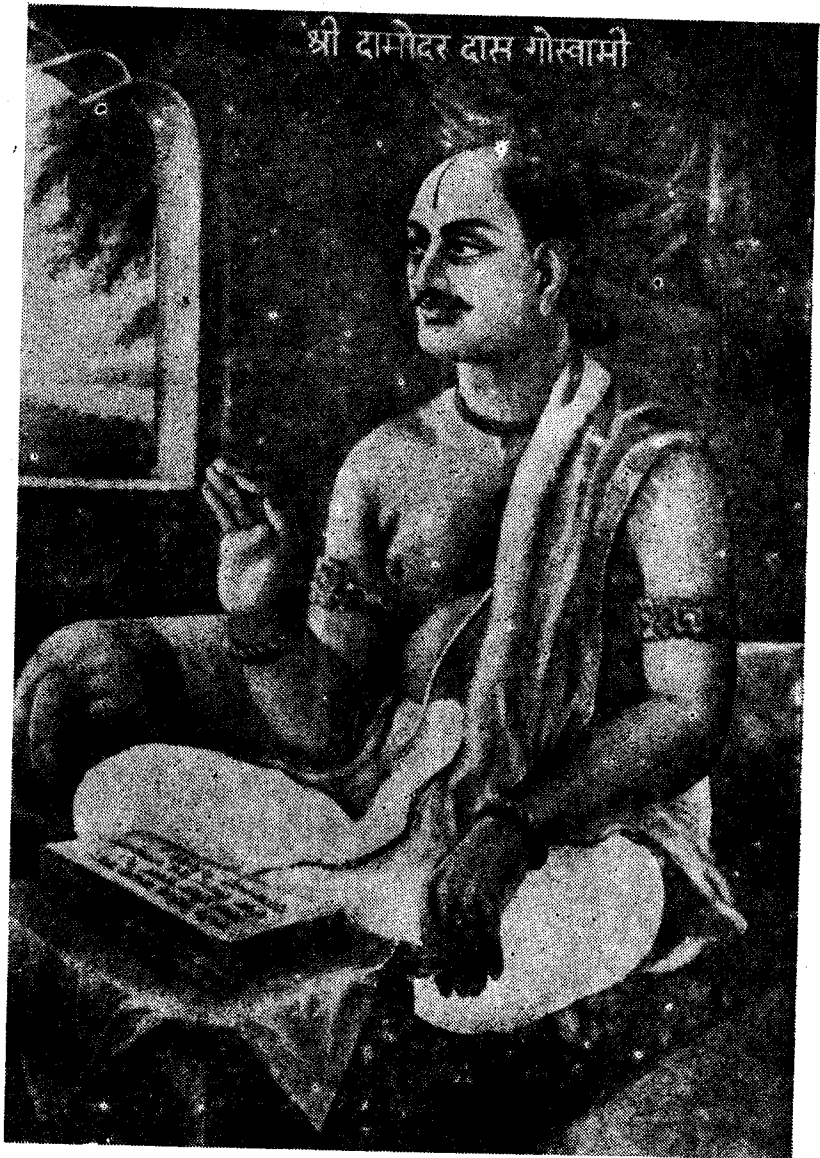
श्रीदामोदरदासगोस्वामी

श्रीदामोदरदास गोस्वामी

श्रीगोपालभट्टगोस्वामी की सद्गृहस्थाश्रित परम्परा के एक अन्यतम देदीप्यमान रत्न थे। आपका जन्म पन्द्रहवीं वैक्रमीय शताब्दी के अन्तिम दशक में देववन-निवासी एक गौड ब्राह्मण परिवार में हुआ था। आपके पिता श्रीमाधवप्रसाद उस समय के एक प्रमुख जागीरदार, तथा साधन-सम्पन्न व्यक्ति थे। आप माधवप्रसाद के द्वितीय सुयोग्य पुत्र थे। परिवार के अनुरूप दामोदर की शिक्षण व्यवस्था योग्य अध्यापकों के निरीक्षण में उच्च-स्तर पर की गई। अपनी अप्रतिम प्रतिभा प्रभाव के कारण दामोदर अल्प-काल में ही संस्कृत साहित्य शास्त्र में पारङ्गत होगये। शनैः शनैः आपकी ख्याति ग्राम परिवेश को लांघ कर चारो ओर फैलने लगी। इस संस्कार-सम्पन्न बालक की वाग्मिता, तथा वैदुषी पर देववनवासीजन विमुग्ध हो उठे।

इधर अपने पिता प्रख्यात पण्डित विद्याधर के देहावसान तथा सुयोग्य ज्येष्ठ पुत्र गोपीनाथ के अतर्कित भाव से जाने के कारण इस ब्राह्मण परिवार में घोर रिक्तता का समावेश हो चला, साथ ही अब माधवप्रसाद की शारी-रिक एवं मानसिक दशा भी प्रतिदिन बिगड़ने लगी वे पितृ एवं पुत्र वियोग की असह्य वेदना में घुले जारहे थे। अहर्निश चिन्तन तथा क्रन्दन ने उन्हें वियोग की चरम सीमा पर पहुँचा दिया। वे इस दारुण आघात को न सह सके, अन्त में माधवप्रसाद भी इस वसुन्धरा वैभव को त्याग उस भगवद्धाम जा पहुँचे जहाँ से फिर कोई लौट कर नहीं आता। दामोदर के लिये यह एक नवीन शोक परिस्थिति थी सहसा अपने पितृचरण के चले जाने के कारण वे अपने को पूर्णरूप से अनाथ अनुभव कर रहे थे। परिवार में ऐसा कोई संचालक नहीं था जो इस डगमगाती नौका को संभाल सके।

विद्याधर की पत्नी उस समय तक जीवित थी, पति एवं पुत्र के असह्य वियोग को सह कर भी उन्होंने इस विस्तृत और ख्याति प्राप्त परिवार को बिखरने नहीं दिया, उनकी अपनी अनोखी सूझ-बूझ से समस्त जागीर

में एक नव चेतनता का सूर्य जगमगा उठा। दरिद्र और अभावग्रस्तजनों के लिये उन्होंने अपने विशाल अन्न भण्डार खोल दिये। ब्राह्मण बालकों के उपनयन, समस्त जातियों की कन्याओं के विवाह का व्यय जागीर की ओर से किया जाने लगा। बिना जाति वर्णगत भावना के सर्वहारावर्ग के लिये शिक्षा तथा चिकित्सा की समुचित व्यवस्था भी जागीर की ओर से की गई। दादी माँ का दरबार दीन-दुखियों के लिये सदा खुला रहने लगा। जागीर के किसी भी जन के संकट में दादी माँ वहाँ जाकर उसका निवारण करती। चारों ओर दादी माँ की कीर्त्ति पताका फहराने लगी। अब दामोदर दादी माँ के कुशल नेतृत्व में सहयोग देने लगे। इधर दामोदर का नवयौवन वयः सन्धि में प्रवेश देखकर दादी माँ ने पार्श्वस्थ पल्ली की [1]एक अतुल्य गोत्रीया उच्चकुल-प्रसूत ब्राह्मण-वंशोद्भवा सुन्दर सुशील सौदामिनी कन्या के साथ विवाह कर दिया।

विवाह के पश्चात् समस्त परिवार एवं जागीर का पूर्ण उत्तरदायित्व भार दामोदर को सोंप दादी माँ अब निश्चिन्त हो भगवद्भजन साधन में मन लगाने लगी। दामोदर ने भी अपनी विचक्षण सूझबूझ से जागीर की जनता के लिए कई सर्वजन-हितकारी योजनायें कार्यरूप में परिणत की। उनका मुख्यतम लक्ष्य शारीरिक श्रम साधन था जिसके वल पर बहुजन हित तथा सुख सम्पन्नता के कार्य किये जा सकते हैं। आपके तीन देवदत्त, मुकुन्द और नारायण नामक छोटे भाई थे, आपने उनको भी उचित शिक्षा देकर अपने कार्य में सहभागी बना लिया। दामोदर एक आस्थावान् धर्मनिष्ठ व्यक्ति होने पर भी वे प्रत्येक धर्म और सम्प्रदाय के व्यक्तियों के कार्यों में विशेष अभिरुचि रख यथासाध्य सहयोग और सहायता देते थे।

वस्तुतः वे धर्म निरपेक्षता के मूर्त्तिमान् प्रत्यक्ष स्वरूप थे। प्रतिवर्ष अनेकों धार्मिक कार्यों में वे मुक्तहस्त से दान करते थे। देवबननिवासी दामोदर को पाकर धन्य हो रहे थे, किन्तु इतना होने पर भी दामोदर अपने अग्रज गोपीनाथ को भुला न पाये। गोपीनाथ का अभाव उनसे विशेष लगाव के कारण उन्हें सदा खटकता रहता था।

---

१. महर्षि चरक ने शारीर स्थान की द्वितीय अध्याय के अतुल्यगोत्रीय प्रकरण

'अतुल्यगोत्रस्य रजः क्षयान्ते'—

में तुल्यगोत्रीय कन्या के साथ विवाह को सर्वथा अधार्मिक माना है।

एक दिन सन्ध्या के समय दामोदर अपने उच्चतम प्रासाद की शिखर पर बैठकर ऐकान्तिकनिष्ठ भावना से भगवद्भजन कर रहे थे, उसी समय उन्हें अपनी आम्रवाटिका के एक कोने से उठता हुआ यह—

श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी के प्राणघन,
श्रीराधारमण ! एक बार हम पर दया करो हे ।

करताल मिश्रित मृदु मधुर मन्द स्वर सुनाई दिया । दामोदर इस स्वर को सुनकर स्थिर न रह सके । उनकी मनोगत भावदशा प्रतिपल उच्छ्वलित होने लगी । वे अपने को संभाल न सके । मन्त्रमुग्ध-जन की भाँति उस मनोमादनकारी ध्वनि की ओर खिंचते चले गये ।

ग्रामवासी जनों ने बीसों वर्षो बाद श्रीगोपालभट्ट का नाम सुना वे भाव विभावित हो उन वृन्दावनागत वैष्णवद्वयों के आस पास एकत्रित होने लगे ।

दामोदर वैष्णवों की भुवनमङ्गलकारिणी श्रीहरिनाम ध्वनि से विमुग्ध हो अपनी अट्टालिका से उतरकर नीचे आये और बिना कुछ विलम्ब किये सीधे वृन्दावनागत वैष्णवों के समीप पहुँचे । वैष्णवों के दर्शनमात्र से उनके हृदय में भावोद्गम होने लगा वे उनकी सादर पदवन्दना एवं अभ्यर्थना कर करबद्ध हो निवेदन करने लगे—

'जिन भागवत जनों के नाम स्मरणमात्र से ही गृहस्थाश्रमी जीवों का तन, मन, धन और भवन पवित्र हो जाते हैं यदि उसे उनके साक्षात् दर्शन, चरण-स्पर्शन तथा कुछ क्षण उनके यहाँ निवसन का सौभाग्य प्राप्त हो जाता है ऐसी अवस्था में उसकी गणना भाग्य वैभवशाली व्यक्ति के रूप में की जाती है' कृपाकर घर पर पधार हमें कृतार्थ कीजिये ।

वैष्णवों ने दामोदर को गोपीनाथ का निर्देश पत्र दिया और अविलम्ब वृन्दावन जाने की अपनी उत्कण्ठा प्रकट की ।

अनेक दिनों बाद गोपीनाथ का अनुसन्धान प्राप्तकर देववनवासी भाव विभोरित हो उठे । दामोदर प्रेमाश्रुओं से अपने को भिगोते हुए घर पहुँचे, आधी रात को पारिवारिक जन एवं ग्राम के प्रमुख व्यक्तियों को बुलाया गया । अपने अग्रज श्रीगोपीनाथ की आज्ञानुसार निजेष्ट कुलदेव श्रीराधारमण की चरण सेवा के लिए अविलम्ब वृन्दावन जाने की उनसे

अनुमति चाही। पारिवारिक जन तथा ग्रामवासीगण दामोदर की इस सौभाग्य प्राप्ति से परम प्रसन्न हुए और सहर्ष वृन्दावन जाने की आज्ञा दी।

दामोदर ने अपनी विशाल वैभव सम्पत्ति अपने तीन देवदत्त, मुकुन्द और नारायण नामक भाईयों को समान रूप से विभाजित कर दी। सम्पत्ति का कुछ अंश भविष्य में धार्मिक और समाजिक कार्यों के सम्पादन के लिए एक प्रबन्धकारिणी समिति का निर्माण कर उनके समीप रख दिया।

श्रीजी की सेवा के लिए वस्त्र, आभूषण एवं अन्यान्य आवश्यकता सामिग्री साथ ले दामोदर पारिवारिक गुरुजन, ग्रामवासीगण तथा देववन की उस परम पावन जन्म भूमि को अन्तिम नमन कर उसकी धूलि को मस्तक पर चढ़ा वैष्णवों के "गोपालभट्ट के प्राणधन राधारमण" स्वरों में स्वर मिलाते हुये अपनी परम साध्वी पतिसेवापरायणा भार्या सौदामिनी को साथ ले रथ पर चढ़कर—श्रीधाम वृन्दावन की ओर प्रस्थानित हुये।

पथ के प्राकृतिक दृश्य तथा गङ्गा यमुना के अन्तर्भागों की शोभा माधुरी का निरीक्षण करते हुये सस्त्रीक दामोदर वृन्दारकवृन्दावन्दित, मधुकर निकर करम्बित, ललित लवङ्गलता परिशीलित, परम पावन-मनसिज मनभावन, सरस सुहावन जहाँ पाणिनी सूत्र का आधार भक्तिः (४-३-९५)

'धन्यं वृन्दावनं तेन-भक्तिर्नृत्यति यत्र च'

अपने अशक्त ज्ञान, वैराग्य पुत्रों के साथ नाचती है। जहाँ वैदिक ऋचायें 'तां वां वास्तुन्युश्मसि' बड़े सीगोंवाली गायों की उपस्थिति की सूचनायें देती हैं।

जिसे कविकुल-कमल कालिदास—'बर्हेणैव स्फुरितरूचिना गोपवेषस्य विष्णोः' मोरमुकुट धारी कृष्ण कन्हैया की प्रिय क्रीड़ास्थली को 'वृन्दावने चैत्ररथादनूने' नन्दन कानन से भी श्रेष्ठ बतला रहा है। जिसे श्रीहर्ष हर्ष के साथ 'वृन्दावने वनविहारकुतूहलानि' वन विहार का लीला कानन बतला रहा है। इस श्रीवृन्दावन में प्रविष्ट होकर उसकी श्रीकृष्ण-मनोवशीकारिणी, अनन्तशक्तिसञ्चारिणी, रजःकणिका को साष्टाङ्ग अभिवादन कर परम आह्लादित हुये।

उन्हें दूर से ही दिखलाई दिया कलित कलिन्दजा की कोटि-कोटि तरलित तरङ्गों से टकराता हुआ रमणीय रजः कणिकायों से परिमण्डित

रासस्थली का कान्त तट प्रान्त। वे तनिक और आगे बढ़े उन्हें सामने शत शत नव पल्लवों की अरुण हरीतिमा को अपने में समेटते हुए विशाल वट वृक्ष की उन्नत तरु शिखरों पर सुशोभित पवन वेग से फहराती हुई पीत पताकायें दिखायी दीं, वे उसे प्रणाम कर ही पाये थे कि उन्हें दूर से उठती हुई घण्टा की घन गर्जना के साथ ही समाजियों के मृदङ्ग मुखरित—

> वन्दे राधारमणमुदारम् ।
> नीलनलिनदलरुचिरमनोहररूपराशिरससारम् ॥
> अच्छपिच्छतापिच्छकनककलकुण्डलप्रचलप्रकारम् ।
> कटितटनिकटपीतपटनटवरहीरकहारविहारम् ॥
> नवमणिनूपुरपूरपरस्वरसिञ्जितमजितमपारम् ।
> व्रजवनविविधविलास 'गोपिकानाथ' प्रणयप्रस्तारम् ॥

आसावरी के स्वर सुनाई दिये।

सपत्नीक दामोदर ने आगे बढ कर अपलक नयनों से नील नलिन-दलाभिराम श्रीराधारमण विग्रह के दर्शन किये। वे इस श्यामल अनुपम स्वरूप के दर्शन कर पुलकित हो बारम्बार नमन कर अपने भाग्य की सराहना करने लगे। उन्होंने शृङ्गार आरती करते एक गौर तेजोद्दीप्त श्रीगोपाल-भट्ट गोस्वामी एवं साथ ही घड़ियाबल पर थाप लगाते प्रेमभाव बिभाबित अपने अग्रज श्रीगोपीनाथ को देखा। सौदामिनी अवगुण्ठित हुई।

आरती समापन के पश्चात् कुटीर प्राङ्गण में पधारते हुये श्रीगोपाल-भट्ट गोस्वामी एवं श्रीगोपीनाथदास गोस्वामी के श्रीचरणों में दूर से सश्रद्ध साष्टाङ्ग प्रणाम कर वे नवदम्पति करबद्ध हो आज्ञापालन की उत्सुकता को अपने हृदय में सजोते हुए खड़े हो गये।

सपत्नीक दामोदर को आया हुआ देखकर श्रीगोपालभट्ट एवं श्रीगोपी-नाथ अत्यन्त प्रसन्न हुए और अविलम्ब स्नान कर आने की आज्ञा दी।

देववन से श्रीजी की सेवा निमित्त लाई हुई वस्तु-सामिग्री रथ और गाड़ियों से उतारी गई। उनकी चौकसी के लिए चार चौकीदार नियुक्त किये गये।

सविधि स्नान करने के पश्चात् श्रीगोपीनाथदास गोस्वामी के आत्य-न्तिक अनुरोध से १६११ वैक्रमीय वर्ष में श्रीचैतन्यदेव प्रदत्त पीठासन पर

विराजमान हो कण्ठ में डोर, कोपीन, वहिर्वास धारण कर श्रीगोपालभट्ट-गोस्वामी ने 'भगवद्भक्ति-विलास' पद्धति के अनुसार श्रीदामोदरदास को अष्टादशाक्षर श्रीगोपालमन्त्र की दीक्षा दी। विधि, निषेध एवं आवश्यक कर्तव्यता के उपदेश के साथ भविष्य में श्रीराधारमणदेव की सेवा में किसी भी प्रकार की बाधायें उत्पन्न न हों इसके लिए एक आचार संहिता पालन का भी दामोदरदास को निर्देश दिया—

[1]श्रीठाकुर राधारमणजी की कुछ मान्यतायें प्रथा तथा रूढियाँ हैं जिनका भविष्य में पालन करना इस वंशमें उत्पन्न प्रत्येक गोस्वासी बालक का आवश्यक कर्तव्य होगा—

१—श्रीराधारमणजी महाराज के मन्दिर की मर्यादा एवं सेवाभावना तथा कुल प्रथा यह रहेगी—

श्रीराधारमणजी के गोस्वामी स्वरूप केवल सदाचारी उन्नत ब्राह्मण वंशों में विवाह करेंगे और उन्ही पत्नियों में गोस्वामी-स्वरूपके बिन्दु से उत्पन्न पुरुष सन्तति ही श्रीठाकुर राधारमणजी महाराज के निज मन्दिर तथा कच्ची रसोई सेवा में जायेगी और वही श्रीठाकुर राधारमणजी की सेवायत और सेवाधिकारी होंगी। गोस्वामी-स्वरूपों की विधवा स्त्रियों को निज मन्दिर के अन्दर तथा कच्ची रसोई के अन्दर प्रवेश तथा सेवा पूजा के हस्तान्तरण का कोई अधिकार न होगा।

२—श्रीराधारमणजी के अमनिया भोग के लिए बाजार में तैयार की गई कोई भी वस्तु या मिष्ठान्न निज मन्दिर में नहीं जा सकता है। दूध भी श्रीराधारमणजी की रसोई में कच्चा ही जायगा।

३—श्रीराधारमणजी के भोग में—आलू, ढेरस, गोभी, गाजर, तरबूज, लाल मिर्च, हींग, सांभर नमक तथा तामसिक पदार्थ नहीं आवेगा।

४—श्रीराधारमणजी के निज मन्दिरकी देहली भेट रुपये, पैसे सेवावाले को प्राप्त है, उसके अतिरिक्त चल तथा अचल सोना, चाँदी, वर्तन, पोशाक, वस्त्र, अन्न सामिग्री, पशुधन आदि सम्पत्ति जो भेंटके रूपमें प्राप्त होगी उसके

१—पूर्व पुरुषानुक्रम से समय-समय पर श्रीराधारमणीय गोस्वामी-स्वरूपों द्वारा किये गये प्रतिज्ञापत्रों के आधार पर।

एकमात्र स्वामी श्रीठाकुर राधारमणजी महाराज होंगे और वह श्रीजी के भंडार में जमा रहेगी।

५—श्रीराधारमणीय गोस्वामी स्त्री अथवा पुरुष प्रथा के अनुसार किसी को दत्तक पुत्र नहीं ले सकते हैं।

६—किसी राधारमणीय गोस्वामी की वेटी, बहिन या धेवते, भानजे को श्रीराधारमणजी की सेवा पूजा का अधिकार न प्राप्त होगा।

७—श्रीराधारमणजी की सेवा-पूजा के अधिकार को वसीयत करने अथवा हस्तान्तरण करने का किसी गोस्वामी को अधिकार नहीं होगा न किसी को दान करने का अधिकार होगा।

८—कभी राजधन स्वीकार न करना।

भविष्य में इन नियमों का जो उल्लंघन करेगा वह श्रीजी एवं वैष्णव-समाज का द्रोही होगा। श्रीदामोदरदास द्वारा—

> श्रीराधारमणजी की शपथपूर्वक इन प्रतिज्ञायों के मान्यता की स्वीकृति प्राप्त होने पर श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी ने श्रीदामोदरदास को श्रीराधारमणजी के [1]श्रीचरणों का स्पर्श कराते हुए अपने प्राणधन श्रीराधारमणजी की सेवा, पूजा, वैभव-सम्पत्ति आदि का समस्त भार महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव द्वारा प्रदत्त पीठासन, डोर, कोपीन, वहिर्वास एवं 'गोस्वामी' पदवी प्रदान के साथ श्रीदामोदरदास गोस्वामी को सोंपा।

इस शुभ माङ्गलिक अवसर पर श्रीवृन्दावन में महान् समारोह हुआ। सहस्रों समागत वैष्णवजनों को परिपूर्ण श्रीजी का प्रसाद वितरण किया गया।

आज श्रीदामोदरदास गोस्वामी ने अपने हाथों से श्रीजी के भोग

---

१. उपनयन के पश्चात् गोस्वामी बालक स्वकुल गुरु द्वारा गायत्री, दशाक्षर गोपाल मंत्र, गौर एवं श्रीहरिनाम महामंत्र से दीक्षा लेकर पुनः अष्टादशाक्षर गोपाल मंत्र से दीक्षित होकर—

के निमित्त [1]अखण्ड पवित्र अग्नि में कच्ची रसोई बनाई।

श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी ने श्रीदामोदरदास गोस्वामी की साध्वी स्त्री सौदामिनीदेवी को भी अष्टादशाक्षर श्रीगोपालमन्त्र की दीक्षा दी और [2]जीवन में केवल एक बार श्रीजी के प्रसादी पात्र स्पर्श की आज्ञा दी।

इधर श्रीजी जयपुर नरेश श्रीभगवन्तदास सुत श्रीमहाराजा मानसिंह द्वारा समर्पित, चारु शिल्प कला चित्रित, लाल प्रस्तर निर्मित्त 'योगपीठ' स्थान दोल पर विराजते थे। श्रीदामोदर ने उसे सुरक्षित मन्दिर का रूप दिया और श्रीजी को वहाँ विराजमान करा महाराजोपचार से वे श्रीजी की सेवा करने लगे।

श्रीदामोदरदास गोस्वामी के श्रीहरिनाथ, मथुरानाथ एवं हरिराम नामक तीन यशस्वी पुत्र थे। श्रीहरिनाथ अपने पिताश्री के समान ही परम विद्वान् प्रतिभा-भावापन्न सहृदय उदारमना व्यक्ति थे। बड़े-बड़े विद्वान्[3]

ही श्रीजी के श्रीचरण स्पर्श करते हैं। यह विधि विशेष समारोह के साथ सम्पन्न होती है।

१. १५९९ वैक्रमीय की पूर्णिमा पर श्रीजी के प्राकट्य समय श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी ने मन्त्रों द्वारा अभिमन्त्रित कर जो अग्नि उत्पन्न की थी उस अखण्ड अग्नि से ही श्रीजी की कच्ची एवं पक्की रसोई का निर्माण एवं दीपकों का प्रज्वलन केवल गन्धक द्वारा निर्मित काष्ठ शलाकायों से होता है।

२. विवाह के पश्चात् श्रीराधारमणीय गोस्वामी-स्वरूप की कुल गुरु से अष्टादशाक्षर मंत्र दीक्षा-प्राप्त स्त्रियां सविधि स्नानकर नवीन वस्त्र, आभूषण, कांच की चूड़िया एवं तुलसी की कण्ठी पहिर कर श्रीजी का चरणामृत ले विशेष समारोह के साथ विना किसी को स्पर्श करती हुई जीवन में एक बार श्रीजी का प्रसादी थाल स्पर्श करती हैं। इस विशेष विधि के ही पश्चात् नववधू द्वारा गृह की प्रस्तुत कच्ची रसोई गोस्वामी-स्वरूप आरोगते हैं।

३. श्रीचेतराम शर्मा एवं श्रीमती क्षमामयी के पुत्र श्रीरामनारायण ने अपनी रास-पञ्चाध्यायी-प्रकरणीय श्रीमद्भागवत की 'भाव-भावविभाविका' टीका के प्रारम्भ में—

आपके आनुगत्य में 'गौर-तत्त्व' एवं भागवत रस सिद्धान्तों का प्रचार प्रसार कर रहे थे। हरिनाथ अपने भ्रातृ युगलों के साथ व्रज-वधुयों द्वारा निर्दिष्ट रागानुरागा पद्धति से श्रीराधारमणदेव की सेवा आराधना करते थे किन्तु अल्प अवस्था में ही आपका देहावसान हो गया अतः श्रीजी की सेवा सञ्चालना का गुरुतर भार आपके—

श्रीजनार्दनदास, वृन्दावनदास, गोविन्ददास, सुन्दरदास तथा ब्रजभूषण-दास नामक पांचों पुत्र तथा श्रीमथुरानाथ एवं हरिराम नामक भ्रातृयुगलों पर आ गया।

शनैः शनैः श्रीदामोदरदास गोस्वामी के परिवार की [1]शाखायें बढ़ने लगी और उसके सदस्य 'श्रीराधारमणीय' गोस्वामी कहलाने लगे। उस समय आवास निवास की विशेष कमी को देख कर 'रासस्थली' का एक विस्तृत भूभाग श्रीगौराङ्गदेव के ब्रजयात्रानुगामी यमुनापारीय एकनिष्ठ गौरवादी राजपूत जमींदार जिन्हें वर्तमान में 'गौरये' ठाकुर 'ये गौर' 'के हैं' कहा जाता है से ८० मन अनाज, ८४ कलदार रुपये तथा एक श्रृङ्गीय एक वैल के विनिमय से क्रय किया गया और उसे चारों ओर से शुद्ध और घेरा बन्दी कर [2]'राधारमण घेरा' की संज्ञा दी गई।

'सद्गुरुः दर्शितः येन हरिनाथप्रदर्शकः।
सुचेतरामराजाख्यं भवघ्नमगदं भजे॥
हरिनाथनखव्रातं भजे दोषाकराकरम्।
केशवं कृष्णचैतन्यं हरिं स्वाचार्यमाश्रितम्।
प्रेमभक्तिप्रवत्त्यर्थं नामगानैकतत्परम्॥

यह श्रीराधारमणचरणाश्रित परिवार काल क्रम से वहरामपुर-मुर्शीदा-वाद में रहने लगा और वहाँ इस परिबार ने 'श्रीराधारमण—मुद्रणालय' की स्थापना कर अनेक गौड़ीय वैष्णव ग्रन्थों के प्रकाशन द्वारा महती ख्याति अर्जित की।

१. लहुरे दामोदरदासजू गाये। राधारमन गुसाँइन को जिन यह वंश बढाये॥
—श्रीगोपाल कवि

२. पुनि राधारमन गुसांइन को राजत एक घेरो।
तहँ श्रीराधारमन विराजत रूप जात नहिं हेरो॥

श्रीदामोदरदासजी के श्रीराधारमणदेव की सेवा-सम्पत्ति संभालने के पश्चात् दिनों-दिन श्रीराधारमणजी की चमत्कृति और वैभव सम्पत्ति की वृद्धि सुनकर उनके अनुज परिवारीय सदस्य वृन्दावन आये और श्रीजी की सेवा सम्पत्ति में अपना भी अंश सम्मिलित करने की प्रार्थना की। उस समय श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी जीवित थे, उन्होंने समागत पारिवारिक जनों से बड़ी दृढ़ता से कहा कि—

श्रीराधारमणजीकी सेवाका अधिकार केवल दामोदरके औरस पुत्र तथा पौत्रों का है उनके परिवार के जनों का श्रीराधारमणजी की सेवा सम्पति में कोई अधिकार नहीं हैं। उनके वहुत अनुनय विनय करने पर भबिष्य में फिर कभी सेवा सम्पत्ति तथा निज मन्दिर तथा रसोई प्रवेश की माँग न करने के आश्वासन पर श्रीजी के रथ, गाय, पालकी आदि की चौकसी करने वाले सैनिकों की आवास-स्थली का कुछ अंश भविष्य में फिर कभी आने पर रहने के लिए तथा वर्ष में केवल एक बार[1] प्राप्त क्रम से वितरण होने वाला प्रसाद का अंश देने की श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी ने आज्ञा दी।

[2]धीरे-धीरे रासस्थली के इस विस्तृत भूभाग पर वाखरें और खिरकें बनने लगी और वृद्धिगत गोस्वामी परिवार के सदस्य पूर्वजों द्वारा निर्दिष्ट स्थानों पर रहने लगे।

सुन्दरता चिकनई चमत्कृति श्याम सरूप सु ताको।
ऐसो कोऊ न त्रिलोकी में ठाकुर दूसरी अदा को ॥
नाना भोग राग उत्सव करि अति आनन्द में पागे।
हित कौतुक हिय पगे जगमगे सकल जगत सुख त्यागे ॥
वृन्दावन माधुरी अगाधहि को सवाद जिन लीनौ।
है सरनागत सीत लियौ तिनकौ सुरसिक करि दीनौ।
गुण के गहत तजत ओगुण को जीवन पे अनुरागा ॥
धर्मसेत करुणानिकेत भव भक्त भूप बड़ भागा ॥

—श्रीगोपालकविकृत धामानुरागावली

१. यह केवल माला प्रसाद प्राप्ति क्रम बहुत दिनों तक चलता रहा और उनके परिवार के अन्तिम पुरुष के दिवंगत होने के कारण यह क्रम अब समाप्त हो गया।

२. पुनि घेरे के अन्दर सब गुसांइन की जागे। —श्रीगोपाल कवि

श्रीदामोदरदास गोस्वामी के निकुञ्ज प्रवेश के पश्चात् भविष्य में पारिवारिक विवाद के कारण श्रीराधारमणजी की सेवा आराधनामें व्यवधान न हो इसको दृष्टिकोण में रखते हुये तात्कालिक श्रीहरिनाथजी के पाँच श्री जनार्दन, वृन्दावन, गोविन्द, सुन्दर एवं ब्रजभूषणदास पुत्र तथा श्रीमथुरानाथजी एवं श्रीहरिरामजी दो भाईयों द्वारा भाद्र कृष्णा १३ बैक्रमीय वर्ष १६८५ को श्रीराधारमणजी की मन्दिर मर्यादा का निर्द्धारण, वैभव सम्पत्ति का संरक्षण तथा सेवा परम्परा का समुचित पालनात्मक एक प्रतिज्ञा-पत्र लिखा गया। यह 'करारनामा' पाँचों भतीजों तथा दो चाचाओं के मध्य था। दोनों चाचाओं ने प्रेम, त्याग तथा आदर्श परम्परा का परिपालन कर अपने बड़े भाई श्रीहरिनाथ के पाँचों पुत्रों को तीन हिस्सा और एक-एक बाखर दे कर स्वयं एक-एक हिस्सा और एक-एक बाखर ग्रहण की।[1] उसीप्रकार प्रथम पर्यायक्रम से श्रीजी की सेवा १८ मास पांचों भतीजों तथा ६-६ मास दोनों चाचाओं में विभाजित हुई। सेवा का प्रथमारम्भ इसी वर्ष कार्तिक कृष्णा अष्टमी से हुआ।

उस समय श्रीवृन्दावनदास के एकमात्र पुत्र श्रीनित्यानन्द का देहावसान हो गया था कहीं ऐसा न हो कि भविष्य में वे या उनकी विधवा स्त्री परिवार के किसी पुरुष सन्तान को गोद लेकर इस सेवा परम्परा को बिगाड़ दें अतः सबों ने दृढ़ मत से जिनमें स्वयं वृन्दावनदासजी भी थे 'विधवा कूं रहन वै को अधिकार नहीं और गोद को अखत्यार काहू को नहीं।' इसका लिखित-रूप से समर्थन किया।

जो इस प्रतिज्ञा पत्र को अमान्य करेगा वह गौघाती, शासन का अपराधी एवं श्रीजी तथा समाज का द्रोही होगा। यह पाँचों भतीजों तथा दो चाचायों के मध्य का करारनामा था जिसे 'पंचदूता' अर्थात् पाँच और दो की संज्ञा दी गई। यही सात थामों की परिकल्पना का समय था जिससे भविष्य में अशौच आदि विप्रतिपत्ति उत्पन्न होने पर श्रीजी की सेवा में व्यवधान न हो। अशौचादि की आशंका होने पर जिसकी सेवा होती थी वह गोस्वामी जब तक सेवा समाप्त न हो तब तक श्रीमन्दिर में ही रहता था कारण 'दिव्यदेश' में अशौच की प्रविष्टि नहीं होती।

---

१. वर्तमान में श्रीवृन्दावनदास तथा श्रीगोविन्ददास भतीजों के दो थामों का वंश नष्ट हो जाने से इन थामों की संख्या तीन रह गई है अतः १८ मास की श्रीजी की सेवा तीन थामों में ६–६ मास के क्रम से संचालित होती है।

श्रीरूपसनातन गोस्वामी के समकाल से ही—

गोपालभट्टेर सेवक पश्चिमामात्र ।
गौडीया आसिले रघुनाथ कृपापात्र ।।
एई नियम करियाछे दुई महाशय ।
परमार्थ व्यवहारे जेन विरोध ना हय ।।

अनुरागवल्ली २।१४

इस नियम के अनुसार पश्चिमोत्तर देशवासी ब्राह्मण, अग्रवाल वैश्य एवं राजपूत क्षत्रिय परिवार श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी एवं इसी परम्परा के श्रीदामोदरदास गोस्वामी के वंशजों के शिष्य होते आ रहे हैं।

राजधन, राजाश्रयता एवं राज्य-शासकों को दीक्षित करना इन्हें स्वीकार न था इसीकारण महान् राष्ट्रीय विप्लवों में जब अन्य विग्रह वृन्दावन से अन्यत्र राज्यों में लिये जा रहे थे तब भी उनके आग्रह, अनुरोध एवं लोभ लालच की उपेक्षा कर ये गोस्वामीगण श्रीजी को राज्यों में न ले गये।

वैंक्रमीय वर्ष १६८० के पश्चात् कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा को श्रीदामोदरदास गोस्वामी का निकुञ्जवास हो गया और वे 'दिव्य' मंजरी रूप से श्रीराधारमणजी की नित्य नव निकुञ्ज सेवा में प्रविष्ट हुए।

कृपापारावारं कनककलकञ्जद्युतिधरं,
सुधाधाराधारं सुरनिकरनीराजिततरम् ।
गुणानामागारं ,गुरुवरमपारं परतरम् ।
स्मरामि श्रीदामोदरवरपदद्वन्दमनिशम् ।।

श्रीहरिनाथदास गोस्वामी

×●×

श्रीनिवासाचार्य

श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी परिकर परम्परा में श्रीनिवासाचार्य का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। आपका जन्म भागीरथीतट-स्थित चारबन्दी ग्राम में हुआ था। आपके पिता श्रीगङ्गाधर संस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् थे। आपकी मातुश्री का नाम श्रीलक्ष्मीप्रिया था। भगवान् श्रीचैतन्यदेव के आवतारिक चरित्रों का इस ब्राह्मण दम्पति पर बड़ा प्रभाव था। वे नाम-रस में सरावोर हो अपना सब कुछ श्रीचैतन्य चरणोंमें समर्पितकर उस पथके पथिक बनने के लिए नवद्वीप पहुँचे। वहाँ गयासे लौटकर आये हुए श्रीचैतन्यदेव की भावोन्माद दशा अब दूसरी हो चुकी थी। दिन रातकी श्रीकृष्ण-प्रेम-विह्वलता ने उन्हें अपूर्व रसभण्डार दे दिया था। उनकी अजस्र अश्रु बिन्दुओं ने श्रीनिवास-प्राङ्गण को भिगो दिया। वे अपना सर्वस्व श्रीकृष्ण चरणों में समर्पित कर चिरसङ्गिनी विष्णुप्रियादेवी को अर्द्ध निशा में छोड़कर 'कटोआ' जा पहुँचे और सहस्रों भक्तों को रुलाते हुए पासमें वैठे नापित से अपने काले-कजराले बालों को उन्होंने कटबा ही दिया। भक्तों से प्रभुकी यह दशा न देखी गई। वे नदीमें कूदकर डूबने-बहने और उछलने लगे। इधर श्रीकेशव भारतीसे संन्यास-धर्म की दीक्षा ले गैरिक परिधान और दण्ड लेकर वे अब निमाई पण्डित से 'श्रीकृष्णचैतन्य' हो चुके थे। श्रीगङ्गाधर से प्रभु की यह संन्यस्त लीला न देखी गई। वे पागल हो "चैतन्य" चैतन्य कहते हुए अपने ग्राम वापिस आये। विरह में उन्मत्त श्रीगंगाधर को ग्रामीण लोगों ने श्रीचैतन्यदास के नाम से पुकारा।

इनके कोई सन्तान न थी इतने पर भी वे दुःखित न थे किन्तु उनकी पतिपरायणा नारी लक्ष्मीप्रिया ने श्रीचैतन्यदेव को सर्वतोभावेन आराधना की एवं उन्हीं की कृपा से १५८० वैक्रमीय वैशाखी शुक्ला पूर्णिमा की रोहिणी नक्षत्रयुक्त माङ्गलिक वेला में श्रीनिबासाचार्य का जन्म हुआ।

बाल्यकाल से ही श्रीनिवास की माँ इन्हें भगवान् और उनके भक्तों की कथा सुनाती थी, वाल्यावस्था के अमिट संस्कारों के कारण श्रीनिवास की वृत्ति श्रीकृष्णमय होने लगी। वे सदा भक्त और भगवान् के पावन नामों

का उच्चारण करते रहते। इधर पिता ने इस कुशाग्रबुद्धि के बालक का चूड़ाकरण, उपनयन संस्कार कर इन्हें अध्ययन की ओर लगा दिया। थोड़े समय में ही श्रीनिवास सस्कृत, साहित्य, व्याकरण, दर्शन के अप्रतिम विद्वान् बन गये।

यौवन के प्रथम सोपान पर पांव धरते ही श्रीनिवास का झुकाव भगवद्भक्ति की ओर हो उठा। माता-पिता के वैवाहिक अनुरोध को इन्होंने दृढ़ता से प्रत्याख्यान कर वैराग्य-मार्ग को अपनाने की आन्तरिक इच्छा प्रकट की।

इधर इनके पिता की मृत्यु हो गई। ननसाल में केवल श्रीबलराम-मिश्र नाना को छोड़कर और कोई था ही नहीं अतः मातामह की विशाल सम्पत्ति के उत्तराधिकारी-रूप में श्रीनिबास "जाजिग्राम" आये। असीम यौवन, अपरिमित सम्पत्ति और अधिकार को प्राप्त कर भी श्रीनिवास का मन सांसारिक सुखों में न लगा। वे श्रीचैतन्यदेव के भुवन-मोहन दर्शन के लिए लालायित हो उठे।

श्रीखण्डके श्रीनरहरि सरकारसे परामर्शकर भगवान् श्रीचैतन्यदेव को दर्शन-लालसासे श्रीनिवास पुरी पहुँचे। पथका दुर्दान्त दुःख भी इन्हें विचलित न कर सका परन्तु तब तक श्रीमन्महाप्रभु अन्तर्हित हो चुके थे। यह समाचार सुन श्रीनिवास अधीर हो रोने लगे। इनकी विरह वेदना दशा ने सबों को द्रवित कर दिया। इन्होंने "आज आंच में जल कर अपने प्राण गवाउँगा" यह निश्चित किया कि रात में ज़रा सी नींद आई, तो सामने क्या देखते हैं कि श्रीमन्महाप्रभु भुवन-मोहन रूप में खड़े हैं और उनके मस्तक पर अपने श्रीचरण रखकर अपनी स्नेह-सिक्त वाणी से नीलाचल जाने का उपदेश दे रहे हैं। श्रीप्रभु की आज्ञा शिरोधार्य कर क्षुधित, पिपासित श्रीनिवास श्री जगन्नाथ आये। रात्रि में भक्त को कष्ट न हो अतः एक ब्राह्मण वेश में प्रभु ने इन्हें अपने हाथों से प्रसाद पवाया।

दूसरे दिन श्रीजगन्नाथ का दर्शन कर श्रीनिवास श्रीपण्डित गदाधर के श्रीचरणों में उपस्थित हुये। प्रभु-विरह से व्यथित श्रीगदाधर ने श्रीनिवास को हृदय से लगा लिया। श्रीगदाधर पण्डित की आज्ञा से श्रीनिवास श्री चैतन्यपदाङ्कित पावन स्थानों के दर्शनार्थ गये। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य, श्रीरायरामानन्द, पण्डित वक्रेश्वर, श्रीपरमानन्दपुरी, श्रीशिखिमहाति कानाई खुटिया, श्रीपट्टनायक वाणीनाथ, गोपीनाथाचार्य आदि श्रीचैतन्या-

नुगतों के श्रीचरणों में श्रीनिवास ने अभिवादन किया। प्रभु के अदर्शनजन्य दु:ख से इन लोगों की दशा ही कुछ निराली हो चुकी थी। निरन्तर 'श्रीगौर' नाम उच्चारण और अजस्र रोदन ने इन्हें वियोग की पराकाष्ठा में पहुँचा दिया था।

श्रीपण्डित गदाधर ने श्रीचैतन्य के प्रिय पार्षद श्रीनिवास को अपने समीप बुलाया और सुबुद्धि बालक को अपने चरणोपान्त में बैठा कर भक्ति-सिद्धान्त के तात्त्विक वचनों का स्वारहस्य समझाया।

भगवान् श्रीचैतन्य के नेत्र जल से भीगी हुई श्रीमद्भागवत के जीर्ण पृष्ठों को जिनके अक्षर प्रायः लुप्त हो चुके थे, श्रीनिवास को समर्पित करते हुए श्रीगदाधर पण्डित ने कहा—मेरी बड़ी ही इच्छा तुम्हें श्रीभागवत पढ़ाने की थी परन्तु अब मेरी मनोदशा ऐसी नहीं है जो तुम्हें कुछ बता सकूं। तुम सुविधानुसार श्रीवृन्दावन जाना, वहाँ तुम्हारी भक्ति ग्रन्थ अध्ययन की कामना पूर्ण होगी।

श्रीमद्भागवत को नमन कर श्रीनिवास ने उसे अमूल्य निधि के रूप में अपने पास रखा। वे श्रीपंडित गदाधर की सादर अभ्यर्थना कर गौड़ देश की यात्रा पर चल दिये किन्तु उन्हें इस बात का बहुत दु:ख रहा कि वे इस यात्रा में श्रीस्वरूप तथा श्रीरघुनाथदास के दर्शन न पा सके। श्रीस्वरूप तो प्रभु के अन्तर्हित के बाद ही तिरोहित हो गये और श्रीरघुनाथ सीधे वृन्दावन चले गये थे।

गौड़देश आकर श्रीनिवास "कटवा" में एक बार पुन: श्रीनरहरि-सरकार से मिले और उन्हें नीलाचलवासी श्रीचैतन्य-विरह-जर्जरित वैष्णवों की मनोभाव दशा बताई। गौड़देश आकर श्रीनिवास पुनः व्याकुल हो नीलाचल की ओर अग्रसर हुए। उनका विचार श्रीपण्डित गदाधर की सन्निधि में श्रीमद्भागवत शास्त्र ग्रन्थ अध्ययन का था किन्तु कुछ ही दूर चल पाये थे कि रास्ते में आते हुये वैष्णवों से पण्डित गदाधर के अदर्शन का समाचार उन्होंने सुना। वह बड़े व्याकुल हुये। स्वप्न में श्रीगौर-गदाधर ने उन्हें गौड़देश और व्रज-वृन्दावन जाने की आज्ञा दी।

समयानुसार श्रीगौर-गदाधर की अनुज्ञा शिरोधार्य कर श्रीनिवास राजमार्ग से नवद्वीप की ओर प्रस्थानित हुये। चलते-चलते उन्होंने रास्ते में श्रीअद्वैत प्रभु एवं श्रीनित्यानन्द प्रभु के अप्रकट होने का समाचार सुना।

वियोग की परकाष्ठा ! इस जीवन से अब लाभ ही क्या ? उन्होंने जीवन-नाश की मन ही मन योजना बना ली। भक्त की अन्तर्वेदना भगवान् से छिपी न रही। वे करुणावतार श्रीनित्यानन्द के रूप में स्वप्न में आये और श्रीनिवास को हृदय से लगा अपनी अपार करुणा धारा से इन्हें अभिसिञ्चित कर धैर्य धारण करने को कहा।

श्रीप्रभु की अपार अनुकम्पा से अनुग्रहीत हो श्रीनिवास श्रीधाम नवद्वीप पहुँचे। यहाँ की अवस्था एक लुटी हुई नगरी के समान हो रही थी। चारों ओर एक नीरव शान्ति सी दिखलाई दे रही थी। जिधर देखो उधर उदासीनता का वातावरण था। वे जन-जन की हा गौरसुन्दर ! करुणा स्वर सुनते हुए। श्रीप्रभु के आवास स्थान पर पहुँचे। वहाँ इन्हें मिले प्रभु के नित्य पार्षद श्रीवंशीवदन। श्रीवंशीवदन ने एक अपूर्व तेजोमय बालक को जब सामने खड़ा देखा तब उनका मन करुणासिक्त हो चला। वे इसे लेकर श्रीचैतन्य-नागरी श्रीविष्णुप्रियादेवी के समीप पहुँचे। माता की भाव-विभोर दशा देख श्रीनिवास उनके चरणों में गिर पड़े। अधीर श्रीनिवास को अपने प्राणनाथ के प्रिय पार्षद रूप में पाकर श्रीविष्णुप्रिया देवी परम प्रसन्न हुई और अविचल श्रीगौरचरण के अनुराग का आशीर्वाद दिया।

इधर कृष्णाचतुर्दशी के चन्द्रके समान कृशकाय श्रीईश्वरी के दर्शन कर कुछ देर तक श्रीनिवास रोते-रोते उनके श्रीचरणों पर पड़े रहे। पुत्रवत्सला माँ ने श्रीनिवास को उठा कर अपने अङ्क में बिठाया। अजस्र अश्रुधारा से संसिक्त कर कुशलता जिज्ञासा की। आज बहुत दिनों बाद उन्होंने स्वयं अपने हाथों से भोजन बना श्रीमन्महाप्रभु-श्रीनित्यानन्द प्रभु को समर्पित कर प्रेम से अपने हाथों श्रीनिवास को प्रसाद पवाया। मां की ममत्त्वमयी करुणा से श्रीनिबास गद्‌गद् हो उठे।

वहाँ से वे श्रीअद्वैताचार्य के दर्शन कर खड़दह जा श्रीनित्यानन्दपाद गृहिणी श्रीवसुजाह्नवी एवं उनके प्रिय पुत्र श्रीवीरभद्र प्रभु के चरणों में नमन कर कृतकृत्य हुये अन्त में यह भक्तप्रवर श्रीअभिरामगोपाल के स्थान पर कुछ दिन रह कर नवद्वीप रसमाधुरी का आस्वादन करने लगे। श्रीअभि-रामगोपाल का उस समय भी यह प्रताप था कि जिस दुर्जन-जन की ओर देखते, वह वहाँ ठहर नहीं सकता था। उन्होंने अपने प्रेम-बल से एक सामान्य पुष्करिणी से श्रीगोपीनाथ-बिग्रह प्राप्त किया था। वे और उनकी पत्नी

श्रीमती मालिनी सदा विग्रह सेवा में लगे रहते थे, श्रीनिवास ने उनके ही संग से श्रीगौरचरणों की अनुराग भावना प्राप्त की थी। उनका चरित्र अलौकिक था। एक दिन कीर्त्तन में श्रीनित्यानन्द प्रभु ने उनकी मुरली को छिपा दिया, वे उन्मत्त प्रेमावेश में थे, उन्होंने वहाँ रखे हुए एक शहतीर जिसे एक सौ आदमी भी नहीं उठा सकते उसे वंशी की तरह उठा लिया और बजाने लगे। एक जयमङ्गल चाबुक भी उनके पास थी जिसे आपने कृपापूर्वक श्रीनिवास को तीन बार छुवा दिया, चाबुक की मार खाकर श्रीनिवास खिलखिला कर हँसने लगे, दुबारा वे चाबुक छुलाने ही वाले थे कि श्रीमालिनीदेवीने उसे कसकर पकड़ लिया। नाथ ! बहुत हो चुका, यह क्या कम है ? वह चाबुक प्रेम की आह्लादिनी शक्ति थी जिसके स्पर्शमात्र से जीव का भव बन्धन छूटकर वह प्रेममय बन जाता था।

श्रीचैतन्यदेव के अनुगत जनों की कृपा पारावार राशि में अवगाहन कर श्रीनिवास पुनः अपने ग्राम में उपस्थित हुये और वैष्णवों के साथ नित्य गौर गुण गान के रूप में अपना समय बिताने लगे।

कुछ दिनों वे 'जाजिग्राम' में अपनी माता के समीप रहे अवश्य थे किन्तु उनकी श्रीचैतन्यदेव विरह-जनित वेदना का विराम न था, वे अहर्निश उनका अनुचिन्तन कर रोते रहते अन्त में श्रीनरहरि सरकार तथा श्रीरघुनन्दन से अनुमति प्राप्त कर मार्गशीर्ष शुक्ला द्वितीया १६२४ वैक्रमीय की प्रभात वेला में माता का आशीर्वाद ले अग्रद्वीप, श्रीचैतन्य-सन्यास-स्थल कन्टकनगर पथ से श्रीनित्यानन्द प्रभु के जन्मस्थान 'एकचक्रा' ग्राम पहुँचे। वहाँ वे श्रीचैतन्यदेव के अभिन्न सहचर श्रीनित्यानन्द प्रभु की गुण गरिमा का स्मरण कर भाव-विभोर हो रोते-रोते धूल में लौटने लगे। भोजन, पान, निद्रा कुछ नहीं। जरा सी तन्द्रा हुई तो सामने श्रीनित्यानन्द प्रभु ने उन्हें ब्रजयात्रा का स्वप्नादेश दिया। आज्ञा प्राप्त कर श्रीनिवास वनमार्ग से गया होते हुए बाराणसी पहुँचे, वहाँ श्रीचैतन्यदेव के प्रिय पार्षद श्रीचन्द्रशेखर के शिष्य को साथ ले उन्होंने श्रीचैतन्यदेव के उपदेश-स्थान 'चैतन्यवट' का दर्शन किया और काशीवासी नागरिकों को हरिनाम सुधाधारा-सिक्त करते हुये अयोध्या, प्रयाग, यमुना मार्ग से मथुरा उपस्थित हुए।

कंस-निधन स्थान विश्राम घाट पर चतुर्वेदी ब्राह्मणों के पौरोहित्य में स्नान एवं पूजन कर श्रीनिवास ने उनसे वृन्दावन-पथ तथा वहाँ के समाचारों की जिज्ञासा की। उपस्थित ब्राह्मण समुदाय व्यथित हो कहने लगे—

श्रीनिवास ! वृन्दावन की बात मत पूछो । वहाँ तो वियोग की काली घटायें छा रही हैं । देखो तो कुछ दिनों पूर्व सर्वेश्वर श्रीमन्महाप्रभु चैतन्यदेव अप्रकट हो गये उनके शोक में व्यथित हो काशीश्वर, रघुनाथभट्ट चले गये । इससे अधिक और क्या दुःख का विषय होगा कि व्रज के गौरव श्रीसनातन, रूप का भी अभी अवसान हो गया । जो कुछ वैष्णव बचे हैं उनकी दशा, बड़ी ही दयनीय है ।

वृन्दावन के शोक समाचारों को सुन श्रीनिवास मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े, संज्ञा होने पर हा प्रभो ! दयामय ! रूप सनातन ! आप मुझ अधम को छोड़कर कहाँ चले गये । मैं तो केवल आपके श्रीचरणों की दर्शन कामना से यहाँ तक आया था । संसार में मेरे समान और कोई अभागी नहीं है, जहाँ जाता हूँ वहाँ ही श्रीचैतन्यदेव के प्रियजनों का अवसान सुनता हूं । अब इस वृन्दावन की धरा में धरा ही क्या रह गया ? जिनके दर्शनों के लिए आया था जब वे ही न रहे तब वहाँ तक जाने से क्या लाभ ? यह कहकर श्रीनिवास विलाप करने लगे ।

उपस्थित ब्राह्मणों ने श्रीनिवास को बहुत समझाया परन्तु उनकी विरह वेदना तनिक भी कम न हुई । निराहार यमुना तट पर उच्च-स्वर से वे विलाप करते रहे । भगवदिच्छा से उन्हें तनिक सी झपकी लगी तो सामने उन्होंने कृपा-निकेतन श्रीरूप सनातन को देखा । श्रीनिवास भाव विभावित हो उनके श्रीचरणों में लौटने लगे ।

मधुरता की मूर्ति श्रीसनातन ने श्रीनिवास को उठाकर गले से लगाया और वे कहने लगे—

[1]श्रीनिवास ! रोते क्यों हो ? वृन्दावन में आकर भी रोना । यहाँ तो जो हँसता है वही रहता है । उठो ! इतनी अधीरता से काम नहीं बनेगा ।

---

१. स्वप्ने श्रील सनातनेन सह ते श्रीरूपनामादयः,
प्रोचुस्तं नहि ते विषादसमयः गोपालभट्टोऽस्ति यत् ।
तस्मान्मन्त्रवरं गृहाण सकलान् ग्रन्थान् तयास्मत्कृतान्,
गत्वा गौडभलं प्रचारय मतं त्वं वैष्णवान् शिक्षय ।।

भक्तिरत्नाकार, चतुर्दश तरङ्ग

अभी तुम्हारे भाग्य से श्रीमन्महाप्रभु के परम कृपापात्र श्रीगोपालभट्ट जीवित हैं। उनके चरणाश्रित हो उनसे श्रीगोपालमन्त्र की दीक्षा प्राप्त करो एवं कुछ दिनों श्रीवृन्दावन निवास कर गौडमण्डल के कोने-कोने में श्रीमन्महाप्रभु चैतन्यदेव की निजीय विशुद्ध भक्ति रस भावना का सन्देश पहुँचा दो, हमारे द्वारा प्रणयित भक्ति-रस ग्रन्थों का जगत् में प्रसार प्रचार करो, समस्त मानव को वैष्णवाचार की शिक्षा दो, यही हमारा तुम्हारे लिए आन्तरिक आदेश है। यह कह कर वह कृपारस-वर्षिणी मूर्त्ति तिरोहित हो गई।

उधर स्वप्न में श्रीरूप, सनातन ने श्रीजीव को जगाकर कहा कि–इसी वैशाख शुक्ला पञ्चमी को श्रीनिवास वृन्दावन आ रहा है उसे श्रीगोपाल-भट्ट का श्रीचरणाश्रित कर वैष्णव ग्रन्थों का अध्ययन करा देना, यह कहकर वे वहाँ से अन्तर्हित हो अपने अभिन्न सहचर श्रीगोपालभट्ट के समीप पहुंचे और उनसे कहने लगे—प्रिय बन्धो ! तुम्हारा अनुगत श्रीनिवास गौड़ देश से विशेष व्यथित हो वृन्दावन आ रहा है। उस पर अपनी अनुकम्पा राशि प्रवर्षित कर दीक्षा देना यह कहकर वे वहाँ से भी अन्तर्हित हो गये।

श्रीजीवगोस्वामी उठे, स्नानादि कृत्य समाधान कर निकुञ्ज पथ से श्रीगोपालभट्ट की रासस्थली-स्थित भजन-कुटीर पर पहुंचे वहाँ वे देखते हैं कि श्रीगोपालभट्ट हा रूप ! हा सनातन ! कहकर रो रहे हैं। श्रीजीव ने जाकर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणति की। श्रीगोपालभट्ट ने श्रीजीवको अपनी गोदमें बिठाकर सर्वाङ्गीण कुशलता के साथ नवीन वैष्णव-ग्रन्थ प्रणयन तथा उनके संशोधनों की जिज्ञासा की। श्रीजीव ने नवीन वैष्णव ग्रन्थों की रचना सूची के साथ श्रीरूप, सनातन प्रभु युगलों का स्वप्नादेश श्रीगोपालभट्ट के श्रीचरणों में निवेदन किया। श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी ने भी यही बात दुहराई। वैशाख शुक्ला पूर्णिमा को होने वाली 'श्रीराधारमणजयन्ती' के अभी कुछ ही दिन बाकी थे, श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी उसीकी आयोजना में व्यस्त थे अतः उनसे और अधिक बात न हो सकी।

विविध वनराजि पुष्पों पर मञ्जुल मधुकर मुखरित हो रहे थे, स्थान-स्थान पर मयूर मयूरी को साथ ले अपने केकारव से वन प्रान्त को गुञ्जायमान करते हुए नृत्य कर रहे थे। कहीं कोकिल-कलापों का कल कलालाप, मूढमति मृगाङ्गनायों की मदनोन्मादमादकता, ललित लवङ्ग लता परिशीलित वृन्दा की विटपावलियों की उद्दाम गन्ध मण्डित सौगन्ध सौरभ सुषमा का निरीक्षण करते हुए श्रीनिवास श्रीवृन्दावन की परम पावन रस-भूमि में उपस्थित हुए। श्रीवृन्दाबन के सन्दर्शनमात्र से अष्ट सात्विक भाव

एक साथ उन पर छा गये। श्रीवृन्दावन की रसाप्लावित रसा को साष्टाङ्ग प्रणति कर वे सीधे श्रीगोविन्द मन्दिर पहुंचे। वह सान्ध्य बेला थी।

'भाल गौराचान्देर आरती वानि' की मधुर मादक स्वर-लहरी दिग् दिगन्त को मुखरित कर रही थी। श्रीनिवास एक कोने में खड़े हो अपने अजस्र प्रेमाश्रु-विन्दुओं से स्वयं को अभिसिक्त कर श्रीगोविन्ददेव की अपूर्व रूपमाधुरी छटा का अवलोकन कर रहे थे।

भाव-विभावित स्वर्ण-कान्तिमय श्रीनिवास को पहचानने में श्रीजीव को तनिक देर न लगी। वे अविलम्ब वहाँ पहुँचे और श्रीनिवास को छाती से लगा लिया।

प्रकाण्ड पाण्डित्य पूर्ण-स्वरूप श्रीजीव के श्रीचरणों को पकड़ कर श्रीनिवास रोने लगे। श्रीजीवने समुपस्थित वैष्णवजन एवं श्रीगोविन्ददेव के प्रधान अर्चक श्रीकृष्णदास से श्रीनिवास का परिचय कराया।

श्रीगोविन्ददेव की प्रसादी माला प्राप्त कर श्रीनिवास श्रीजीव के साथ श्रीराधादामोदर मन्दिर में उपस्थित हुये। समस्त व्रज वृन्दावन में श्रीनिवास का आगमन द्रुतगति से व्याप्त हो गया। वैशाखी विभावरी की चन्द्रमसी ज्योत्स्ना में श्रीरूपगोस्वामी की समाधि का सन्दर्शन कर श्रीनिबास भाव विभोरित हो उठे।

इधर श्रीनिवास श्रीजीवगोस्वामी के साथ रासस्थली-स्थित श्रीगोपाल-भट्ट गोस्वामी के निवास स्थान पर पहुंचे। कलित कालिन्दीकूल-स्थित विशाल वट वेदिका पर विराजित श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी के श्रीचरणों में सश्रद्ध प्रणिपातकर श्रीनिवास कातर भाव से रोने लगे।

श्रीरूप सनातन विरह विदग्ध श्रीगोपालभट्ट ने श्रीनिवास को आन्त-रिक आशीर्वाद दिया। श्रीजीव गोस्वामी द्वारा ऐकान्तिक अनुरोध से ज्येष्ठ कृष्णा द्वितीया तिथि दीक्षा के लिए निर्द्धारित की गई।

अत्यन्त मनोहर त्रिभङ्ग-ललित, नीलनलिनदलाभिराम, स्वयं प्रकटित, अशरण जनशरणं, श्रीराधारमण का सौन्दर्य स्वरूप सर्न्दशन कर श्रीनिवास कृतकृत्य हो उठे।

श्रीजीव के साथ श्रीलोकनाथ श्रीभूगर्भ-गोस्वामी आदि गणों के सन्दर्शन कर श्रीगोपीनाथ मन्दिर होते हुये श्रीनिवास श्रीमदनमोहन मन्दिर पहुँचे।

यहाँ के श्रीविग्रह, श्रीसनातन गोस्वामी की समाधि का दर्शन तथा श्रीकृष्ण-दास ब्रह्मचारी का समाश्रय प्राप्तकर श्रीनिवास अपने स्थान पर आ पहुँचे। कल द्वितीया है, श्रीनिवास की श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी द्वारा दीक्षा होगी— यह समाचार वृन्दावन के कोने-कोने में प्रसारित हो गया।

१६२५ वैक्रमीय वर्ष की [1]ज्येष्ठ कृष्णा द्वितीया के प्रभात में यमुना स्नान कर श्रीजीव गोस्वामी के साथ श्रीनिवास पुनः श्रीगोपालभट्ट के चरणों में दीक्षा ग्रहण हेतु उपस्थित हुए।

श्रीराधारमण विग्रह के सन्निधान में श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी ने स्वर-चित "भगवद्भक्तिविलास-वैष्णवस्मृति-सम्मत" विधान से श्रीनिवास को

---

१. यद्यपि श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी ने स्वविलिखित 'भगवद्भक्ति'-विलास स्मृति दीक्षा प्रकरणान्तर्गत श्रेष्ठ मास निर्णय में 'ज्येष्ठे तु मरणं ध्रुवम् ज्येष्ठ मास की दीक्षा निश्चित मरणरूपा निर्दिष्ट की हैं तथापि स्वगुरुदेव

प्रभुं श्रीकृष्णचैतन्यं तं नतोऽस्मि गुरूत्तमम्।
कथञ्चि दाश्रयाद्यस्य प्राकृतोऽप्युत्तमो भवेत्॥

श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु की श्रीनिवास को दीक्षा देने की अनुज्ञा—

मेरो अंश निवासाचारी आवेगो हिय भीज्यो।
पटा बैठि कोपीन माला धरि तिंह दीक्षा तुम दीजो॥
—श्रीगोपालभट्ट चरित-श्रीगोपाल कवि

तथा

दुर्लभे सद्गुरुणाञ्च सकृत् सङ्ग उपस्थिते।
तदनुज्ञा यदा लब्धा स दीक्षावसरो महान्॥
—तत्त्वसार २।१५

दुर्लभ सद्गुरु का एकबार सङ्ग और उनकी आज्ञा ही सर्वश्रेष्ठ है एवं सर्वैश्वर्य प्रदर्शक—

श्रीमद्गोपालदेवस्य सर्वैश्वर्यप्रदर्शिनः।
तादृक् शक्तिषु मन्त्रेषु न हि किञ्चिद्विचार्यते॥ १।१००

'श्रीगोपालमन्त्र' की दीक्षा में किसी प्रकार का विचार नहीं किया जाता के अनुसार ही श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी द्वारा श्रीनिवास को दीक्षा दी गई

"श्रीगोपालमन्त्र की दीक्षा दी साथ ही वैष्णवाचार, साधन प्रक्रिया का मार्मिक उपदेश भी दिया। श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी से दीक्षित हो श्रीनिवास श्रीजीव गोस्वामी की अनुमति से श्रीराधाकुण्ड एवं गोवर्द्धन दर्शनार्थ गये, वहाँ श्रीरघुनाथदास गोस्वामी, श्रीराघव पण्डित और श्रीकृष्णदास कविराज के श्रीचरणों का दर्शन कर पुनः वृन्दावन लौट आये।

एक शुभ दिन देखकर श्रीजीव-गोस्वामीपाद ने श्रीनिवास को वैष्णवों की परमाराध्य श्रीमद्भागवत एवं वैष्णव ग्रन्थों का आनुपूर्विक अनुशीलन कराना आरम्भ किया। इसी शृङ्खला में एक दिन उज्वल नीलमणि के

श्लोक—

सखि ! रोपितः द्विपत्रः शतपत्राक्षेण यो ब्रजद्वारि ।

सोऽयं कदम्बडिम्भः फुल्लो बल्लभवधूस्तुदति ।।

की श्रीजीव के आदेश से श्रीनिवास ने अपूर्व सिद्धान्तपरक व्याख्या की, जिसे सुनकर श्रीजीव चमत्कृत हो उठे। श्रीजीव को एक सहायक की आवश्यकता थी उसकी पूर्ति उन्होंने श्रीनिवास से प्राप्त की। श्रीनिवास की अचिन्त्य शक्ति से अभिभूत हो उन्हें विश्व वैष्णव राजसभा द्वारा "आचार्य" तथा खेतरी से समागत नरोत्तम ठाकुर को उनकी शालीनता, वैष्णवाचारता से प्रभावित हो "महाशय" की पदवी दी गई। ग्रन्थों का प्रणयन श्रीजीव और उसका संशोधन अबाधगति से श्रीनिवास करते जा रहे थे।

ब्रज के वास्तविक स्वरूप ब्रजग्रामों के निरीक्षण की अभिलाषा श्रीनिवास एवं श्रीनरोत्तम के हृदय में जग उठी थी, इसकी पूर्ति को श्रीजीव सोच ही रहे थे कि ब्रजयात्रा की अनुमति के लिये राधाकुण्ड से श्रीराघव-पण्डित श्रीजीवगोस्वामी के पास उपस्थित हुए। श्रीजीव ने श्रीनिवास, श्रीनरोत्तम को व्रजयात्रा के लिए श्रीराघव पण्डित के हाथों सोंपा। ब्रज की चौरासी कोस की यात्रा वर्षा की रिमझिम बूँदों के साये में श्रीराघवपण्डित के सहयोग से श्रीनिवास, श्रीनरोत्तम ने पूरी की।

कुछ दिनों बाद उड़ीसा से श्रीश्यामानन्द भी आकर इस मण्डली में मिल गये, इन तीन अभिन्न सहचरों के सहयोग से विशुद्ध ब्रजभावना का जो वास्तविक विकास हुआ उसकी परिवर्णना नहीं की जा सकती।

श्रीनिवास की विधिवत् वैष्णव ग्रन्थ शिक्षा अब पूर्ण हो चुकी थी। इन ग्रन्थों का प्रसार आवश्यक है यह निश्चय कर श्रीजीवगोस्वामी ने मार्गशीर्ष शुक्ला पञ्चमी पूर्व देश यात्रा तिथि निर्धारित की।

ब्रज-वृन्दावन से जाने का विचार जान श्रीनिवास विचलित हो उठे किन्तु "आज्ञागुरूणामविचारणीया" के अनुसार ब्रजवास सुख को त्याग प्रेम-भक्ति के दीप्त ज्योतिप्रकाश को हाथ में लेकर वे आगे बढ़े। श्रीजीव ने श्रीनिवास को श्रीरघुनाथदास गोस्वामी के समीप आज्ञा लेने राधाकुण्ड भेजा, वहाँ से लौट कर वे श्रीगोविन्द-मन्दिर आये और आज्ञा माला प्राप्त की। श्रीनिवास श्रीजीवगोस्वामी की अनुमति से समस्त प्रणीत गौड़ीय वैष्णव ग्रन्थों को लेकर गौड़ मण्डल जा रहे हैं, यह समाचार सुन कर व्रजस्थित समस्त वैष्णव-मण्डली वृन्दावन आ पहुँची।

मथुरा के एक नित्यानुगत महाजन को गौड़मण्डल यात्रा के लिए एक बैलगाड़ी, राजाज्ञा एवं रक्षकों की व्यवस्था हेतु श्रीजीवगोस्वामी ने आज्ञा दी। कुछ दिनों बाद राजाज्ञा प्राप्त होने पर चार काठ के पिटारों में उस समय तक के रचित गोस्वामी ग्रन्थ रखे गये और यह सम्पूर्ण ग्रन्थरत्न राशि गौड़-मण्डल में प्रचारार्थ श्रीनिवास को श्रीजीव आदि गोस्वामी गणों द्वारा प्रदान की गई।

वृन्दावन के विग्रहों के श्रीचरणों में प्रणति और आज्ञा माला प्राप्त कर श्रीनिवास अपने श्रीगुरुदेव श्रीगोपालभट्ट के श्रीचरणोपरान्त में पहुँचे। श्रीगोपालभट्ट ने अपने कृपापात्र शिष्य श्रीनिवास को श्रीराधारमण की प्रसादी माला दे छाती से लगा शक्ति का संचार करते हुए ग्रन्थ प्रचार की आज्ञा दी।

मार्ग में द्विज हरिदास की एक निर्जन कुटी थी। वहाँ पहुँचकर जो वे दर्शनार्थ भीतर गये कि द्विज हरिदास ने श्रीनिवास का हाथ पकड़कर उनसे अपने श्रीदास तथा गोकुलानन्द पुत्रों को दीक्षित करने का अनुरोध किया। श्रीनिवास की आँखों में आज भला नींद कैसी? आठ वर्ष बाद ब्रज से एक बार बिछुड़ जाने की व्यथा जो थी। सारी रात रोते-रोते बीत गई। प्रभात की अरुण किरणों से गगन मण्डल लोहित हो चला, श्रीगोविन्द-मन्दिर में शनैः शनैः श्रीनिवास को विदा देने के लिए वैष्णवों का जमघट जुड़ने लगा, पेटियाँ गाड़ी में चढ़ाई जाने लगीं "जय श्रीराधागोविन्द" की उच्च ध्वनि से व्रजरज कण मुखरित होने के साथ गाड़ी मथुरा की ओर बढ़ चली।

गाड़ी के दोनों ओर राजसेवक और गाड़ी के ऊपर एक पूर्ण उत्तरदायी व्यक्ति को बिठाया गया, वैष्णवगण हरिनाम ध्वनि के साथ धीरे-धीरे गाड़ी के पीछे-पीछे चलने लगे, श्रीजीवगोस्वामी ने वृन्दावन के सीमान्त-प्रदेश पर सबों से वृन्दावन लौटने की प्रार्थना की और आप गाड़ी के साथ-साथ मथुरा से कुछ दूर तक गये।

गाड़ी निर्विघ्न तामड़, रघुनाथपुर, पंचकुटी, बृहद्भानुपुर होती हुई वनविष्णुपुर आकर रुकी, यह हल्ला मच गया कि इस गाड़ी में बहुत बड़ी धनराशि है जो वृन्दावन से बंगाल ले जाई जा रही है। वनविष्णुपुर का राजा वीरहम्बीर भीतर से बड़ा दुर्दान्त व्यक्ति था। इसका कार्य लूट, अपहरण और हत्या का था। इसने अपने ज्योतिषियों से गणना करा कर विशाल धनराशि गाड़ी पर है यह जान लिया। गाड़ीवानों को आधी रात बीती ब्रज के गीत, गाते-गाते हार थके तो वे थे ही गहरी नींद में सब सो गये, इधर राजा के अनुचरों ने गाड़ी अपने अधिकार में लेकर राजा को सौंप दी, राजा ने उन चोरों को विशाल धनराशि दे विदा किया और एकान्त में अपनी स्त्री को बुलाकर काठ की पेटियों को खोला। धनराशि के स्थान पर अमूल्य ग्रन्थ दर्शनमात्र से राजा की अन्तःकलिमा दूर हो गई। यह ग्रन्थ रत्न क्या धनराशि से कम थे? जो नींद खुली तो गाड़ी गायब, चारों ओर ढूँढा गया पर वह न मिल सकी। श्रीनिवास बहुत दुःखी हुये, सबों को बिदाकर आप गाड़ी को खोजने के लिये कुछ दिन वनविष्णुपुर रुके।

यहाँ ही आपको कृष्ण-वलराम नामक एक ब्राह्मण मिला जिसका कि राजपरिवार से घनिष्ठ सम्बन्ध था। उसके साथ आप राजभवन जा कर वीरहम्वीर से मिले। वीरहम्वीर ने श्रीनिवास का बहुत सत्कार किया और श्रीभागवत के भ्रमरगीत प्रसङ्ग की व्याख्या सुनाने को उनसे अनुरोध किया। श्रीनिवास की अद्भुत अपूर्व अमृतमय वाणी से भागवत रस का परिवेषण होने लगा। एक मास तक वनविष्णुपुर में आनन्द की प्रवल वन्या प्रवाहित हो चली, अन्तिम दिन राजा ने एकान्त में श्रीनिवान से अपने इस दुष्कृत्य की क्षमा याचना के साथ सारी अपहृत ग्रन्थ-पेटियाँ श्रीनिवास को समर्पित कर दीं। श्रीनिवास ने चरणनिपतित वीरहम्वीर को हृदय से लगाकर हृदय में शान्ति प्राप्त की। ब्रज की गाड़ी पुनः प्रसिद्ध देवालयों के लिये अपार धन-सम्पत्ति तथा अनुचरों के साथ ब्रज की ओर चल पड़ी। इधर श्रीनिवास

'जाजिग्राम' आकर अपनी माता से मिले। दिन बीतने लगे, गौडीय वैष्णवगण जो कुछ बचे थे वे भी धीरे-धीरे अन्तर्हित होने लगे। श्रीनरहरिठाकुर, दास गदाधर, श्रीविष्णुप्रियादेवी सभी तो अन्तर्हित होगये थे। विरह, विपत्ति, बाधाओं से श्रीनिवास का हृदय जलने लगा। एकदिन स्वप्न में श्रीअद्वैतप्रभु ने इन्हें श्रीगौडीय ग्रन्थों का प्रसारण एवं पाखण्डियों के दलन के साथ विवाह की आज्ञा दी।

श्रीअद्वैतप्रभु की आज्ञा से वैशाख कृष्णा तृतीया को श्रीगोपालचक्रवर्ती की सुलक्षणा कन्या द्रोपदी, जो बाद में ईश्वरी नाम से प्रसिद्ध हुई से इनका विवाह हुआ। अपनी पत्नी, श्वसुर तथा द्विज हरिदास के पुत्र श्रीदास गोकुलानन्द और 'कुमारनगर के' प्रसिद्ध कवि और चिकित्सक रामचन्द्र जो अपनी स्त्रीको विदा कराकर ला रहे थे को इन्होंने गोपालमन्त्रकी दीक्षा दी। इधर यहाँ श्रीनिवास वैष्णव छात्रोंको गोस्वामी ग्रन्थ पढाने, साथ में लाये हुए भक्ति-ग्रन्थों के शोधन एवं उनकी अनेक प्रतियां कराकर बंग देश में प्रचार के लिये प्रेषित करने लगे।

श्रीदास गदाधर के तिरोधान से व्यथित होकर एक बार फिर श्रीनिवास १६४१ वैक्रमीय वर्ष के लगभग मार्गशीर्ष मास में चल कर माघ शुक्ला बसन्तपञ्चमी को श्रीवृन्दावन पहुँचे वहाँ उन्होंने श्रीजीवगोस्वामी एवं अपने श्रीगुरुदेव के अन्तिम दर्शन किये। इसी समय उड़ीसा से श्रीश्यामानन्द भी आ पहुँचे। श्रीनिवास के बिना गौडदेश सूना सा लग रहा था अतः रघुनन्दन ठाकुर ने श्रीनिवास को बुलाने के लिये श्रीरामचन्द्र कविराज को वृन्दावन भेजा। दूसरे वर्ष वैशाख शुक्ला पूर्णिमा को श्रीराधारमण जयन्ती का दर्शन कर श्रीनिवास वृन्दावन से वनविष्णुपुर पहुँचे और वहाँ वीरहम्वीर से मिल कर पुनः जाजिग्राम आये।

जीवन के मध्य भाग में आपने नरोत्तमठाकुर एवं रामचन्द्र कविराज सहित नवद्वीप मण्डल की यात्रा श्रीचैतन्यदेव के प्रधान अनुचर ईशान के साथ की एवं श्रीजाह्नवीदेवी द्वारा वृन्दावनस्थ श्रीगोविन्दविग्रह के लिए प्रदत्त श्रीराधिका की मूर्ति तथा एक सहस्र मुद्रा गोविन्द के द्वारा वृन्दावन भेजने की भी व्यवस्था की।

आपने अपने श्रीगुरुदेव की स्मृति रक्षार्थ नाटच सङ्गीत परम्परा के अन्तर्गत एक सरस, सहज, नवीन 'गोपालभट्टी' राग शैली की भी संस्थापना की जो वैष्णव जगत् में 'गरानहट्टी' नाम से आज भी प्रचलित है।

स्वप्न में श्रीचैतन्यदेव के आदेश से श्रीगोपाल चक्रवर्ती की कन्या गौराङ्गप्रिया से आपने द्वितीय विवाह किया। इस विवाह से आपके एकाधिक सन्तानें हुईं जिनमें हेमलता[1] ठाकुरानी एवं वृन्दावनदास[2] नामक पुत्र ने समान रूप से वैष्णव धर्म प्रचार में बहुत बड़ी साधना की।

अन्त में १६८० वैक्रमीय के उपरान्त कार्तिक शुक्ला अष्टमी के दिन आपने निकुञ्जलीला में गमन किया। आपकी समाधि का दर्शन वंशीवट के समीप "आचार्यप्रभु-सेवित विग्रह" प्रांगण में हो रहा है।

श्रीमद्गोपालपदाब्जभृङ्ग !,
श्रीभक्तिरत्नप्रदानैकदक्ष !
श्रीमच्छचीनन्दनप्रेमरूप !,
पाहि प्रभो ! श्रीनिवास ! द्विजेन्द्र ! ॥

—भक्तिरत्नाकर प्रथम तरङ्ग ४

---

१. आचार्यप्रभुरसुता नाम श्रीहेमलता।
श्रीयदुनन्दनठाकुर। 'गोविन्दलीलामृतरस' व्याख्या।

२. वृन्दावनदासादिषु शुभानुध्यानम्।
स्वपरिकराणां श्रीवृन्दावनदासस्य कुशलं लेख्यम् किञ्चिदसौ पठति न वेति ?
श्रीजीवगोस्वामी द्वारा श्रीनिवासाचार्य के समीप प्रेषित पत्र।

पत्री मध्ये वृन्दावनदास जार नाम।
तेहो आचार्येर ज्येष्ठ नन्दन प्रचार ॥
पुत्र हईवा मात्रे व्रजे सम्वाद हईल।
श्रीजीवगोस्वामी हर्षे एई नाम थुईल ॥
भक्तिरत्नाकर चतुर्दश तरङ्ग।

अपने अन्तिम समय में—

श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी श्रीराधारमणदेव की अर्चना का समस्त भार श्रीदामोदरदास गोस्वामी को समर्पित कर अपने जीवन के अवशिष्ट क्षणों को [1] कभी श्रीराधाकृष्ण के मिलन-निकेत सङ्केत, जाववट की अपनी उस प्राचीन कुटी, वरसाने की नेह वरसाने वाली द्रुमलतायों के तले, नन्दीश्वर एवं गिरिगोवर्द्धन की गह्वर कन्दरायों, गोकुल महावन के कमनीय कछारों एवं कभी श्रीराधाकृष्णकुण्ड के मध्यभागस्थित अपनी भजनस्थली में रह कर अविरत गौरश्यामल तत्त्व का अभिचिन्तन, अष्टयामकालीन लीलायों का अनुस्मरण तथा श्रीहरिनाम सङ्कीर्त्तनरत हो विताने लगे।

इधर अपने प्रिय सुहृद् श्रीरूपसनातन गोस्वामी तथा पितृव्य श्री-प्रबोधानन्द सरस्वती की निकुञ्जलीला प्रवेशजनित विरह वेदना ने श्रीगोपा-लभट्ट गोस्वामी के मन प्राण को एक बार झकझोर कर रख दिया। वे सदा सर्वदा उनका स्मरण कर भावविगलित हो उठते। शनैः शनैः श्रीचैतन्य की वह व्रजस्थित विदेही वैष्णव-परम्परा विलुप्त हो चली चारों ओर एक वियोगविभीषिका की परिधि वृन्दावन को आच्छादित करने लगी,अब वे ऐका-न्तिक निष्ठ भावना से [2] वृन्दावनस्थित वेणुकूप के समीपवर्त्ती। योगपीठ'

१—सदा वास वृन्दावने, कभू कुण्ड गोवर्द्धने,
कभू वरसान नन्दीश्वरे।
कभू वा जावटे गिया, पूर्ववास निरखिया,
भासे महा आनन्द सागरे॥
श्रीगोकुल महावने, कभू रहे सुनिर्जने,
कभू प्रिय लोकनाथ पास॥

सङ्केत के स्वामी श्रीराधारमण हैं। जाववट, सङ्केत तथा श्रीराधाकुण्ड में श्रीराधारमणजी की कुञ्ज तथा श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी की भजनस्थली है।

१६६४ वैक्रमीय के' श्रीराधाकुण्ड की जमीन के फरमान' में श्रीराधारमणजी की कुंज का उल्लेख है जिस के साक्षी रूप में श्रीजनार्दनदास के हस्ताक्षर हैं। श्रीडा. नरेश वंसल का श्रीचैतन्य सम्प्रदाय परिशिष्ट पृष्ठ ५०३।

२—श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्ती के अनुसार रासारम्भ में श्रीकृष्ण अपनी प्रेयसी श्री-राधा के साथ निभृत लीला विलास के लिये व्रजाङ्गनायों के समक्ष अन्तर्हित

[1]की उस' [2]दोलस्थलीमें सतत निवास करते हुये अपने उपास्य श्रीराधारमण-देव की अपूर्व रूप लावण्य छटा का अवलोकन तथा समय-समय पर श्रीदामोदरदास गोस्वामी को गौडीय वैष्णव सिद्धान्त रहस्य, नामापराध, वैष्णवापराध, सेवापराध, के प्रति सदा सावधान एवं श्रीजी की सेवा में किसी भी प्रकार की त्रुटि न—होने पावे इसका भी निर्देश देते रहते।

वे इस जरा जर्जरित अवस्था में भी त्रिकाल यमुना स्नान, वृन्दावन परिक्रमा, गौड़ीय वैष्णवों के समुपास्य श्रीराधागोविन्द, श्रीमदनमोहन, श्रीगोपीनाथ विग्रहों के नित्य नियमित दर्शन एवं व्रजवासियों के घरों से लाई हुई माधुकरी का कुछ अंश श्रीराधारमणजी के प्रसाद का एक कण मात्र मिला कर एकवार ग्रहण करते, अहर्निश भजन साधन एवं श्रीहरिनामसङ्कीर्त्तन में ही उनके सात प्रहर बीतते थे, 'एक प्रहर मात्र सोते किसी दिन वह भी नहीं अन्त में[3] १६४३ वैक्रमीय वर्ष की श्रावण कृष्णपञ्चमी को वह देदीप्यमान दिव्य ज्योति प्रभा प्रकाश जिसने विश्व के कण-कण को अपनी

हो गये थे,उस समय श्रीराधा की पिपासा शान्ति के लिये रासस्थली में श्रीकृष्ण की वेणु वादन द्वारा 'वेणुकूप' का निर्माण हुआ था। यहाँ 'वेणुकूप' की स्थिति व्रह्मकुण्ड के समीप वतलाई गई हैं। श्रीराधारमण-परिसरस्थित विशाल कूप ही प्राचीन 'वेणुकूप' है।

व्रजरीतिचिन्तामणि २।८१

१—पुनि श्रीराधारमणजी की 'योगपीठ' है वहाँ ही। श्रीगोपालकवि

२—दोलस्थली याऽति विचित्रशिल्पा।

व्रजरीतिचिन्तामणि २।८१

दुर्राराधा राधारमणविलासा ये ये मधुरा दोलोत्सवलीलालि—मवितुर्मति। श्रीवृन्दावन एव कापि बलते दोलोत्सवस्य स्थली॥

'श्रीकविकर्णपूर, आनन्दवृन्दावनचम्पू २२।१-२ रचनाकार का समय १६३० वैक्रमीय

तहीं हिण्डोल की सुठोर हरि झूलत डोल तहाँ ही। श्रीगोपालभट्ट चरित्र—श्रीगोपालकवि.

श्रीराधारमण झूलत हैं डोल। श्रीगुणमंजरीदास

३—इमि राखि देह छियासी बरस भट्टगोपाल हिय धारि हरि।
सावन कृष्णा तिथी पञ्चमी सौलेसे तेंतालीस बर॥

—श्रीगोपालकवि कृत श्रीगोपालभट्ट चरित्र।

स्वयम्भू श्रीराधारमणप्राकट्य-स्थल (दोल-स्थली)

वैदुषी से प्रभासित किया था रासस्थली की रज में विलीन हो गया।

प्रतिवर्ष श्रावण कृष्णा पञ्चमी को श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी की तिरोभाव तिथी पर तीन दिवस व्यापी यह उत्सव विशेष समारोह के साथ मनाया जाता है। वैष्णवों की अविराम 'खोल' 'करताल' मिश्रित उच्चस्वरीय ध्वनि एवं श्रीमद्भागवत के—

'सत्यं परं धीमहि'। १।१

तथा गायत्री मन्त्र के—

'धियो यो नः प्रचोदयात्'।

उस सत्य स्वरूप परतत्त्व की ध्यान परम्परा के अनुसार इस उत्सव को 'धियो-धियो कहते हैं।

षष्ठी के दिन प्रातः श्रीवृन्दावन में एक विराट् नगर सङ्कीर्त्तन निकलता है, जिसमें बिना किसी सम्प्रदायगत भावना के रसिक भागवत जन समूह सम्मिलित होता है। श्रीवृन्दावनीय वैष्णवों के अनेक संस्थानों विशेषतः स्थानीय सुप्रसिद्ध श्रीरामानुज सम्प्रदाय के प्रधानपीठ 'श्रीरङ्ग-मन्दिर' से भी इस नगर सङ्कीर्त्तन का पुष्प, माला, चन्दन द्वारा स्वागत किया जाता है। 'श्रीरामानुजपीठ' के स्वागत का मुख्यतम कारण श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी की दक्षिणदेश-निवासिता तथा इस परिवार के प्रमुख आचार्य श्रीगोपीलाल गोस्वामी तथा श्रीसखालाल गोस्वामी की 'श्रीरङ्ग-मन्दिर' के आदि संस्थापक श्रीरङ्गाचार्यजी महाराज पर पड़ा हुआ वैदुषी तथा सख्यता का प्रभाव था।

श्रावण वदी पांचे को उत्सव होत तँह आगे।
श्रीगोपालभट्टजू को उत्सव तँह ता दिन होई॥
तँह गौडीय समाज कीरतन करत प्रेम करि सोई।
बड़ो होत घमसान जँह सब ब्रजवासी जुरि आमें॥
दरसन करिके तँह समाधि को मनवाञ्छित फल पामें।

श्रीगोपाल कविकृत श्रीगोपालभट्ट चरित्र।

निकुञ्ज प्रवेश के पश्चात् श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी [1]'जवाकुसुम के समान लाल वसनधारिणी, विद्युत् वर्णोज्वला सदा सर्वदा श्रीकृष्ण की आमोद तथा कृपा की अपेक्षाकारिणी [2]गुणगणाराधित [3]'गुणमञ्जरी' के रूप में श्रीवृन्दावन की नित्य नव निभृत निकुञ्ज विहार सौन्दर्य सुषमा का सन्दर्शन कर श्रीराधारमण युगल स्वरूप की सतत आराधना करने लगे।

श्रीकृष्ण लीलाकालीन वट वृक्ष के बीजांश से समुद्भूत विशाल वट वृक्ष वेदिका के समीप श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी की [4]समाधि का सन्दर्शन आज भी भव तापतापित जनों के स्वान्तः स्थल को अपनी चान्द्रमसी सुधा धारा शीकरों से सुशीतल कर रहा है।

श्रीराधारमण भट्टगोपाल।
श्रीवृन्दावन नित्यविहार॥

श्रीमद्गौरपदारविन्दमधुप ! श्रीभट्टगोपाल हे !,
मायावादतमः प्रभाकर ! कृपासिन्धो ! द्विजेन्द्र ! प्रभो !।
श्रीमद्वेङ्कटभट्टनन्दन ! महासद्भक्तिभूषाढ्य हे !,
संसारामयमर्दनप्रणतहृन्मोदप्रद ! त्राहि माम् ॥

—श्रीनरहरिचक्रवर्त्ती, भक्तिरत्नाकर २।२

✤

१—जवानिभदुकूलाढ्यां तडिद्वालितनुच्छविम्।
कृष्णामोदकृपापेक्षां भजेऽहं गुणमञ्जरीम्॥

साधनामृतचन्द्रिका।

२—गुणाराधितराधायाः पादयुग्मे रतिर्मम।

श्रीरघुनाथदासगोस्वामिकृत व्रजविलासस्तव।

३—अनङ्गमञ्जरी यासीत् साद्य गोपालभट्टकः।
भट्टगोस्वामिनं केचिदाहुः श्रीगुणमञ्जरीम्॥

श्रीकविकर्णपूरकृत श्रीगौरगणोद्देशदीपिका।

४—तिहि गोपालभट्ट गोस्वामी की समाधि एक जानों।

श्रीगोपालकविकृत श्रीगोपालभट्ट चरित्र।

श्रीगोपालभट्टगोस्वामी --
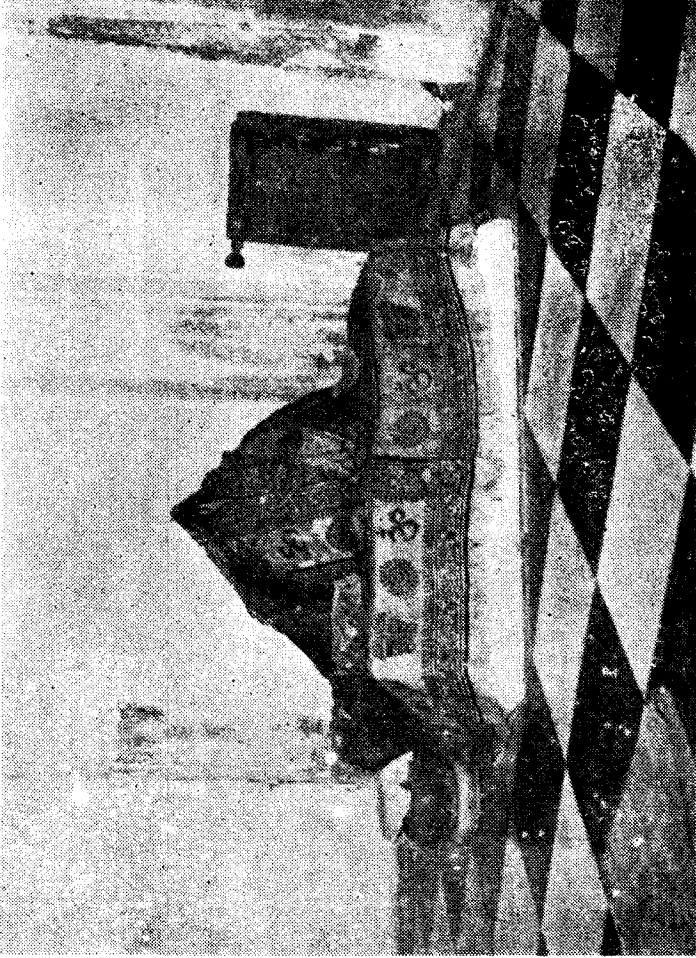
श्रीमद् गोपालभट्टगोस्वामी-समाधिमन्दिर

स्तवक पञ्चक

निरवधि हरिभक्तिख्यापने यस्य शक्तिः,
सतत सदनुभूतिर्नश्वरार्थे विरक्तिः।
प्रभुवरगतिसौभाग्येन विख्यातपट्टः,
स्फुरतु स हृदि मे गोस्वामिगोपालभट्टः ॥१॥

व्रजभुवि गुणमञ्जर्याख्यया यः प्रसिद्धः,
कलिजनकरुणाविर्भावकेन प्रयुक्तः।
मधुररसविशेषाह्लादविस्तारणाय,
स्फुरतु स हृदि मे गोस्वामिगोपालभट्टः ॥२॥

अविरलगलदश्रुस्वेदाधाराभिरामः,
प्रचुरपुलककम्पस्तम्भ उच्चार्य नाम।
ह ह ह ह हरिरित्याद्यक्षरात् योऽनन्तचेताः,
स्फुरतु स हृदि मे गोस्वामिगोपालभट्टः ॥३॥

व्रजगतनिजभावास्वादमास्वाद्यमात्तम्,
नटति हसति गायत्युन्मदं-विभ्रमाढ्यः।
कलितकलिजनोद्धाराज्ञया वाह्यहृष्टः,
स्फुरतु स हृदि मे गोस्वामिगोपालभट्टः ॥४॥

विदितपदपदार्थः प्रेमभक्तेः रसार्थः,
श्रितरतिरसभेदास्वादने यः समर्थः।
इदमखिलतमोघ्नः स्तोत्ररत्नं प्रधानं,
पठति भवति सोऽयं मञ्जरीयूथलीनः ॥५॥

इति श्रीकृष्णदासकविराजकृत श्रीगोपालभट्ट गोस्वामिनः
स्तवपञ्चकः समाप्तः

श्रीमदनन्दनकृत कर्णानन्द पञ्चम निर्यास

श्रीगोपालभट्टाष्टकम्

द्विजवरकुलचन्द्रो भट्टवंशप्रदीपः
सुभगसुनसदीर्घो दिव्यचन्द्रास्यहासः ।
अविरत-गलधारं नेत्रयुग्मं वहन् यः
परमपतितमीशः पातु गोपालभट्टः ॥१॥

जितकरिगतिभङ्गी नाट्यसङ्गीतरङ्गी
तनुभृतजनचित्तानन्दवर्द्धी सुधीरः ।
हरिचरितविलासश्चित्तचातुर्यभाषः
परमपतितमीशः पातु गोपालभट्टः ॥२॥

व्रजभुवियुवराजप्रेमपीयूषवासी
तनुरुहव्रणसङ्गैः कण्टकाकारदेहः ।
गिगिगिगि गिरिधारिन् गद्गदैर्वाग्विरोधः
परमपतितमीशः पातु गोपालभट्टः ॥३॥

वरतनुगुणशाली श्यामाधामा सुवेशः
प्रचलितचलचिल्लीचारुनेत्रारविन्दः ।
भुजयुगफणिराजःकक्षवक्षः प्रभो यः
परमपतितमीशः पातु गोपालभट्टः ॥४॥

गणयति गुणनाम्नो राधिकामाधवस्य
स्मरति मधुरवेशं गौरगोपालकस्य ।
भजति मधुरलीलावीथिपूर्वापरं यः
परमपतितमीशः पातु गोपालभट्टः ॥५॥

सकलगुणगभीरः सर्वशास्त्रार्थधीरो
द्रविडपुरनिवासी पण्डितो वावदूकः ।
विपुलपुलकभावैर्वेष्टितो दिव्यदेहः
परमपतितमीशः पातु गोपालभट्टः ॥६॥

सुमधुरधुरवेशः प्रेमदात्रैकशेषः
सुजनजनसमूहे स्व-स्वभावप्रकाशः ।
गरिममहिमसङ्घादग्रगण्यो महान् यः
परमपतितमीशः पातु गोपालभट्टः ॥७॥

युगरघुवररूपः साग्रजश्रीलरूपो
यदुपरि समभावः सः श्रीगोपालभट्टः ।
सरयुगतटप्रान्ते श्रीलराधैकबन्धोः
परमपतितमीशः पातु गोपालभट्टः ॥८॥

यः पठेत् श्रावयेद्वापि भट्टाष्टकमहर्निशं ।
स लभेत् परां प्रीतिं राधामाधवयोः पदे ॥९॥

इति श्रीकविकर्णपूर गोस्वामि-विरचितं
श्रीमद्गोपालभट्टाष्टकम् ॥

श्रीगोपालभट्ट गुणावलि

श्रीगोपालभट्ट प्रभु, तुआ श्रीचरण कभू,
देखिव कि नयन भरिया ॥१॥
सुनिया असीम गुण, पांजारे विधिल मन,
निछनि दिया जाईवे मरिया ॥२॥
प्रीति गड़ल तनु, दशवाण हेम जनु,
चांद मुख अरुण अधर ॥३॥
प्राणेर प्राण जार, रूप सनातन आर,
रघुनाथ युगल जीवन ॥४॥
पण्डित कृष्ण, लोकनाथ, जाने देह भेद मात्र,
सर्वस्व श्रीराधारमण ॥५।
प्रेमेते विथार अङ्ग, चैतन्य चरण भृङ्ग,
श्रीनिवासे दयार अधीन ॥६॥
सभे मेलि रसास्वाद, भव भावे उन्माद,
एई व्यवसाय चिर दिन ॥७॥
लीला सुधा सुरधुनी, रसिक मुकुटमणि,
रसावेशे गद्गद हिया ॥८॥
अहो अहो रागसिन्धु अहो, दीनजन वन्धु,
यश गाय जगत् भरिया ॥९॥
हा ! हा ! मूर्त्ति सुमधुर, हा ! हा ! करुणार पूर,
हा ! हा ! चिन्तामणि गुण खानि ॥१०॥
हा ! हा ! प्रभु एक वार, देखाह माधुरी सार,
श्रीचरणकमल लावनि ॥११॥
अनेक जन्मेर परे, अशेष भाग्येर तरे,
तूआ परिकर पद पाइया ॥१२॥
निज करमेर दोषे, मजिनू विषयरसे,
जनम गवाईनु खोलि खाईया ॥१३॥
अपराध पड़े मने, तथापि तोमार गुणे,
पतित पावन आशावन्ध ॥१४॥
लोभेते चञ्चल मति, उथलिले नाँही गति,
पुकारे मनोहर मन्द ॥१५॥

श्रीगोपालभट्टपरिकरस्थित श्रीमनोहरदास

॥ श्रीराधारमणोजयति ॥

* जयगौर *

श्रीगोपालभट्ट-चरित्र

आरे मोर प्रेमालय, परमकरुणामय,
श्रीगोपालभट्ट भू माझार ॥१॥
सकल सद्गुण खनि, विप्रवंश शिरोमणि,
श्रीवेङ्कटभट्टेर कुमार ॥२॥
श्रीगौराङ्गेर प्रिय अति, अद्भुत भजन रीति,
जगते विदित कीर्त्ति जार ॥३॥
अल्प काले महा भक्ति, के बुझिते पारे शक्ति ?,
सदा कृष्णरसे मतोयार ॥४॥
दक्षिण भ्रमणकाले, प्रभु चारिमास छले,
त्रिमल्ल वेङ्कट गृहे स्थिति ॥५॥
तथा निज नाथे पाईया, परम आनन्द हईया,
पितार आज्ञाय सेवे निधि ॥६॥
शचीसुत गौरहरि, परम करुणा करि,
प्रिय भट्ट गोपाल तरे ॥७॥
प्रेमामृत पिआईया, निज तत्त्व जानाईया,
भासाईला आनन्द सागरे ॥८॥
पुनः प्रभु गौरहरि, भट्टेर करे ते धरि,
कहे किछु मधुर वचन ॥९॥
तुआ प्रेमाधीन आमि, शीघ्र व्रजे जाव तूमि,
तहाँ पावे रूप सनातन ॥१०॥
सुनिया प्रभुर वाणी, विच्छेद हईवे जानि,
तिलेक धैर्य नाँही बान्धे ॥११॥

मुखे ना निसरे कथा, सदाई अन्तरे व्यथा,
ओ राङ्गा चरणे पड़ि कान्दे ॥१२॥
पुनः प्रभु गौरहरि, प्रिय भट्ट कोले करि,
सिञ्चिया श्रीनयनेर जले ॥१३॥
वहु रूपे प्रबोधिया, भट्ट मुख पाने चाहिया,
कातर अन्तरे प्रभु चले ॥१४॥
श्रीवैङ्कटभट्ट त्रिमल्ले, आश्वासिया वारे वारे,
दक्षिण भ्रमणे प्रभु गेला ॥१५।
एथा कत दिन परि, गृह सुख परिहरि,
श्रीगोपालभट्ट व्रजे आईला ॥१६॥
प्रभु आसि पुरुषोत्तमे, जवे गेला वृन्दावने,
ताँहा हईते आसिवार काले ॥१७॥
पथे रूप सनातन, जबे आईला वृन्दावन,
भट्ट गोस्वामी मिलिल सवार ॥१८॥
प्रभु प्रिय लोकनाथ, मिलिला सभार साथ,
सबे मिलि गौर गुण गाय ॥१९॥
नीलाचले गौराङ्ग, विहरे भक्त सङ्ग,
सुनिला श्रीभट्ट व्रजे गेला ॥२०॥
महाप्रभु प्रेमभरे, श्रीगोपालभट्ट तरे,
डोर वहिर्वास पाठाइला ॥२१॥
सभा सह सनातन, डोर बहिर्बास धन,
पाईया आनन्द उर्थालल ॥२२॥
केह नाचे केह गाय, केह प्रेमे गडि जाय,
चारदिके क्रन्दन उठिल ॥२३॥
कथो क्षणे स्थिर हईया, डोर वहिर्वास लैया,
समर्पिला गोपालभट्ट रे ॥२४॥
डोर, वहिर्वास, पट्ट, पाईया गोपालभट्ट,
नियम करिया सेवा करे ॥२५॥

*   के वलिव सेवार कथा ?
अझोरे दूई नयन झूरे ।
प्रभुर डोर वहिर्वास हेरे, दू नयने वारि झरे,
एकवार शिरे धरे ।
कभू वा वूके ते घरे, कभू वा नयन तरे,
गौर अङ्ग सङ्ग भोग करे ।
एई ड़ोर, वहिर्वास, पट्ट, प्रेमेते गर गर भट्ट,
वाहु पसारि जड़ाय धरे ।
आर त छेड़े दिव ना,
गौर सङ्ग मने पड़े ।
दाक्षिणात्य निजघरे, गौर सङ्ग मने पड़े ।
चित चोर प्राण गौर, आर कि देखिते पाव हे ।
कावेरी तीरेर गौर, आर कि देखिते पाव हे ।

गौराङ्गेर गुण गाने, दिवानिशि नाँही जाने,
श्रीरूप सभाय सदा स्थिति ।।२६।।
गोस्वामी श्रीसनातन, सङ्गे सुख अनुक्षण,
के वूझिवे दोहार प्रीति ? ।।२७।।
गोस्वामीर वैराग्य जत, ताहा वा कहिव कत,
जार प्रेमाधीन जानाईते ।।२८।।
श्रीराधारमण लीला, आपने प्रकट हईला,
श्रीशालग्राम शिला हईते ।।२९।।

*   गोपालभट्टेर जागिल प्राणे ।
एई श्रीशालग्राम मूर्त्ति, यदि हईत श्रीविग्रहरूपी,
साजाईताम प्राण भरे ।
नाना आभरण दिया, पीत वस्त्र पहराईया,
साजाईताम प्राण भरे ।
श्रीगोपालभट्ट प्रीते,
राधारमण हईलेन प्रकट शिला हईते ।
सवाई प्राणे जेनो भाई !
ओ तो एकला कृष्ण नय,
नामे आछे ओर परिचय ।

ताई ते राधारमण नाम,
राधा सने मिलित रमण श्याम,
ताई ते राधारमण नाम,
श्रीराधा द्वारे रमित जखन, श्रीराधारमण नाम तखन ।
राई सम्पुट श्याम वटे, श्रीराधारमण नाम ताई रटे
राधारमण वटे श्रीगौराङ्ग ।
प्राणे प्राणे भोग कर ।
ताई ते प्रियाजी नाई,
राधारमण पासे भाई ! अति गूढ़ कथा ताई,
राधा सने जड़ित सदाई ।
ताई ते प्रियाजी पासे नाई,
गौर हईला राधारमण रूप ।
गोपालभट्टेर प्राण-स्वरूप, गौर हईला राधारमणरूप,
जडित मूर्त्ति भोग करे ।
भट्ट गोस्वामी राधारमण हेरे,
घन घन नेत्र झरे ।
घरेर कथा मने पड़े, परमानन्द क्षणे क्षणे
श्रीराधारमण मुख पाने चाय
गोविन्द मुखेर रति, मदनमोहन पद द्युति,
गोपीनाथ वक्षेर लावनि,
त्रिमूर्त्ति मिलित रूप, गौर स्वरूप अनुरूप,
देखिया धैर्य नाँहि वान्धे
हईया विह्वल भासे, श्रीराधारमणेर पासे,
गोपालभट्ट घन घन कान्दे ।
गोपालभट्ट सेवे सदाय,
राधारमण प्राण गौराय,
ताई वलि श्रीराधारमण गौराङ्ग ।

श्रीराधारमणविने, अन्य किछु नांही जाने,
श्रीराधारमण प्राण जार ॥३०॥
सदा गौर गुणे मत्त, वाखाने भक्ति तत्त्व,
हेन कि वैराग्य हय आर ॥३१॥

सदा वास वृन्दावने, कभू कुण्ड, गोवर्द्धने,

कभू वरसान, नन्दीश्वरे ॥३२॥

कभू वा जावटे गिया, पूर्व वास निरखिया,

भासे महा आनन्द सागरे ॥३३॥

श्रीगोकुल, महावने, कभू रहे सुनिर्जने,

कभू प्रिय लोकनाथ पास ॥३४॥

एई रूपे फिरे रङ्गे स्नेह व्रजवासी सङ्गे,

भक्तिदाने परम उल्लास ॥३५॥

गुण कि वलिव आर, कृपा कर एई वार,

श्रीनिवास आचार्येर प्रभु ॥३६॥

'नरहरि' अकिंचन, ओ पदे सोंपिल मन,

ए अधमे ना छाँडिबा कभू ॥३७॥

—श्रीनरहरि चक्रवर्त्ती

※ श्रीगौरकृष्ण-गतप्राण श्रीरामदास बाबाजी महाराज ।

रसरागमयी-उपासना

माध्वगौडेश्वर सम्प्रदायानुयायी वैष्णवजन जिस अष्टयामकालीन श्रीराधाकृष्ण की ललित लीलाओं का अनुस्मरण करते हैं उसका मूलगत आधार पद्मपुराण के पातालखण्ड का २५वां अध्याय तथा सनत्कुमार संहिता का वह भाग है जिसमें ऐश्वर्य-गन्धहीन माधुर्य भाव की विशेषरूपेण परिवर्णना की गई है।

प्रीति के प्रकल्पों में जब ऐश्वर्य का समावेश हो जाता है तब वास्तविक आनन्द की अनुभूति नहीं होती। गोलोक की सम्पूर्ण लीलओं में ऐश्वर्य का प्रकाश है अतः आनन्द की परिकल्पना व्यर्थ ही नहीं परमार्थ का उपहास है।

परिपूर्ण शाश्वत आनन्द माधुर्य भावना में ही अनुस्यूत है जिसका विकास व्रज के अतिरिक्त और कहीं नहीं है इसीलिये गौडीय वैष्णव ग्रन्थों में उपास्य स्वरूप—

'व्रजे व्रजेन्द्रनन्दन स्वयं रूप'
'नटवरवपु ताहार स्वरूप'
'गोपवेश, वेणुकर, नवकिशोर, नटवर'

पूर्ण माधुर्यभाव परिपूरित व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण की परिवर्णना की गई है। श्रीकृष्ण के असमोर्द्ध्व, अनन्त, माधुर्यभाव के विकास में उनकी नित्य आह्लादिनी शक्ति रसराज महाभावस्वरूपा श्रीमती राधिका का बहुत बड़ा अंश है।

गौडीय वैष्णवजनों की उपासना केवल श्रीकृष्णपरक नहीं है, न गोपीभाव अर्थात् कान्ताभाव से श्रीकृष्ण की उपासना ही उन्हें अभिप्रेत है, उनकी आराधना का वास्तविक उत्स गौर श्यामल, तेजोदीप्त, युगल विग्रह, श्रीराधाकृष्ण हैं जिनकी नित्य सखीगणानुगता, श्रीराधाकृष्णाराधन तत्परा, सर्वाङ्ग-सौन्दर्य-सौगन्ध्य-स्वरूपा मञ्जरीगण संसेवना करती रहती हैं।

ये वे व्रजेश्वर की सखियां हैं जिन्हें—

'निजेन्द्रिय सुख वाञ्छा नाहीं गोपिकार'।

अपने जीवन के सुख-दुःख का तनिक भी विचार नहीं है उनके सुख का मूलगत आधार श्रीकृष्ण हैं जिनकी आराधना में वे निरालस्य भाव से सदा तत्पर रहतो हैं।

इस व्रजवधूवर्गप्रकल्पित माधुर्य रागरसोपासना को रसोल्लासरूप की दृष्टि से परकीया भावना में सम्पुटित कर सर्वप्रथम प्रसारण श्रीमन्महाप्रभु चैतन्यदेव ने किया और उनके ही अनुमतजनों द्वारा व्रज वृन्दावन में इसका पूर्णतम विकास हुआ।

※ व्रज के चतुर्थ विशिष्ट श्रीराधारमण विग्रह की नित्योपासना में श्रीचैतन्यदेव के स्वारहस्य सिद्धान्तों को दृष्टिकोण में रखते हुए श्रीगोपाल-भट्ट गोस्वामी ने गौड़ीय सम्प्रदाय के मूर्द्धन्य आचार्य श्रीमाधवेन्द्रपुरीपाद-निर्दिष्ट यशोदोत्संगलालित श्रीगोपाल विग्रह की प्रचलित सेवा प्रणाली के कुछ अंशो को भी मान्यता दी साथ ही वैदिक, पौराणिक, एवं लौकिक रीतियों का अनुसरण कर इसे महाराजोपचार का भी नवायित स्वरूप दिया।

इस निर्दिष्ट सेवा के अनुसार अर्चक प्रातः प्रणतिपूर्वक तीन बार ताली बजाकर मन्दिर में प्रवेश करता है। तीन बार ताली बजाने का मुख्य कारण यह है कि एक बार निकुन्ज मन्दिर में श्रीराधिका की समस्त रात्रि मान-अवस्था में बीत गई, सखियाँ मनाते मनाते थक गईं।

प्रिये ! यह स्वर्णिम रात्रि कुछ क्षणों में ही बीत रही है, चन्द्र अपनी ज्योत्स्ना को अपने में ही समेट कर भाग रहा है। इस स्नेह परिपूरित दीपक की बत्तियाँ भी आलस्यभावरूपी मानव की भाँति इधर से उधर झुकी जा रही हैं, मान का समापन तो प्रणामान्त कहा गया है अब कृपा कर उदा-रता से—

'देहि मे पदपल्लवमुदारम्'

अपने श्रीचरणों की सेवा मुझे दीजिए। श्रीकृष्ण के इन नम्र वाक्यों से भी श्रीराधा का हृदय न पसीजा। अर्चक ने जैसे ही कपाट खोले, इस अलौकिक दृश्य को देखकर वह मूर्च्छित हो गया और इसी अवस्था में वह निकुञ्जलीला प्रविष्ट हो गया, तभी से ताली बजाकर मन्दिर में प्रविष्ट होने की परम्परा है।

जिस प्रकार श्रुतियाँ योगनिद्रागत भगवान् को जगाने के लिए उनके त्रिगुणातीतत्त्व का प्रतिपादन करती हैं उस त्रिगुणातीतत्त्व भावनाको साकार स्वरूप देते हुए प्रज्वलित तीन वत्तियों से गरुड़चिह्नांकित घण्टा बजा-कर मंगला आरती की जाती है। इस समय शङ्ख से निर्मंच्छन नहीं किया जाता।

※ चौथे राधारमण भट्टगोपाल लड़ाये। —भगवत् रसिक

दन्तधावन, सुगन्धिलेपन, वैदिक मंत्रों से, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, मधु-पर्क, पुनराचमन विधि के पश्चात् ग्रीष्म में शीतल तथा शीत में उष्ण जल से श्रीविग्रह को स्नान कराया जाता है। स्नान के पश्चात् ललित तिलक, शृङ्गार कर

'एक: वशी सर्वग: कृष्ण इड्य:'

के अनुसार सुगन्धित धूप निक्षेप कर प्रज्वलित एक वत्ती से नाभिप्रदेश-पर्यन्त धूप आरती की जाती है। उसके पश्चात् तुलसीदल-मिश्रित * मीठे, नमकीन पकवान, फल, मोहनभोग, माखन मिश्री, मेवा, दूध, दही तथा बारह तत्काल निर्मित खीरसा कुल्हियाओं का भोग श्रीजी को निवेदन किया जाता है। श्रीराधिकारमण-विग्रह एवं शालग्राम-स्वरूप विग्रहों के भोग पश्चात् यह प्रसाद श्रीराधिका-स्वरूप विग्रह तदनु श्रीचैतन्यदेव प्रदत्त पट्टा स्वरूप श्रीगोपालभट्टगोस्वामी को समर्पित किया जाता है। प्रत्येक भोग के पश्चात् ताम्बूल अर्पित किया जाता है।

पञ्चतत्त्वात्मक देहगत भाव को भुलाकर साधनस्वरूप तथा श्रीगौर, नित्यानन्द, अद्वैत, गदाधर, श्रीवासरूप पञ्चतत्त्व को उपलक्षित कर प्रज्व-लित पाँच वर्तिकायों से चार बार श्रीचरण, एक बार तल प्रदेश, दो बार नाभि तथा एक बार श्रीमुखमण्डल एवं सप्त बार सर्वाङ्ग विधि से शृङ्गार आरती सम्पन्न होती है। शङ्ख जल से निर्मंच्छन होने के पश्चात् चमर, दर्पण, छत्र, श्रीचरण एवं पादुका स्पर्श कर प्रसाद वितरण होता है।

कच्ची रसोई प्रस्तुत होने पर श्रीजी भोजनालय में पधारते हैं और भोग लगने के पश्चात् पाँच प्रज्वलित वर्तिकायों से उनकी सनिर्मंच्छन राज-भोग आरती सम्पन्न होती है और वे मध्याह्न में श्रीराधाकुण्ड लीला भावना से शयनकुञ्ज कक्ष में पधारते हैं।

कुछ दिन शेष रहने पर अर्चक पुन: स्नान कर गर्भ मन्दिर में प्रविष्ट हो श्रीविग्रह को सिंहासनासीन कर प्रज्वलित एक वर्तिका और सुगन्धित धूप से 'उत्थापन-आरती' करता है। फल, मेवा, मीठे, नमकीन पकवान,

* श्रीराधारमणदेव के भोग में जितनी सामिग्री प्रस्तुत होती है वह सब भोग में आती है। 'कुछ अन्य मन्दिरों की भाँति थोड़ी सी सामिग्री थाल में रख भोग लगा कर उस प्रसाद को अमनिया में मिला उसे 'प्रसाद-स्वरूप देने' की हमारे यहाँ परम्परा नहीं है। सम्पूर्ण सामिग्री यमुना जल से ही प्रस्तुत होती है। पूरी, कचौड़ी, कुल्हिया, साग आदि बासी सामिग्री भोग में नहीं आती है।

कुल्हिया आदि भोग सामिग्री अर्पित की जाती है एवं भोग उसरने के पश्चात् पुनः दर्शन खुलते हैं।

सन्ध्या होने पर श्रीकृष्ण गोचारण से अपने घर लौटते हैं अतः नन्दालय के सिंहद्वार पर पुत्र-प्रेम-वत्सला माँ श्रीयशोदा अपने लाल पर नव-निधियाँ न्योछावर करती है, इसी भावना को दृष्टिकोण में रखकर प्रज्वलित नौ वर्त्तिकाओं द्वारा 'सन्ध्या आरती' सम्पन्न होती है। शङ्ख जल से निर्मच्छन किया जाता है।

श्रीगोपीनाथदास गोस्वामी विरचित 'सन्ध्या आरती' तथा वंग भाषा पद गान के पश्चात् पर्दा आता है।

ऋतु के अनुसार शीतल एवं उष्ण जल से श्रीविग्रह का अंग मार्जन, सुगन्धित इत्र लेपन के पश्चात् अल्प मुक्ताभरण एवं कौपीनमात्र धारण करा पुनः सिंहासनासीन कराया जाता है। 'ओलाई' के विशेष दर्शन के रूप में श्रीजी भक्तों को दर्शन-सुख देते हैं।

परिश्रान्त लाल को विशेष रूप से क्षुधा लगती है अतः 'ओ लाल ! लाई' इस भावना से 'ओलाई के दर्शन खुल गए' यह उच्च ध्वनि होती है। ५६ प्रकार की अनसखरी सामिग्री श्रीजी के 'व्यालू भोग' में अर्पण की जाती है। 'श्रीराधारमण व्यालू कीजे'—

पद गान के पश्चात् पुनः दर्शन खुलते हैं। 'भोग के दर्शन खुल गए' यह उच्च ध्वनि फिर होती है। इसे ही श्रीमाधवेन्द्रपुरीपाद प्रतिष्ठित सेवा परम्परा के अनुसार 'हेला' कहते हैं।

प्रायः सब सम्प्रदाय के भगवद्विग्रहों को व्यालू भोग के साथ ही दूध भोग अर्पण करने की प्रथा है किन्तु श्रीराधारमण मन्दिर में पृथक् दूध भोग अर्पण का विधान है और इसी प्रथा के अनुसार पृथक्रूपेण 'दूध भोग' के विशेष दर्शन होते हैं।

इसीप्रकार की एक विशेष प्रथा 'श्रृंगार' से पूर्व 'ग्वाल' दर्शन का प्रचलन श्रीबल्लभ सम्प्रदाय के श्री विग्रहों के दर्शन में भी है।

श्रीजी की निद्रा में वाधा न हो इस भावना से मृदु मधुर घन्टादि वाद्य ध्वनि के मध्य श्रीराधाकृष्णद्युतिसम्वलित, श्रीगौरचन्द्र त्रिस्वरूप, एकत्रित श्रीराधारमण देव की तीन प्रज्वलित वर्त्तिकायों से 'शयन आरती सम्पन्न होती है। श्रीजी एक मात्र कौपीन धारण कर शयन कक्ष में पधारते हैं।

श्रीमन्महाप्रभु चैतन्यदेव ने अपने अन्यतम शिष्य श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी को अपनी प्रसादी कौपीन प्रदान की थी और वे ही कौपीनधारी 'गौर हुये राधारमण' निद्रालस्य-भाव से शयन कक्ष में पधार रहे है अतः उस स्मृति को चिरस्थायी रूप देने के लिये श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी ने श्रीजी को कौपीन धारण कराने की परम्परा का प्रचलन किया।

प्रायः शय्या पार्श्व में चार लड्डू रखनेकी परम्परा गौड़ीय एवं अन्यान्य सम्प्रदाय के मन्दिरों में हैं किन्तु इसका निर्वाह श्रीराधारमण मन्दिर में नहीं होता, यहाँ केवल शय्या पार्श्व में दो ताम्बूल तथा एक सजल मृत्पात्र (करुआ) रखने का विधान है।

श्रीचैतन्यदेव ने ही सर्वप्रथम व्रज में अपने कन्था करंगियाधारी वैष्णवों को रहने की आज्ञा दी थी और इसी आज्ञा का अनुसरण श्रीगोपालभट्ट भी करते थे,'धातु पात्र का स्पर्श उनके लिये वज्र से भी अधिक वेदनादायक था, वे सदा इस मृत्पात्र 'करंग' अर्थात् 'करुआ' को अपने पास रखते थे।

वे श्रीमन्महाप्रभु के विभिन्न स्थानों से आगत वैष्णवों के लिए स्वादिष्ट भोजन तथा सुन्दर परिधान सर्वथा निषिद्ध है,उनका सम्बल तो एक मात्र कन्था और करंग है का उपदेश देते थे।

भक्तवत्सल ! नाथ! मेरे समीप आपको देने के लिये कुछ भी नही हैं, मैं तो आपकी आज्ञा के अनुसार—'जो मुझे एक तुलसी पत्र तथा तनिक सा जल देता है मैं जन्म जन्मान्तरों के लिये उसके हाथ विक जाता हूँ।'

यह तुलसीदलमिश्रित करुआ में रखा हुआ जल ही तो मेरा सम्बल है जो मैं आपको समर्पित कर रहा हूँ।

इस श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी की भावना को साकार रूप दे श्रीजी को साष्टांग प्रणति के पश्चात् अर्चक कपाट मंगल कर वाहिर आजाता है। श्रीराधारमणदेव की— यह सात आरती और नौ दर्शन का सुख भाग्यवान् जन ही प्राप्त करते हैं। ❀

❀ विशेष वर्णनात्मक विधि के लिये श्रीगुणमञ्जरीदास गोस्वामी विरचित 'नित्य सेवा-विधि' देखिये।

संक्षिप्त अभिषेक विधिः—

१५९९ वैक्रमीय वैशाख शुक्ला पूर्णिमा को प्रातः श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी के प्रेम वशीभूत हो शालग्राम से स्वयं प्रकटित श्रीराधारमणदेव का प्रादुर्भाव हुआ था।

उसीसमय श्रीसनातनगोस्वामी तथा श्रीगोपालभट्टगोस्वामी प्रभृति प्रभुओं के विनिर्देश से श्रीगोपालभट्टगोस्वामी विरचित 'भगवद्भक्ति-विलास' स्मृति के १५ एवं १९ विलासोक्त प्रमाणानुसार श्रीरूपगोस्वामी द्वारा 'श्रीकृष्णाभिषेकविधि' का संकलन किया गया और इसी पद्धति के अनुसार अद्यावधि 'श्रीराधारमणजयन्ती' तथा 'श्रीकृष्णजन्माष्टमी' के दिन 'महाभिषेक' परम्परा अनुष्ठित होती आरही है।

इसके अतिरिक्त–श्रीरामनवमी, श्रीनृसिंहजयन्ती, श्रीराधाष्टमी, श्रीवामनजयन्ती, श्रीलक्ष्मी एव श्रीगोवर्द्धनपूजन, प्रवोधनी एकादशी तथा श्रीकृष्णचैतन्यजयन्ती पर भी श्रीमन्दिर में अभिषेक-विधि सम्पन्न होती है जिसका संक्षिप्त प्राकार यहाँ दिग्दर्शित किया जाता है।

सर्वप्रथम अर्चक स्थान प्रक्षालन कर आसनोपविष्ट हो अपनी दाहिनी ओर शंख, तुलसी, पुष्प, चन्दन, अर्घ्यपात्र, चन्दन से वीजमंत्र रचना एवं उस पर तुलसीदल तथा श्वेत नवीन वस्त्र युक्त स्नान पात्र, वांयी ओर घन्टा एवं जलपात्र रखे। परधी पर विराजित शालग्राम विग्रह के सन्मुख दक्षिण हस्तमें पुष्प, जल लेकर संकल्प करें—

ॐ तत्सदद्य व्रह्मणः द्वितीय प्रहरार्द्धे श्रीश्वेतवाराह कल्पे वैवस्वत-मन्वन्तरे कलियुगे तत्प्रथम चरणे जम्बुद्वीपे भरत खण्डे आर्यावर्त्तक देशान्त-र्गत परम पावने कालिन्दीतीरसन्निधाने श्रीवृन्दावने श्रीराधारमणदेव सन्निधाने मासानां मासोत्तमे — मासे — पक्षे — वासरान्वितायां ग्रहगणगुणविशिष्टायां — शुभ तिथौ मम सकलदुरितोपशमनार्थं श्री-राधारमणपदारविन्दद्वन्द्वानुरागार्थञ्चशाण्डिल्यगोत्रोत्पन्न———————नामाहंश्रीभगवतः — / भगवत्याश्चषोडशोपचार पूजान्वितं अभिषेक करिष्ये।

ध्यान— स्वरूपानुसारत:

प्रार्थना—पुष्पाञ्जलि—

अवतारसहस्राणि करोषि मधुसूदन ! ।
न ते संख्यावताराणां कश्चित् जानाति वै भुवि ॥१॥
देवा: ब्रह्मादय: वापि स्वरूपं न विदुस्तव ।
अतस्त्वां पूजयिष्यामि मातुरुत्संग-संस्थितम् ॥२॥
वाञ्छितं कुरु देवेश ! दुष्कृतञ्चैव नाशय ।
कुरुष्व मे दयां देव ! संसारार्त्तिभयापह ! ॥३॥

शंख में तुलसी यमुना जल ले, मुद्रा प्रदर्शितकर घन्टादि वाद्यसहित लिखित मन्त्रके अभाव में—

अर्घ्य—

ॐ यज्ञेश्वराय यज्ञसम्भवाय यज्ञपतये श्रीगोविन्दाय नमो नम:

मन्त्र से अर्घ्यपात्र में अर्घ्य अर्पण करे तदनु शंख प्रक्षालनपूर्वक उपरोक्त मन्त्र से पाद्य, आचमन, दधि, घृत मधु सहित मधुपर्क पात्र तथा पुनराचमन समर्पण करे। इस प्रक्रिया के सम्पन्न होने के पश्चात्

ॐ 'स्वस्तिन: इन्द्रो वृद्धश्रवा स्वस्तिन: पूषा विश्ववेदा: स्वस्तिन स्तार्क्ष्योअरिष्टनेमि: स्वस्तिन: बृहस्पतिर्दधातु ।

मन्त्रोच्चार से शालग्राम को स्नानपात्र में विराजमान कर पञ्चामृत से

दुग्ध—

ॐ पय: पृथिव्यां पय औषधीषु पयोदिव्यन्तरिक्षे पयोधा: पयस्वती: प्रदिशस्सन्तु मह्यम् । यजुर्वेद १८।२६

दधि—

ॐ दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्यव्वाजिन: सुरभिनो मुखाकरत् प्रण आयु ंषि तारिषत् । यजुर्वेद २३-३२

घृत—

ॐ घृतं घृतपावान: पिवतवसाम्वसा पावान: पिवतान्तरीक्षस्य हविरसि स्वाहा दिश: प्रदिश आदिशो विदिश उद्दिशो दिग्भ्य: स्वाहा ।
यजुर्वेद ६।१९

मधु—

ॐ मधु व्वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः। मधुनक्त मुतोषसो मधु मत्पार्थिव ँ रजः मधु द्यौ रस्तिनः पिता। मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमा अस्तुनः सूर्यो माध्वी गावो भवन्तु नः।

यजुर्वेद १३-२७-२८-२९

शर्कराजल—

ॐ अपा ँ रसमुद्वयस ँ सूर्ये सन्त ँ समाहितं अपां रसस्य यो रसस्तं वो गृह्णाभ्युत्तम उपयाम गृहीतो सीन्द्रायत्वा जुष्टं गृह्णाम्येषते योनिरिन्द्रायत्वा जुष्टतमम्।

यजुर्वेद ९।३

शुद्ध श्रीयमुनाजल—

ॐ वरुणस्योत्तम्भनमसि व्वरुणस्य स्कम्भसर्जनीस्थो व्वरुणस्य ऋत सदन्यसि व्वरुणस्य ऋतसदनमसि व्वरुणस्य ऋतसदनमासीद।

यजुर्वेद ४।३६

उपर्युक्त मन्त्रों द्वारा अभिषेक विधि सम्पन्न होने पर प्रोञ्च्छन कर पीठ पर विराजित शालग्रामादि स्वरूप का

वस्त्र—

ॐ अभिवस्त्रा सुवसनान्यर्षाभिधेनूः सुदुघाः पूयमानः। अभिचन्द्रा भर्तवेनो हिरण्याभ्यश्वान्रथिनो देवसोम।

ऋग्वेद ७।४।२०

आभूषण—

ॐ हिरण्यरूपः सहिरण्य संदृगपां न पात् सेदु हिरण्यवर्णः। हिरण्यात् परियोने निषद्या हिरण्यदाददत्यन्यमस्मै।

ऋग्वेद २।७।२।३

चन्दन—

ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्।

पुष्पमाला—

ॐ श्रीश्चते लक्ष्मीश्च पत्कया वहो रात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्। इष्णन्निषाणा मुम्मइषाणा सर्वलोकम्मइषाण।

यजुर्वेद २१ अ

से यथाक्रम पूजन कर स्थान परिष्कार के पश्चात्

धूप—

ॐ वनस्पतिरसोद्भूत: गन्धाढ्य: गन्ध उत्तम: ।
आघ्रेय: सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

दीप—

ॐ अग्निर्ज्योति ज्योतिरग्नि: स्वाहा सूर्यो ज्योति ज्योति: सूर्य: स्वाहा अग्निर्वर्च्चो ज्योतिर्वर्च: स्वाहा सूर्यो वर्च्चो ज्योतिर्वर्च्च: स्वाहा ज्योति: सूर्यो सूर्यो ज्योतिस्स्वाहा ।
यजुर्वेद ३-९

निवेदन तथा स्थान संस्कारोपरान्त अमनिया भोगार्पण करे एवं ताम्बूल वीटिका समर्पण के पश्चात् पुन: स्थान शुद्धि कर सविधि आरती कर उत्सव की समापना करे ।

उत्सवों की संक्षिप्त विधि तथा मन्त्र वार्षिकोत्सव विवरण पृष्ठ १५७ से पृष्ठ १६७ तक में अङ्कित है किन्तु कुछ वैशिष्टता का यहाँ दिग्दर्शन किया जारहा है ।

श्रीरामनवमी-

स्तुतिध्यान—

उच्चस्थे ग्रहपञ्चके सुरगुरौ सेन्दौ नवम्यां तिथौ,
लग्ने कर्कटके पुनर्वसुयुते मेषं गते पूषणि ।

निर्दग्धु निखिला: पलाशसमिध: मेध्यादयोद्धारणे,
राविर्भूतमभूदपूर्वविभवं यत् किञ्चिदेकं मह: ॥

मध्याह्न में तिरस्करणी लगाकर श्रीमन्दिरमें वर्णित अभिषेक विधि सम्पन्न होती है । यथा नियम तीन भोगार्पण के पश्चात् आरती होती है ।

तिथि क्षयादि के कारण जयन्ती के पारण तथा एकादशी व्रत में व्यवधान उत्पन्न न हो अत: अष्टमी विद्धा नवमी व्रत भी ग्राह्य है ।

श्रीनृसिंहजयन्ती

वैशाख शुक्ला चतुर्दशी को सन्ध्या समय श्रीजी के सान्निध्य में

वर्णित अभिषेक विधि सम्पन्न होती है। तीनों भोग निवेदन के पश्चात् सन्ध्या आरती ही उत्सव आरती के रूप में होती है।

स्तुति ध्यान—

प्रत्यानीताः परम भवता त्रायता नः स्वभागा,
दैत्याक्रान्तं हृदयकमलं त्वद् गृहं प्रत्यरोधि।
कालग्रस्तं कियदिदमहो नाथ! सुश्रुषतां ते,
मुक्तिस्तेषां नहि वहुमता नारसिंहापरैः किम् ॥

त्रयोदशी विद्धा चतुर्दशी में व्रत नहीं करना चाहिये। स्वाती नक्षत्र, शनि एवं सिद्धयोगयुक्ता चतुर्दशी का व्रत अत्यन्त सौभग्य से प्राप्त होता है। चतुर्दशी क्षय होने पर पूर्णिमा की सन्ध्या को अभिषेक विधि का विधान है किन्तु किसी भी अवस्था में स्वाती नक्षत्र, शनिवार प्राप्त होने पर भी त्रयोदशी विद्धा चतुर्दशी व्रत नहीं करना चाहिये।

श्रीराधाष्टमी—

भाद्र शुक्ला अष्टमी के प्रभात में तिरस्करणी लगाकर गर्भ मन्दिर में वर्णित विधि से अभिषेक होता है। धूप दीप, भोगार्पण एवं आरती बंधानी आरती के क्रम से ही होगी पृथक् रूप से नहीं।

ध्यानस्तुति—

सुचीननीलवसनां द्रुतहेमकमप्रभाम्।
पटान्तञ्चलेनावृतार्द्धं—सुस्मेराननपङ्कजाम् ॥
कान्तवक्त्रे न्यस्तनृत्यच्चकोरी चञ्चलेक्षणाम्।
अंगुष्टतर्जनीभ्याञ्च निजप्रियमुखाम्बुजे।
अर्पयन्तीं पूगफालीं पर्णचूर्णसमन्विताम् ॥
मुक्ताहारलसच्चारु—पीनोन्नतपयोधराम्।
क्षीणमध्यां पृथुश्रोणि किङ्कणीजालशोभिताम् ॥

रत्नताटङ्ककेयूरमुद्रावललयधारिणीम् ।
रणत् कनकमञ्जीर-रत्नपादाँगुरीयकाम् ॥

लावण्यरसमुग्धाङ्गीं सर्वावयवसुन्दरीम् ।
आनन्दरससंमग्नां प्रसन्नां नवयौवनाम् ॥

रासोत्सवविलासिन्यै नमस्ते परमेश्वरि ! ।
कृष्णप्राणाधिके ! राधे ! परमानन्दविग्रहे ! ॥

प्रणमामि महानृत्यमयीं त्वामतिसुन्दरीम् ।
रत्नालंकृतशोभाढ्यां कुसुमार्चितविग्रहाम् ॥

अर्घ्यादिमन्त्र—

श्रीगोविन्दवल्लभायै करुणामृतवाहिन्यै राधायै नमः

श्रीवामनजयन्ती–

भाद्र शुक्ला द्वादशी मध्य में श्रीजी के सन्मुख तिरस्करणी लगाकर वर्णित अभिषेक विधि सम्पन्न होती है। तीनों भोग के पश्चात पुष्प की आरती ही राजभोगीय उत्सव आरती के रूप में होती है। कभी धूपआरती पूर्व द्वादशी मध्य अभिषेक होनेपर दैनिक धूप आरती और भोग ही उत्सव भोग होता है पृथक् भोग नहीं आता, शृङ्गार आरती ही उत्सव आरती का रूप लेती है।

ध्यानस्तुति—

विश्वाय विश्वभवनस्थितिसंयमाय स्वैरं ग्रहीतपुरु शक्तिगुणाय भूम्ने ।
स्वस्थाय शश्वदुपबृंहितपूर्णबोध व्यापादितात्मतमसे हरये नमस्ते ॥

यदि द्वादशी में किञ्चित् भी श्रवण स्पश करता है तब एकादशी व्रत न होकर द्वादशी व्रत ही होगा। द्वादशी अल्प होने पर द्वादशी मध्य ही अभिषेक होगा उस समय मध्याह्न अभिषेक की आवश्यता नहीं है। पारण त्रयोदशी को होगा।

दीपावलि–

ध्यान स्तुति—

पद्मानने ! पद्मिनि ! पद्मपत्रे !
पद्मप्रिये ! पद्मदलायताक्षि ! ।

विश्वप्रिये ! विश्वमनोऽनुकूले,
त्वत्पादपद्मं मयि सन्निधत्स्व ॥

ध्यायेल्लक्ष्मीं प्रहसितमुखीं राज्यसिंहासनस्थां,
मुद्राशक्तिं सकलविनुतां सर्वसंसेव्यमानाम् ।
अग्नौ पूज्यामखिलजननीं हेमवर्णां हिरण्यां,
भाग्योपेतां भुवनसुखदां भार्गवीं भूतिधात्रीम् ॥

अर्घ्यादिमन्त्र—

विष्णुपत्नीं क्षमां देवीं माधवीं माधवप्रियाम् ।
विष्णुप्रियसखीं लक्ष्मीं नमाम्यच्युतवल्लभाम् ॥

अभिषेकान्त वस्त्र, आभूषण, चन्दन, पुष्प, धूप दीप के पश्चात् आवरण में केवलमात्र श्रीलक्ष्मीजी का भोग, पार्श्वस्थ हठरी विराजित लक्ष्मी पूजन, आरती, दीपदान, दीपमन्त्र सहित चार परिक्रमा।

श्रीगोवर्द्धनपूजन-

ध्यान स्तुति—

सप्ताहमेवाच्युतहस्तपद्मके भृङ्गायमानं फलमूलकन्दरैः ।
संसेव्यमानं हरिमात्मवृन्दकैः गोवर्द्धनं तं शिरसा नमामि ॥

नीलं स्कन्धोज्वलरुचिभरैर्मण्डिते वाहुदण्डे,
छत्रच्छायां वधदधरिपोर्लब्धसप्ताहवासः ।
धारापातग्लपितमनसां रक्षिता गोकुलानां,
कृष्णप्रेयान् प्रथयतु सदा शर्म गोवर्द्धनो नः ॥

अर्घ्यादि मन्त्र—

ॐ यज्ञेश्वराय यज्ञसम्भवाय यज्ञपतये गोविन्दाय नमो नमः ।

अभिषेकान्त वस्त्र, शृङ्गार, चन्दन, माला, धूप, दीप, तीन भोगार्पण के पश्चात् आरती होती है। श्रीगोवर्द्धनपूजन के दिन चन्द्र-दर्शन नहीं होना चाहिए।

देवोत्थान-

प्रार्थनान्त अर्घ्यादिदान के पश्चात् नारायण स्वरूप शालग्राम का अभिषेक।

अर्घ्यादिमन्त्र—

ॐ यज्ञाय यज्ञेश्वराय यज्ञसम्भवाय यज्ञपतये गोविन्दाय नमो नमः।

अभिषेकान्त वस्त्र, शृङ्गार, चन्दन, पुष्प, धूप, दीप के पश्चात् आवरणयुक्त रथ विराजित नारायण का एकमात्र भोगार्पण तदनु आरती, रथयात्रा चार परिक्रमा सहित।

श्रीकृष्णचेतन्यजयन्ती—

फाल्गुनी पूर्णिमा को उत्सव आरती पश्चात् श्रीजी की सन्निधि में अभिषेक विधि सम्पन्न होती है।

ध्यान स्तुति—

अनर्पितचरीं चिरात् करुणयावतीर्णः कलौ,
समर्पयितुमुन्नतोज्वलरसां स्वभक्तिश्रियम्।
हरिः पुरटसुन्दरद्युतिकदम्बसन्दीपितः,
सदा हृदयकन्दरे स्फुरतु नः शचीनन्दनः।।

नमस्त्रिकालसत्याय जगन्नाथसुताय च।
सभृत्याय सपुत्राय सकलत्राय ते नमः।।

अर्घ्यादिदान मन्त्र—

नमो वेदान्तवेद्याय कृष्णाय परमात्मने।
सर्वचैतन्यरूपाय चैतन्याय नमो नमः।।

अभिषेक पश्चात् एकत्रित तीन भोग अर्पित होते हैं तदनु आरती ही सन्ध्या आरती के रूप में होती है।

विशेष—वार्षिकोत्सव बिवरण सम्बन्धित आठ पृष्ठ इसी के अन्तः-गर्भ रूप में दिये गये हैं।

संशोध्य—

(१२)	श्रीगोपालभट्टगोस्वामी महोत्सव श्रावण कृष्णा पञ्चमी	ओलाई नहीं होती है। पृष्ठ	159
(१४)	**रक्षाबन्धन**—वाद्यादिसहित	द्वारस्थितश्रवणद्वय पूजन।	160
(२१)	शरद् उत्सव	ओलाई नहीं होती है।	161

●●●

वार्षिकोत्सव-विवरण-

क्रमः—उत्सव तथा तिथी	विशेष विधि
※ १ नववर्ष (चैत्र शुक्ला १)	श्रीजी को नवीन वस्त्र धारण, पञ्चाङ्ग श्रवण।
※ २ श्रीरामनवमी (चैत्र शुक्ला ९)	श्रीजी को नवीन पीत वस्त्र धारण, मध्याह्न में शालग्राम स्वरूप श्रीरामाभिषेक। अर्घ्यमंत्र-- दशाननवधार्थाय धर्मसंस्थापनाय च। दानवानां विनाशाय दैत्यानां निधनाय च ॥ परित्राणाय साधूनां जातः रामः स्वयं हरिः। गृहाणार्घ्यं मया दत्तंभ्रातृभिः सहितोऽनघ! ॥
३ पुष्प दोलोत्सव (चैत्र शुक्ला ११)	गुलाबी वस्त्र तथा राजभोग तक जूडा एवं सन्ध्या को सिरपेच धारण। पुष्पदोल पर श्रीजी विराजते हैं। उत्सव आरती होती है पर ओलाई नहीं। दमनकाधिवास।
※ ४ दमनकार्पण (चैत्र शुक्ला १२)	शृङ्गार आरती पश्चात् घन्टादिवादन द्वारा श्रीजी को दमनकार्पण मन्त्र— देवदेव ! जगन्नाथ ! वाञ्छितार्थप्रदायक!। कृत्स्नान्! पूरय मे कृष्ण!कामान् कामेश्वरप्रिय!॥ इदं दमनकं देव ! गृहाण मदनुग्रहात्। इमां साम्वत्सरीं पूजां भगवन्निह पूरय॥ मणिविद्रुममालाभिः मन्दारकुसुमादिभिः। इयं साम्वत्सरी पूजा तवास्तु गरुडध्वज! ॥ वनमालां यथा देव ! कौस्तुभं सततं हृदि। तद्वद्दामनकीं मालां पूजां च हृदये वह ॥

※ ५ अक्षय तृतीया (वैशाख शुक्ला ३)
चन्दनी वस्त्र धारण राजाभोग उसरने पश्चात् श्रीजी का चन्दन का श्रृङ्गार । सत्तू भोग। राजभोग आरती पहिले बत्ती तथा पीछे फूल से। श्रीजी सन्ध्या समय छोटी शरद तक जगमोहन पर विराजते हैं एवं राजभोग आरती फूलोंसे होती हैं। झाँकीके राजभोग में विशेष दर्शन ।

※ ६ श्री नृसिंह जयन्ती (वैशाख शुक्ला १४)
सन्ध्या आरती पूर्व शालग्राम स्वरूप श्रीनृसिंहाभिषेक ।

अर्घ्य मन्त्र—
नृसिंहाच्युत ! देवेश ! लक्ष्मीकान्त ! जगत्पते !!
अनेनार्घ्य प्रदानेन सफलाःस्यूः मनोरथाः ॥

७ श्रीराधारमण जयन्ती (वैशाख शुक्ला १५)
नवीन पीतवस्त्र तथा शयनपर्यन्त सिरपेच धारण । 'श्रीकृष्णाभिषेकार्चन विधि' द्वारा महाभिषेक । वधाई गान । प्राकट्यस्थलार्चन । दोनों समय श्रीजीस्वर्णसिंहासन पर विराजमान होतेहैं। तिल पाक का विशेष भोग। उत्सव आरती ओलाईनहीं। प्रत्येक चरणस्पर्शीयगोस्वामी स्वरूप अभिषेक समय मन्दिर में उपस्थित रह सकते हैं।

८ ज्येष्ठमास
सम्पूर्ण मास पर्यन्त शीतलपेय, सिखरन, शर्वत भोग। मध्याह्न में शालग्राम स्वरूपों का जलशयन। खस के पर्दे आदि शीतोपचार। जलयंत्रों का चलना। पुष्प की वैठक तथा फूलवंगला के दर्शन। बड़े फूलवंगला में उत्सव आरती होती है पर ओलाई नहीं, परदिन प्रातः श्रृङ्गार आरती तक श्रीजी विराजते हैं। ज्येष्ठ मास में प्रतिदिन दो बार नवीन करुआ में जल अर्पित होता है।

※ ९ जलयात्रा (ज्येष्ठ शुक्ला १५)
नवीन श्वेत वागा तथा राजभोग तक मुकुट तदनु सिरपेच धारण। सन्ध्या समय मृत्पात्रों में रखे

हुये शीतल यमुना जल से जलयंत्रों द्वारा सन्ध्या आरती के पर्दा तक श्रीजी का स्नान । उत्सव आरती तथा ओलाई होती है ।

१० रथयात्रा (आषाढ़ शुक्ला २) — नवीन लाल बागा धारण । सन्ध्या को स्वर्ण रजत रथ पर श्रीजी तथा छोटे रजत रथ पर शालग्राम की विजययात्रा । उत्सव आरती होती है पर ओलाई नहीं ।

※११ गुरु पूर्णिमा (आषाढ़ शुक्ला १५) — श्रीमदनमोहन मन्दिरस्थित श्रीसनातनगोस्वामी की समाधि का अर्चन । श्रीगुरुदेव पूजन ।

※१२ श्रीगोपालभट्टगोस्वामी महोत्सव धियो।धियो (श्रावणकृष्णा४से६तक) — चतुर्थी को श्रीमन्दिर में अधिवास । पंचमी को समाधि में अष्टप्रहर नाम संकीर्तन । श्रीजी को नवीन लाल बागा धारण । समाधि पूजन । माथुर ब्राह्मण तथा स्थानीय ब्राह्मण वैष्णव सेवा । प्रसाद वितरण । सन्ध्या को स्वर्णसिंहासन पर श्रीजी विराजमान होते हैं । उत्सव आरती तथा ओलाई नहीं । प्रातः गोस्वामीवर्ग तथा सन्ध्या को गोस्वामिनीवर्ग द्वारा गोलक तथा समाधि में विशेष भेंट । ※ षष्टी को प्रातः विराट् नगर संकीर्तन-भ्रमण । रासमण्डल पर सूचक गान । ब्राह्मण वैष्णव सेवा । सन्ध्या को रजत सिंहासन पर श्रीजी बिराजते हैं । उत्सव आरती नही परन्तु ओलाई होती है ।

※१३ श्रीलोकनाथदास गोस्वामी महोत्सव (श्रावणकृष्णा ८) — श्रीगोकुलानन्द मन्दिरस्थित समाधिपूजन ।

१४ हरियालीतीज झूलनोत्सव श्रावण शु० ३ से १५ तक — तृतीया को नवीन हरा बागा तथा श्रीप्रियाजीको चुनरी धारण । सन्ध्या को नवीन स्वर्ण रजत हिन्दोल पर पञ्चमी पर्यन्त श्रीजी विराजते हैं । षष्ठी से पूर्णिमा पर्यन्त रजतहिन्दोल पर श्रीजी विराजते हैं। प्रतिदिन उत्सव आरती होती है पर

ओलाई नहीं। तीज को सिन्धारा तथा प्रतिदिन पूआ का विशेष भोग।

श्रावण शुक्ला एकादशी को राजभोग तक जूड़ा तथा सन्ध्या को सिरपेच धारण। पवित्राधिवास द्वादशी को शृङ्गार आरती पर श्रीजी को पवित्रार्पण।

मन्त्र—

कृष्ण ! कृष्ण ! नमस्तुभ्यं गृहाणेदं पवित्रकम्।
पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रद ! ॥
पवित्रकं कुरुस्वाद्य मन्मया दुष्कृतं कृतम्।
शुद्धो भवाम्यहं देव ! त्वत् प्रसादात् जनार्दन ! ॥

पूर्णिमा को नवीन वागा धारण भद्रारहित समय में रक्षावन्धन तिलक। राजभोग तक मुकुट तथा सन्ध्या को ताज धारण।

रक्षावन्धन मन्त्र—

येन वद्धः वली राजा दानवेन्द्रः महावलः।
तेन त्वां प्रतिवध्नामि रक्षे ! माचल माचल॥

१५ श्रीकृष्ण जन्माष्टमी (भाद्र कृष्णा ८)

श्रीजीको नवीनपीतवस्त्र धारण। श्रीराधारमण-जयन्ती की भांति प्रात महाभिषेक। दोंनों समय श्रीजी स्वर्ण सिंहासन पर विराजते हैं। तिल पंजीरी पाक का विशेष भोग। उत्सव आरती ओलाई नहीं। प्रत्येक चरणस्पर्शीय गोस्वामी स्वरूप मन्दिर में अभिषेक समय उपस्थित रह सकते हैं।

*१६ श्रीनन्दोत्सव (भाद्र कृष्णा ६)

श्रीजी को नवीन पीतवागा धारण। शृङ्गार पश्चात् प्राङ्गणमें नन्दोत्सव। उपस्थित गोस्वामी स्वरूप और उनके वालकों को मन्दिर से प्रसाद वितरण। भक्तोंको प्रसाद प्रदान शृंगारमें झाँकी के विशेष दर्शन। सन्ध्या को रजत सिंहासन पर श्रीजी विराजते हैं। उत्सव आरती नहीं परन्तु ओलाई होती है।

* १७ नष्ट चन्द्र	सन्ध्या समय चतुर्थी के दिन चन्द्र-दर्शन-आशंका से श्रीजी गर्भमन्दिर में विराजते हैं ।
१८ श्रीराधाष्टमी (भाद्र शुक्ला ८)	नवीन पीतवागा धारण, प्रातः गर्भ मन्दिर में श्रीप्रियाजी का अभिषेक । सन्ध्या को स्वर्ण सिंहासन पर श्रीजी विराजते हैं उत्सव आरती ओलाई नहीं । विशेष तिल पाक, पंजीरी भोग।
* १९ श्रीवामन जयन्ती (भाद्र शुक्ला १२)	द्वादशी की उपस्थिति में मध्याह्न में शालग्राम-स्वरूप श्रीवामनाभिषेक अर्घ्य मन्त्र :— वाममाय नमस्तुभ्यं क्रान्तत्रिभुवनाय च। गृहणार्घ्यं मया दत्तं वामनाय नमोऽस्तु ते ॥
२० विजयादशमी (आश्विन शुक्ला १०)	श्रीजी को नवीन लाल वागा धारण। शृङ्गार-आरती पश्चात् जगमोहन में दशहरा तथा शमी पूजन, रथ पर शालग्राम की विजय यात्रा । प्रार्थना मंत्र— शमी शमयते पापं शमी लोहितकण्टका। धरित्र्यर्जुनवाणानां रामस्य प्रियवादिनी ॥ करिष्यमाणा या यात्रा यथाकालं सुखं मया। तत्र निर्विघ्नकर्त्रीत्वं भव श्रीरामपूजिते! ॥ केचिद् ऋक्ष्यैस्तत्र भाव्यं केचिद्भाव्यं च बानरैः। रामराज्यं रामराज्यं रामराज्यमितिब्रुवन् ॥ श्रीजी को तिलक, यवाङ्कुर अर्पण । सन्ध्या को रजत हाथी पर श्रीजी तथा छोटे रथ पर शालग्रामजी की विजय यात्रा । उत्सव आरती होती है परन्तु ओलाई नहीं । आश्विन शुक्ला एकादशी से कर्तिक शुक्ला पूर्णिमा तक विशेष नियम धारण । समाधि-मन्दिर में प्रातः श्रीतुलसी दामोदर पूजन, आकाश दीप प्रकाश । मंगला दर्शन नित्य से पहले होते हैं ।
२१ शरदुत्सव (आश्विन शुक्ला १५)	श्रीजी को नवीन श्वेत तास वागा, पीताम्बर, कटि-काछनी धारण । राजभोग आर तीलफू

तथा वत्ती की। सन्ध्या को स्वर्ण सिंहासन पर श्रीजी विराजते हैं। शयन तक स्वर्ण मुकुट धारण। चारों ओर छत्त श्वेत पिछवाई बधती है। मखाने की खीर,चन्द्रकला का विशेष भोग। उत्सव आरती ओलाई नहीं। सन्ध्या समय पूर्णिमा आवश्यक है।

२२ लघु शरदुत्सव (कार्तिक कृष्णा १) — शरद् के परदिन अनुमिति पूर्णिमा चन्द्र की आशङ्का से श्रीजी रजत सिंहासन पर विराजते हैं। शरद् की भाँति सब विधान परन्तु आज जूड़ा सेवा होती है। आज से राजभोज आरती वत्ती की होती है, घीया की खीर, चन्द्रकला का विशेष भोग, उत्सव आरती होतीहै परन्तु ओलाई नहीं। रात्रि में दुहेरा वस्त्र ओढ़ने को।
लघु शरदुत्सव के दूसरे दिन से श्रीजी सन्ध्या समय गर्भ मन्दिर में विराजते हैं।

※ २३ अहोई अष्टमी (कार्तिक कृष्णा ८) — रात्रि में अष्टमी चन्द्र दर्शन आवश्यक है। श्रीराधाकुण्ड स्नान।
कार्त्तिक कृष्णा एकादशी को छत्त पिछवाई तथा हठरी लगाई जाती है।

※ २४ धनतेरस (कार्तिक कृष्णा १३) — सन्ध्या को श्रीजी के सन्मुख चौपड़ धरी जाती है। यमदीपदान। चतुर्दशी के दिन पीत तास का वागा धारण। स्नान में श्रीजी को शिरीष-पत्र स्पर्श। दीपदान।

२५ दीपावलि (कार्तिक कृष्णा ३०) — तास का वागा तथा ताज धारण। सन्ध्या को आरती बाद जगमोहन में हठरी विराजित महा-लक्ष्मी अभिषेक, पूजन, आरती। दीपदान मंत्र—
त्वं ज्योतिः श्री रविश्चन्द्रः विद्युत्सौवर्णता-रकाः। सर्वेषां ज्योतिषां ज्योतिः दीपः ज्योतिः नमोऽस्तु ते ॥
श्रीजी को तिलक। विशेष अनसखरी सामिग्री, मखाने की खीर का भोग। ओलाई नहीं।

सन्ध्या को अमावस्या आवश्यक है । मन्दिर से समस्त गोस्वामीस्वरूप और उनके पारिवारिक-जनों को प्रसाद प्राप्त होता है ।

* २६ श्रीगोवर्द्धन पूजन (कार्तिक शुक्ला १)	दीपावलि के पर दिन प्रतिपदा में ही गोवर्द्धन-पूजन होता है । इस दिन चन्द्र दर्शन नहीं होना चाहिये । श्रीजी हठरी में जगमोहन पधारते हैं । गिरिराज शिला का अभिषेक । गौ, गोवत्स, गोवर्द्धन पूजन, धूप, दीप, अमनिया अर्पण, परिक्रमा । प्रार्थना— गोवर्द्धन ! धराधार ! गोकुलत्राणकारक ! विष्णुबाहुकृतोच्छ्राय गवां कोटिप्रदः भव ॥ अग्रतः सन्तु मे गावः गावः मे सन्तु पृष्ठतः । गावः मे पार्श्वतः सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥ लक्ष्मीर्या लोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता । घृतं वहति यज्ञार्थे यमपाशं व्यपोहति ॥ श्रीजी को सखरी विशेषकर वेगन शाक तथा मूंग, अचार, पकौड़ी आदि अनेक पदार्थों का भोग । ओलाई होती है ।
* २७ गोपाष्टमी (कार्तिक शुक्ला ८)	श्रीजी को नटवर शृङ्गार, सोने के शृङ्ग, वेत्र, लकुट, मुरली, जूड़ा धारण । शृङ्गार आरती पश्चात् श्रीगोवर्द्धन पूजन की भाँति केवल गौ, गोवत्स पूजन । तिलक, स्वर्ण-मुद्रार्पण ।
२८ देवोत्थान (कार्तिक शुक्ला १२)	तास का बागा यदि एकादशी के दिन हो तो जूड़ा अन्यथा सिरपेच धारण । सन्ध्या को जगमोहन स्थित इक्षु कुञ्ज में विना वाद्यध्वनि के देवोत्थान। घण्टा वादन द्वारा शालग्राम देव स्वरूप का अभिषेक, चन्दन, धूप, दीप नैवेद्यार्पण के पश्चात् उत्सव आरती । रजत रथ पर विराजित शाल-ग्रामजी की विजय यात्रा । दीपदान । ओलाई नहीं । आज से शयन पर रजाई धारण ।

जागरण मंत्र—ब्रह्मेन्द्ररुद्राग्नि - कुवेरसूर्य - सोमादिभिः वन्दित-
पादपद्म।
वुध्यस्व देवेश ! जगन्निवास ! मन्त्रप्रभावेण
सुखेन देव !॥
इयं तु द्वादशी देव ! प्रवोधार्थं विनिर्मिता।
त्वयैव सर्वलोकानां हितार्थं शेषशायिना॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द ! त्यज निद्रां जगत्पते !।
त्वयि सुप्ते जगन्नाथे जगत् सुप्तं भवेदिदम्।
उत्थिते चेष्टते सर्वमुत्तिष्ठोत्तिष्ठ माधव !॥
ब्रह्मेन्द्ररुद्रैरवित्तर्क्यभाव,
भवानृषिवन्दितवन्दनीयः।
प्राप्ता तवेयं द्वादशी कौमुदाख्या,
जागृष्व जागृष्व च लोकनाथ !।
मेघाः गताः निर्मलपूर्णचन्द्रः,
शारद्यपुष्पाणि च लोकनाथ !॥
अहं ददानीति भक्तहेतोः,
जागृष्व जागृष्व च लोकनाथ !॥
इदं विष्णु विचक्रमे त्रेधा निदधे
पदं समूढमस्य पांशुले।

प्रार्थना मन्त्र— सोऽसावदभ्रकरुणः भगवान् विवृद्ध
प्रेमस्मितेन नयनाम्बुरुहं विजृम्भन्।
उत्थाय विश्वविजयाय च नो विषादं
माध्व्या गिरापनयनात् पुरुषः पुराणः॥

रथयात्रा मन्त्र—वक्रं नीलोत्पलरुचिलसत् कुण्डलाभ्यां प्रमृष्टं
चन्द्राकारं रचिततिलकं चन्दनेनाक्षतैश्च।
गत्या लीलां जनसुखकरीं प्रेक्षणेनामृतौघं
पद्मावासां सततमुरसा धारयन् पातु विष्णुः॥
युक्तः शैव्यादिवाहैः मधुरतररणत् किंकणी-
जालमालैः, रत्नोघैः मौक्तिकाना मविरत-

रुचिभिः भूषितः केतुमुख्यैः । छत्रैः ब्रह्मेश-वन्द्यः दुरितहरहरेः पातु जैत्रो रथो वः।

मोदन्तां सुजनाः ह्यनन्दितधियस्त्रस्ताखिलो-पद्रवाः, स्वस्थाः सुस्थिरवुद्धयः प्रतिहता मित्राः रमन्तां सुखं। रे दैत्याः गिरिगह्वराणि गहनान्याशु व्रजध्वं भयाद्दैत्यारिः भगवानयं यदुपतिः यानं समारोहति । पलायध्वं पलायध्वं रेरे दितिजदा-नवाः!। संरक्षणाय लोकानां रथारुढ़ः नृकेशरी ॥

※ २७ श्रीदामोदर गोस्वामी महोत्सव (कार्त्तिक शुक्ला १५) — श्रृङ्गार आरती पश्चात् श्रीजी के प्रसाद से समाधि पूजन । प्रसाद वितरण । माथुरचतुर्वेदी व्राह्मण भोजन ।

※ २८ व्यञ्जन द्वादशी (मार्गशीर्षशुक्ला १२) — मार्गशीर्ष शुक्ला द्वादशी से पौष शुक्ला द्वादशी तक धूपआरती पश्चात्श्रीजी भोगमंडीमें अनेक अचार, पकोड़ी, दही, मेवा, मुरव्वा, माखन, मिश्री, उर्द के लड्डू तिल, जायफल गिरे हुये, अनेक साग तथा भाँति-भाति के व्यन्जनों सहित घृत मेवा गिरी हुई खिचड़ी आरोगते हैं ।

शीत प्रतीत न हो इसलिये श्रीजी के श्रीचरण दर्शन नहीं होते हैं, मोजा, दुलाई,लवादा धारण कराया जाता है सदैव अंगीठी पार्श्व में रहती है । पानमें केशर जावित्री, धराइ जाती है ।

※ २९ श्रीजीवगोस्वामीमहो० (पौष शुक्ला ३) — श्रीराधादामोदर मन्दिरमें समाधि पूजन ।

खिचरीभोग समापन पौष शुक्ला १२ — अथवा द्वादशी व्रत के परदिन खिचरी भोग समाप्त होता है । यदि मकर सङ्क्रान्तिके दिन विशेष अवशिष्ट हों तो राज भोग में विशेष रूप से खिचरी अर्पित होती है ।

※ आ भा का सितपक्षेषु मैत्रश्रवणरेवती ।
आदिमध्यावसानेषु प्रस्वापावर्त्तनादिकम् ॥

※ ३०	श्रीगोपीनाथदास गो० महोत्सव (पौष शुक्लापूर्णिमा)	पूर्वदिन अधिवास, उत्सवदिन अष्टप्रहर नाम संकीर्त्तन समाधि एवं रासमण्डलस्थित भजन-स्थलीपूजन माथुर ब्राह्मणों का भोजन। ब्राह्मण वैष्णव सेवा। सूचक गान। प्रसाद वितरण।
※ ३१	श्रीगोपालभट्ट गो०. आविर्भाव (माघ कृष्णा ३)	विशेष पूजन एवं आराधन।
	वसन्त पञ्चमी (माघ शुक्ला ५)	श्रीजी को वसन्ती वागा धारण। आजसे धुलेडी तक प्रतिदिन राजभोग पर गुलाल अर्पण तथा ढप वादन। सन्ध्या को श्रीजी जगमोहन में स्वर्णसिंहासनासीन हो दर्शन देते हैं। केशरिया वर्फी, कुल्हियाका विशेष भोग। आज से व्रज में होली का आरम्भ। उत्सव आरती होती है। ओलाई नहीं।
३२	होलिकोत्सव (फाल्गुन शुक्ला ८से फाल्गुन शुक्ला १५) तक	प्रतिदिन श्रीजी केशरिया वस्त्र धारण कर जग-मोहन में रजत सिंहासनासीन हो दर्शन देते हैं। उत्सव आरती होती है। ओलाई नहीं। टेसू का रंग तथा विविधवर्णीय गुलाल - वर्षण। पूआ का विशेष भोग। एकादशी तथा पूर्णिमा को जूडा तथा मुकुट राजभोग तक धारण होता है। सन्ध्याको सिर-पेचधारण। पूर्णिमा प्रयुक्त होने पर श्रीचैतन्यदेव का सन्ध्या में अभिषेक होता है। भद्रा व्यतीत होने पर होलिका दहन होता है।
३३	दोलोत्सव (चैत्र कृष्णा १)	होलिका दहन के पर दिन दोलोत्सव होता है। श्रीजी को गुलाबी वागा धारण कराया जाता है। श्रीजी दोल पर विराजते हैं। पूआ जलेवी का विशेष भोग। उत्सव आरती होती है ओलाई नहीं। कभी कभी पूर्णिमा के दिन अभिषेक

और दोलोत्सव सम्पन्न होता हैं । यह होलिका-
दहन पर निर्भर है ।

पोशाकधारण विधि—

यद्यपि नवीन पोशाक श्रीजी को धारण कराने में रंग की विधि निषेधिता नही है । ग्रीष्म होने पर भी भक्तोंको नयन सुख देने हेतु श्रीजी जामा पाजामा धारण करते हैं तथापि श्रीजी रवि मंगल को-लाल,सोम को गुलावी, वुध को-हरी, गुरु को पीली, शुक्र को सफेद, शनि को-काली नीली पोशाक धारण करते हैं । अक्षय तृतीया से शरदुत्सव तक उत्सवों को छोड़कर जाँघिया शीतऋतु में अंगरखी,पाजामा, व्यञ्जन द्वादशी से वसन्त पञ्चमी तक लवादा, दुशाला, दुलाई, मोजा धारण कराया जाता है राजभोग के अतिरिक्त चरण दर्शन नहीं होते ।

× विस्तृत विवरण श्री गुणमञ्जरीदास गोस्वामी कृत 'उत्सवावलि' में देखें ।

※ इनदिनों श्रीजीकी ओलाई होती हैं। विशेष-नन्दोत्सव को ओलाई नहीं होती है ।

श्रीराधारमणजी का मुख्यतम प्रसाद कुल्हिया

श्रीराधारमणजी का मुख्यतम प्रसाद कुल्हिया का मूलगत स्त्रोत माध्वगौड़ेश्वर सम्प्रदाय के आद्याचार्य श्रीमाधवेन्द्रपुरीपाद हैं।

× श्रीचैतन्यचरितामृत के अनुसार—

❀ यतिराज श्रीमाधवेन्द्रपुरी श्रीगोपालदेव अर्थात् श्रीनाथजी की गिरि गोवर्द्धन में प्रतिष्ठापना कर उनकी यथाविधि आराधना करते थे।

एक दिन गोपालदेव का—

'पृथ्वी में अनेक वर्षों तक आच्छादित रहने के कारण मेरे शरीर पर सदा सन्ताप रहता है इसके उपशम का एकमात्र उपाय चन्दन का प्रलेप है तुम अविलम्ब इसकी व्यवस्था करो।'

यह स्वप्नादेश प्राप्तकर अपने आराध्य श्रीनाथ की सेवा सञ्चालना का भार दो नैष्ठिक ब्राह्मण शिष्यों को सोंपकर पुरीपाद अनेक प्रान्तों में परि-भ्रमण करते हुए उड़ीसा प्रान्तस्थ 'रेमुणा क्षेत्र' पहुँचे।

वहाँ के प्रधान श्रीगोपीनाथ विग्रह के दर्शनकर पुरीपाद अत्यन्त आन-न्दित हुए। वे प्रतिदिन मन्दिर प्रांगण में भाव विभावित हो गोपीनाथ के दर्शन करते, उन्हें गोपीनाथ में अपने आराध्य श्रीनाथ दिखलाई दिए।

वे कभी हा गोपीनाथ ! श्रीनाथ ! कहकर भूमि पर लोटते कभी पागल की भाँति रोते, कलपते तथा अथाह प्रेम-सागर में डुबकियां लगाते। उन्हें श्रीगोपीनाथ की सेवा विषेष रुचिकर प्रतीत हुई, वे अपने श्रीनाथदेव की सेवा भी इसी भाँति से करना चाहते थे। उन्होंने श्रीगोपीनाथ के अर्चकों

× मध्य लीला, चतुर्थ परिच्छेद।

❀ यतिराज श्रीमाधवेन्द्रपुरी के नाम से गोवर्द्धन के समीप 'जतीपुरा' नामक ग्राम की स्थापना है।

से आग्रह-पूर्वक इस सेवा परम्परा सम्बन्ध में जिज्ञासा की। इसी सन्दर्भ में उन्हें ज्ञात हुआ कि प्रतिदिन गोपीनाथ को मृत्पात्रों में 'खीरसा' भर कर अमृतोपम बारह 'अमृतकेलियों' का भोग लगता है। उनके मन में भी अपने गोपाल को 'अमृतकेलियों' का भोग लगाने की उत्कण्ठा जाग्रत हुई। इसका यदि एक कणमात्र प्रसादांश मुझे मिल जाता तो मैं भी देखता कि इसका आकार प्राकार स्वाद कैसा है ? यह भी भावना हृदय में उठी। किसी भी प्रकार की कामना का उदय सन्यासी के लिए सर्वथा अनुचित है। वे मन मसोस कर रह गए पर भक्त की भावना भगवान् से छिपी न रही। वे भक्तवाञ्छापूरक रूप में सामने आये और उन्होने भोग के पश्चात् उसमें से एक अमृतकेलि चुराकर अपने आँचल में छिपा ली। भोग के पश्चात् पुजारी ने बहुत खोज की पर उसे वह न मिली। इधर श्रीपुरीपाद एक निर्जन स्थान में बैठकर उच्च स्वर से हे दीनानाथ ! श्रीनाथ ! मथुरानाथ ! मैं कब आपकी उस रूप माधुरी छटा को मन प्राण भरकर देखूँगा। यह हृदय आपके दर्शनों के लिए उत्कण्ठित है। प्राणनाथ ! अब अधिक न तरसाओ। एक बार दर्शन दे मेरे तन मन की तपन मिटाओ कहकर रोने लगे। भक्त के आर्त्त स्वर की झंकृति ने भगवान् को झकझोर दिया। वे अब और न रुक सके तुरन्त पुजारी के जगाकर स्वप्न में कहा—

'मैंने एक 'अमृतकेलि' चुराकर रख ली है उसे द्वार पर कीर्त्तनकारी सन्यासी को जाकर दो' यह कह कर गोपीनाथ अन्तर्हित होगए। पुजारी उठा और स्नान कर मन्दिर में पहुँचा। वहाँ गोपीनाथ के वस्त्राञ्चल में छिपी एक अमृतकेलि ले श्रीमाधवेन्द्रपुरी को दी। पुरीपाद गोपीनाथ का अनुपम अनुकम्पा प्रसाद प्राप्तकर पुलकित हो रोने लगे। उन्होंने प्रणतिपूर्वक प्रसाद का एक कणमात्र ग्रहण कर मृत्पात्र को धो अपने वस्त्रांचल में बाँध लिया और जिसका वे प्रतिदिन एक कण प्रसाद के रूप में ग्रहण करते थे। भक्त के कारण भगवान् खीरचोरा गोपीनाथ के नाम से विख्यात हुये।

श्रीमन्महाप्रभु चैतन्यदेव को भी इस परमास्वादनीय 'अमृतकेलि' प्रसाद की प्राप्ति हुई थी जिसे उन्होंने अत्यन्त श्रद्धाभाव से स्वयं ग्रहण कर अपने अनुगतजनों को वितरित की थी।

यह सब वृत्तांत श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी सुन चुके थे अतः उन्होंने श्री राधारमणजी के प्रमुख भोग के रूप में प्रतिदिन प्रातःकाल बारह मिट्टी के गोल पात्रों में मन्दिर में ही निर्मित 'खीरसा' भरकर 'अमृतकेलि' भोग का

बंधान किया। ये *'अमृतकेलिया' ही शनैः शनैः 'कुल्हिया' के रूप में परिणित हो गई।

प्राग्वृत्त—

श्रीराधारमणजी का प्रचीन मन्दिर निर्माण

वैक्रमीय वर्ष १६८५ में लिखित प्रतिज्ञा-पत्र के अनुसार गोस्वामी परिवार की बाखरें और खिरकें निर्द्धारित सीमा में बनने लगी थीं। उस समय × श्रीजी प्राकटय-स्थल-स्थित परिसर के एक सामान्य मन्दिर में विर जते थे। यह परम्पराक्रम १७५० वैक्रमीय वर्ष तक चलता रहा।

श्रीजनार्दनदास गोस्वामी के द्वितीय पुत्र श्रीचैतन्यदास जिनका कि १७५८ वै० के प्रतिज्ञा-पत्र में हस्ताक्षर हैं उस समय अपने पितामह श्रीहरिनाथ के समान ही प्रतिभाभावापन्न प्रौढ़ युवक थे।

*श्रीचैतन्यदास यथासमय श्रीजी की सेवा निमित्त अर्थ संग्रह तथा वैष्णव धर्म-प्रचारार्थ देशाटन किया करते थे इसी सन्दर्भ में वे एक समय दिल्ली पधारे। वहाँ दिल्ली का ही एक अग्रवाल शिष्य जो सदा अभावग्रस्त रहता था इनके श्रीचरणोपान्त में उपस्थित हो अपनी दयनीय आर्थिक

---

* प्रतिदिन मन्दिर में ही सहस्त्रों 'कुल्हियाओं' का निर्माण होकर श्रीराधारमणजी के भोग लगता है पर इस प्रातःकालीन 'कुल्हिया' प्रसाद की महिमा और स्वाद ही अद्‌भुत और अनिर्वचनीय है। मन्दिर में वही सामिग्री और निर्माता हैं परन्तु वे भी प्रातःकालीन 'कुल्हिया' भोग के सरस सुधासार को दूसरे 'कुल्हिया' भोग में भर नहीं पाते। उसका स्वाद तो वही बतला सकता है जिसने इसे एक बार चखा है। वस्तुतः इसमें प्रियाप्रीतम के अधरामृत का स्वाद भरा हुआ है इसकी मधुर मिठास के सामने अमृत भी फीका लगता है। इसका निर्माण केवल मन्दिर में ही होता है अन्यत्र नहीं।

× मन्दिर का कुछ अंश वर्त्तमान में रासचबूतरास्थित भाग में लगा हुआ है।

*तिन चैतन्यदास के शिष्य एक वैश्य दिल्ली के माँही।
राधारमण चरणन में तिनकी प्रीति महाही॥
लखि धनहीन एक दिन इन कही बांस छड़ी यह लीजै।
याही को रुजगार करहु अरु पूजा याकी कीजै॥

स्थिति का परिवेदन करने लगा। दया-परिवश हो आपने समीप में रखी हुई एक बाँस की छड़ी उठाकर उसे दे उसका ही व्यवहार और व्यापार करने की आज्ञा प्रदान की।

अनुगत शिष्य ने श्रीगोस्वामीपाद द्वारा दी गई यह बाँस की छड़ी अपने पूजा स्थान में स्थापित की और उनकी आज्ञानुसार दिल्ली में ही बाँस का व्यापार प्रारम्भ किया। धीरे-धीरे श्रीजी की अनुकम्पा और श्रीगुरुदेव के अनुग्रह से उनका यह व्यापार और परिवार बढ़ने लगा और कुछ ही दिनों में उन्होंने इस व्यापार से लाखों रुपयों की अपार धन-सम्पत्ति अर्जित की।

अपार धन-सम्पत्ति के स्वामित्व के रूप में वह अनुगत शिष्य एक बार वृन्दावन आया और उसने अर्जित सम्पत्ति का बहुत बड़ा अंश श्रीगुरु के चरणों में समर्पित करना चाहा। श्रीगुरुदेव ने उस सम्पत्ति को स्वयं ग्रहण न कर श्रीजी के मन्दिर निर्माण की उसे आज्ञा दी।

श्रीगुरुदेव की आज्ञा प्राप्तकर परिसर के मध्य में ही उसने एक सुदृढ़ मन्दिर का निर्माण कराकर अमूल्य रत्न-जटित आभूषणों के साथ अपार धन-सम्पत्ति श्रीजी के श्रीचरणों में समर्पित की। भक्त वाञ्छापूरक के रूप में प्रायः १२५ वर्षों तक श्रीजी इस प्राचीन मन्दिर में विराजित हुये।

कोई दिन पूजत भये जिनहि कियो बाँस ही को व्यवहारा।
लाखन की भई नफा तिनहि कौ बढ़ो बड़ो परिवारा॥
तिनहिने प्रथम पुरानो मन्दिर श्रीजी को बनवायो।
भूषन वसन अमोलक जिनके करि अति प्रीति पठायौ॥

—गोपाल कवि श्रीगोपालभट्ट चरित्र

आज भी नवीन मन्दिर से संलग्न यह प्राचीन मन्दिर अपने विशाल कलात्मक स्वरूप का दिग्दर्शन करा रहा है।

श्रीजी का नवीन मन्दिर निर्माण

अनुमानतः १८५० वैक्रमीय वर्ष के आसपास अग्रवाल शाह परिवार के श्रीविहारीलाल एक अत्यन्त निष्ठावान् ब्राह्मण वैष्णव सेवा भावापन्न व्यक्ति थे। उनका परिवार प्राचीन काल से फर्रुखाबाद निवासी था किन्तु तत्कालीन लखनऊ के नबाबों के आग्रह से *श्रीविहारीलाल प्रमुख रत्न परीक्षक (जौहरी) के रूप में लखनऊ रहने लगे थे। श्रीशाह विहारीलाल की श्री राधारमणजी के श्रीचरणों में ऐकान्तिक निष्ठा थी और उसी के फलस्वरूप इन्होंने वैक्रमीय वर्ष १८७९ में श्रीजी के प्राचीन मन्दिर से सलग्न भूभाग जहाँ कभी यमुना की झील थी और जिसमें श्रीजी धनुष, वाणधारी गोस्वामी गणों के रणा वेक्षण में नौका विहार करते थे पर एक कलात्मक मन्दिर का निर्माण कराया। पाँच वर्ष के दीर्घ अन्तराल में नवीन मन्दिर बनकर प्रस्तुत हुआ। १८८४ वैक्रमीय वर्ष की माघ शुक्ला पञ्चमी की वासन्तिक वेला में सहस्त्रों व्रजवासी, वैष्णव एवं विभिन्न सम्प्रदाय के रसिकाचार्य-गणों की समुपस्थिति में नवायित मन्दिर का पाटोत्सव सम्पन्न हुआ। आज श्रीशाह-विहारीलाल की मूर्त्तिमती साधना मनोरथ पूर्ति के रूप में सफल हुई। उल्लासपूर्ण वातावरण में श्रीशाहजी ने श्रीजी की शृङ्गार एवं दैनिक सेवा निमित्त अनेक अमूल्य रत्नाभूषण, स्वर्ण रजत पात्रों सहित एक रत्न जटित लखनऊ का निर्मित स्वर्ण रजत मिश्रित बड़ा सिंहासन भी श्रीजी के विराजमान हेतु समर्पित किया।

उस समय तक श्रीजी उपरिस्थित भाग पर केवल शरद पूर्णिमा की चान्द्रमसी ज्योत्स्ना निरीक्षण के अतिरिक्त प्रायः गर्भ मन्दिर में ही विराजते थे और यहाँ ही सम्पूर्ण उत्सव यात्रायें सम्पन्न होती थी। सिंहासन बड़ा होने

---

*अगरवार एक साह विहारीलाल बड़े उपकारी।
रहत नखलऊ मध्य फर्रुखाबादहि के सू अगारी॥
राधारमन चरन में रति अति सांची जिनकी जोई।
सेवत गोस्वामी द्विज सन्तन जहाँ जात जो कोई॥
महाराज श्रीलाल गुसाईं जी के सेवक जोई।
राधारमण मन्दिर वनवायो जगै गुरु हित जोई॥

गोपाल कवि—श्रीगोपालभट्ट चरित्र

के कारण उसकी मन्दिर प्रविष्टता किस प्रकार हो ? यदि श्रीजी उस पर विराजमान न हों तो श्रीशाहजी की भावना में ठेस पहुँचनी स्वाभाविक थी अतः सर्वसम्मति से सिंहासन को दो भागों में विभाजित कर मन्दिर में प्रविष्ट कराया गया। करुणा-वरुणालय श्रीजी भक्तमनवाञ्छापूरक के रूप में सिंहासन पर विराजित हुए।

नव मन्दिर निर्माण के कुछ ही दिनों वाद श्रीशाहबिहारीलालजी का देहावसान हो गया अतः मन्दिर के अनिर्मित अवशिष्ट स्थानों का निर्माण उनके पुत्र ※ श्रीगोविन्दलाल तथा श्रीरघुवरदयाल, मक्खनलाल, कुन्दनलाल, फुन्दनलाल चार पौत्रौं द्वारा १६०० वैक्रमीय के लगभग कराया गया।

शाह श्रीकुन्दनलाल, फुन्दनलाल ×श्रीराधारमणीय श्रीराधागोविन्द गोस्वामीजी के मंत्र दीक्षित कृपापात्र शिष्य के रूप में ललितकिशोरी, ललितमाधुरी के नाम से विख्यात थे, इनके द्वारा समय-समय पर श्रीजी की विशेष रूप से सेवा की गई।

इसके पश्चात् ※श्रीयुगलदास भण्डारी ने मन्दिर द्वार के सम्मुख

※ शाह विहारीलाल सुवन वड़ गोविन्दलाल कहाये।
तिनके सुत रघुवरदयाल पुन मक्खनलाल सुहाये॥
कुन्दन फुन्दनलाल चतुर अति चारिहु सुत आज्ञाकारी।
तिन श्रीजी गोस्वामिन की मिलि सेवा करी सुभारी॥
—गोपालकवि

× चिन्तामणि गुरु चरण शुचि श्रीराधागोविन्द।
सुमिरत ही अन्तस् फुरचौ बृन्दावन आनन्द॥—अभिलाषमाधुरी

व्रजरज मध्य समाधि लिय जुगल भ्रात निर्भय निपुन।
श्रीललितकिशोरी, ललितमाधुरी प्रेममूर्ति वृन्दाविपिन॥
—नवभक्तमाल

※ श्रीः

लागत रुपया

॥ १००० ॥

श्रीराधारमणस्य सद्मनिकटे या शोभते द्वास्तु सा।
कोशेट्छी युगलादिदासरचिता भूयाच्च तत्प्रीतये॥

दक्षिणभागीय एक वृहत् रूपायित द्वार का एक हजार रुपयों की लागत से निर्माण कराया जिसे छोटे दरवाजे की संज्ञा दी गई।

* इसके पश्चात् श्रीमिठ्ठोवीवी द्वारा फाल्गुन कृष्णा पञ्चमी १९१८ वैक्रमीय वर्ष में नव मन्दिर की परिक्रमा का निर्माण कराया गया साथ ही श्रीजी के प्राचीन मन्दिरस्थ प्रस्तरीय सदर द्वार को भीतर की ओर लगा कर उसके स्थान पर एक नवीन कलावैभवपूर्ण वृहद् द्वार का निर्माण काशी निबासी श्रीहर्षचन्द्रजी द्वारा आषाढ़ शुल्ला ७ × वुध सम्वत् १९३३ वैक्रमीय को कराया गया।

शनैः शनैः यह वृहद्द्वार गोस्वामीस्वरूपों की नित्य विराजित-स्थली के रूप में प्रसिद्ध हुया। यहाँ अविरत अनेक शास्त्रगत सिद्धान्तों की समस्याओं का समाधान तथा वेदान्तप्रतिपाद्यतत्त्व की विस्तृत वहुमुखी व्याख्यायें विद्वज्जन सदैव को चमत्कृत करती रहती हैं।

इसीसमय श्रीगोपीलाल गोस्वामीजी के सदुद्योग से श्रीगोपालभट्ट-गोस्वामीजी के समाधिस्थल का नव निर्माण कराया गया।

मुद्राणां शतकेनदिक्सुगुणितेनाब्देब्धिचन्द्राङ्कभू १९१४।
सख्याते गिरिजातिथौ रविदिने पक्षे सिते माधवे ॥१॥

श्रीराधारमणजी के भंडारी श्रीयुगलदासजी ने यह दरवज्जो बनवायो सम्वत् १९१४ वैशाख शुक्ल ३ लागत रुपैया एक हजार १०००)

श्रीकृष्ण प्रीतये भूयात्

* अयं प्रदक्षिणामार्गो मिट्ठोवीव्याः सुकारितः।
फाल्गुने कृष्णपञ्चम्यां वर्षेऽष्टैकाङ्कभूमिते ॥

१९१८

× श्रीराधारमणस्यमन्दिरवहिर्द्वार्यंवडम्प्राञ्चिता।
बाबू श्रीयुतहर्षचन्द्रकृतिना सम्वत्सरे वैकमे।
रामत्र्यङ्क वसुन्धरापरिमिते आषाढमासे सिते।
पक्षे भानुतिथौ वुधे विरचिता प्रीत्यै प्रभोरस्तु सा ॥

सारार्थ—

यह द्वार श्रीयुत बाबू हर्षचन्द्रजी काशीनिवासी ने सम्वत् १९३३ आषाढ शुक्ला ७ बुधवार कू निर्माण करायो।

श्रीराधारमण मन्दिर, श्रीवृन्दावन का वृहत् बहिर्द्वार

इसी काल में श्रीराधारमण प्राकट्यस्थली परिसर पार्श्वस्थ भूमि पर आवासगृह एवं वहिर्द्वारस्थ श्रीश्यामाश्याम मन्दिर तथा भ्रमरघाटस्थित महाकवि श्रीजयदेवाराधित श्रीराधामाधव के प्राचीन मन्दिरों का पुनर्निर्माण कराया गया साथ ही इन मन्दिरों की भोगराग परम्परा यथावत् परिपालित होती रहे इसकी भी सुव्यवस्था की गई।

श्रीगोविन्दमन्दिर निर्माण के समकालीन श्रीमहाराजा मानसिंह द्वारा निर्मित मन्दिर द्वारस्थ रासमण्डल का नवरूपाङ्कन किया गया साथ ही श्रीगोपीनाथदासजी की भजनकुटी का पुनरुद्धार कर परिसर के भूभाग को बहुत कुछ नवरूपायित स्वरूप दिया गया।

प्रबन्ध समिति—

१६८५ वैक्रमीय के पश्चात् समय-समय पर आवश्यकतानुसार तात्कालिक गोस्वामी स्वरूपों द्वारा श्रीजी की भोगराग परम्परा, सेवा सञ्चालन, सम्पत्ति की सुरक्षा एवं सामाजिक संगठन शृङ्खला के अन्तर्गत अनेक निर्णय लिये गये और उसके विरुद्धाचरण करने वाले गोस्वामीगण श्रीजी, राज्य-शासन, समाज तथा पंचों के द्रोही निर्द्धारित किये जाते रहे।

शनैः शनैः गोस्वामी स्वरूपों का परिवार बढ़ने लगा भविष्य में कहीं ऐसा न हो कि पक्षपात, अविवेकता के कारण किसी एक गोस्वामी का उसकी प्रमुखता के कारण श्रीजी की सम्पत्ति पर एकाधिकार न हो जाय इसको दृष्टिकोण में रखते हुये गोस्वामीगणों के सर्वसम्मत निर्णय से माध्व-गौडेश्वर सम्प्रदायानुयायी वैष्णव भंडारी नियुक्त किये जाते रहे। इस काल के अन्तराल में कितने ही भंडारी आये और निकुञ्जलीला प्रविष्ट हुये वस्तुतः इन भण्डारीगणों के प्रयत्न से श्रीजी के भण्डार में अभूतपूर्व वृद्धि हुई।

इसी शृङ्खला में श्रीजुगल नामक एक भण्डारी रखा गया पर वह सेवाभावी होते हुये भी दुराग्रही था सबों ने उसे बहुत समझाया बुझाया कि साम्प्रदायिक सिद्धान्त के विरुद्ध वांयी तरफ से कौपीन धारण अनुचित है पर उसने किसी की न सुनी अन्त में १९०१ वैक्रमीय में सातों देवालयों के सर्वसम्मत निर्णय से उसे भण्डारी पद से हटा दिया गया।

इसके पश्चात् १९१८ वैक्रमीय वर्ष में उडीसा देशवासी कृष्णदास सम्पूर्ण अधिकारों के साथ भण्डारी बनाया गया, आरम्भ में तो वह आज्ञा-कारी विनम्र सेवक के रूप में मन्दिर की व्यवस्था सञ्चालन करता रहा किन्तु कुछ दिनों बाद अपनी युवावस्था, अपार सम्पत्ति एवं एकाधिकारिता के

कारण वह अपनी विवेकता खो बैठा और शनैः शनैः उसमें अहंकार की भावना पनपने लगी, अब वह गोस्वामियों को अपना क्रीतदास समझने और प्रतिदिन की मन्दिर व्यवस्था सञ्चालन में बाधायें डालने लगा। उस समय के वृद्ध गोस्वामीगण किसी विवाद में पड़ना नहीं चाहते थे क्योंकि यह भंडारी उनके ही सर्वसम्मत निर्णय से रखा गया था वे व्यथित भाव से भण्डारी के कटुतापूर्ण व्यवहार को मौन होकर सहते रहे पर उस समय का युवा गोस्वामीवर्ग उसके इस व्यवहार को न सह सका, उन्होने कठोरता से भण्डारी को अपनी सीमा में रहने का निर्देश दिया पर वह भला किसकी माननेवाला था ? अपार धन सम्पत्ति तथा अधिकार जो उसके पास था, धीरे-धीरे वह असमाजिक तत्त्वों की सहायता से मन्दिर की सम्पत्ति नष्ट करने लगा। वृद्ध गोस्वामी स्वरूपों ने भण्डारी को बहुत कुछ समझाया किन्तु किसी की बात न मानकर वह अपने आचरणों में और प्रखर होने लगा और यही नहीं उलटे उसने गोस्वामीवर्ग पर भण्डार लूटने का मिथ्यारोप लगाकर न्यायालय में एक वाद प्रस्तुत कर दिया। क्रमवद्ध रूप से न्यायालय में यह वाद चलता रहा अन्त में १९३७ वैक्रमीय वर्ष में न्यायालय द्वारा भण्डारी का वाद निरस्त कर उस पर पचास रुपया अर्थदण्ड निर्द्धारित किया गया।

इतिमध्य फाल्गुन शुक्ला १ सं० १९३६ वैक्रमीय को वृन्दावन-स्थित गोस्वामी स्वरूपों द्वारा श्रीजी की सेवा, मर्यादा परम्परा, सम्पत्ति की सुरक्षा तथा दैनिक व्यवस्था सञ्चालना हेतु एक पंजीकृत प्रतिज्ञा-पत्र के अनुसार १० थामेवार वृद्ध गोस्वामीगणों की पंचायत का गठन किया गया। इसको १८८० के प्रतिज्ञा-पत्र की संज्ञा दी गई और यही पंचायत गठन का प्रथम-चरण माना गया। पंचायत की आधार शिला स्थापित होने के कारण कृष्णदास जिसे भंडारी पद से हटा दिया गया था अब और उग्र हो उठा और आयेदिन उपद्रवों की सृष्टि करने लगा किन्तु संगठित गोस्वामीस्वरूपों ने उसकी एक न चलने दी अन्त में विफल होने पर उसने पुनः अपने अधिकारत्त्व की प्रतिष्ठापना हेतु न्यायालय में द्वितीय वाद प्रस्तुत किया। चार वर्षों तक यह वाद निरन्तर चलता रहा अन्त में हाईकोर्ट द्वारा १९४४ वैक्रमीय बर्ष में भण्डारी के विरुद्ध निर्णय दिया गया। यह गोस्वामीगणों की संगठनात्मक विजय थी। सच पूछा जाय तो यह मन्दिर की मर्यादापरम्परा एवं सम्पत्ति की सुरक्षा का साहसिक प्रथम पदक्षेप था।

श्रीजी के महदपराध तथा देव द्रव्य अपहरण के कारण कृष्णदास कुष्ठी हो गया और घर-घर भीख मांगने लगा।

श्रीराधारमणजी का भण्डारी भीख मांग रहा है यह दयालु गोस्वामी-गणों को सहन न हुआ अतः उन्होंने कृपापरवश हो अपने यहाँ ही समाश्रय दे जीवन पर्यन्त उसके प्रसाद की व्यवस्था कर दी अन्त में एक दिन उसे एक पागल कुत्ते ने काट लिया और इसी अवस्था में चिल्लाता पुकारता हुआ वह मर गया।

श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी के समय से ही गोस्वामीस्वरूप अपने सेवा अवसरों पर अपनी ओर से यथासाध्य श्रीजी की भोगराग सेवा का सञ्चालन करते रहे यहाँ तक कि उनके इस सेवाकार्य में उनकी निजी सम्पत्ति तक बिक गई किन्तु उन्होंने श्रीजी के भोगराग में किसी भी प्रकार त्रुटि न आने दी। भविष्य में श्रीजी की भोगराग परम्परा में विच्युति न होने पावे इसको दृष्टिकोण में रखते हुये श्रीजी की भोगराग परम्परा को स्थायित्व देने की भावना से प्रातःस्मरणीय श्रीगोपीलालगोस्वामीजी द्वारा काशी, प्रयाग, पटना, फर्रुखाबाद, लखनऊ, जालन्धर, भरतपुर आदि स्थलों के नित्यानुगत धार्मिक शिष्यों के सहयोग से विपुल धनराशि संग्रहीत कर एक स्थायी अखण्ड भोगराग कोष की संस्थापना की गई; उस सम्प्राप्त धनराशि को सुव्यवस्थित रूप से रखने के लिये विशेषतः 'गोस्वामीस्वरूपन की पंचायत की आज्ञाकारिणी' एक शिष्यों की समितिका गोस्वामीस्वरूपों द्वारा लिखित प्रतिज्ञापत्र के अनुसार निर्माण किया गया। उससमय तक वृद्ध गोस्वामी पँचगण अन्तर्हित हो चुके थे अतः तात्कालिक परिस्थितियों के अनुसार पौष शुक्ला १२ शुक्र १९७० वैक्रमीय में सन् १८८० के प्रतिज्ञापत्र को पूर्णतः मान्यता देते हुये एक दूसरा प्रतिज्ञापत्र लिखा गया जिसमें उस समय उप-स्थित थामेवार १० वृद्ध गोस्वामीगणों की पंच पद पर नियुक्ति की गई। यही सन् १९१४ का सर्वमान्य प्रतिज्ञा-पत्र कहलाया।

इसके अतिरिक्त १५ गोस्वामीस्वरूप तथा १५ श्रीराधारमणीय शिष्योंकी समिति का गठन किया गया और उसे 'श्रीराधारमण सेवा-समिति' की संज्ञा दी गई। इस समिति के समीप श्रीगोपीलाल गोस्वामी एवं समय-समय पर भक्तों द्वारा प्रदत्त अर्थराशि का संग्रह है जिसके व्याज से श्रीजी की दैनिक भोग व्यवस्था सञ्चालित होती है।

इसके पश्चात् पंचायत का कार्य सुचारुरूप से संचालित होने लगा और प्रति तीन वर्षों बाद गोपनीय निर्वाचन प्रणाली द्वारा पंच तथा कार्य सञ्चालन हेतु मन्त्री तथा सहायक मन्त्री का चयन होता रहा।

सामयिक सामाजिक स्थिति को दृष्टिकोण में रख पूर्व प्रतिज्ञा-

पत्रों को मान्यता देते हुये ३० मार्च १९७९ की साधारण सभा ने पंचायत को सन् १८६० के सोसायटी रजिस्ट्रीकरण के अधिनियम संख्या २१ के अन्तर्गत पजीकृत करा लिया। वर्त्तमान में भक्तों द्वारा समय-समय पर दी गई धनराशि से श्रीजी की अखण्ड भोगराग परम्परा का संचालन हो रहा है। श्रीजी की भोग व्यवस्था के सञ्चालन हेतु 'भोग भण्डार' की स्थापना भी की गई है।

श्रीजी के 'स्वर्णाभूषणागार' की तालियां चार पञ्चों पर रहती हैं और अन्यून चार पञ्चों की उपस्थिति में समय-समय पर श्रीजी की सेवा निमित्त स्वर्णाभूषण सेवाधिकारियों को उनके हस्ताक्षरों से दिया जाता है।

परिजन-प्रसाद और प्रसार

यद्यपि पञ्चायत द्वारा नियुक्त ३१ परिजनों द्वारा मन्दिर की समस्त व्यवस्थाओं का सञ्चालन होता है तथापि श्रीजी की सेवार्चना, कच्ची रसोई निर्माण, साज सज्जा संभाल, प्रसाद वितरण आदि व्यवस्थायों के सञ्चालन में सेवाधिकारी की सत्ता सर्वोपरि मानी गई है और वे ही इसका पूर्ण उत्तर-दायित्व रूप से निर्वाह करते हैं।

वर्त्तमान समय में भी सेवाधिकारी, कच्ची रसोई निर्माणकर्त्ता तथा अर्चक गोस्वामीस्वरूप बिना किसी अर्थराशि ग्रहण के केवल स्वल्पमात्र प्रसादांश लेकर निरालस्य भाव से श्रीजी की सेवा सम्पादन करते आरहे हैं।

प्रति अढाई वर्ष पश्चात् आनेवाली सेवा-सारिणी को प्रत्येक सेवाधि-कारी अपना परम सौभाग्य मानकर अपना सर्वस्व श्रीजी के श्रीचरणों में समर्पित करने को आतुर रहता है, यही यहां के गोस्वामीस्वरूपों की विशे-षता है कि वे बिना किसी व्यक्तिगत स्वार्थ के आरम्भकाल से लेकर आज-तक श्रीजी की सेवा सञ्चालना करते आरहे हैं। प्रसाद का एक निश्चित अंश पंचायत के नियमानुसार 'माला' प्रसाद के रूप में पारम्परिक क्रम से प्रतिदिन एक गोस्वामीस्वरूप के यहाँ जाता है। एकादशी के बिन यही प्रसाद मन्दिर के परिकरों को प्राप्त होता है।

पञ्चायत के नवीन नियमानुसार बिदेशागत गोस्वामीस्वरूपों को भी वर्ष में एकवार परम्परा क्रम न होने पर भी 'माला' प्रसाद प्रदान किया जाता है।

प्रतिदिन प्रातः सायं मन्दिर में श्रीमद्भागवत पाठ, ध्वनि-विस्तारक

यन्त्रों द्वारा स्तोत्र-वाचन, समाज, सङ्कीर्त्तन आदि की आयोजना चलती रहती है।

पञ्चायत द्वारा सार्वजनीन हित में 'सार्वभौम श्रीदामोदर ग्रन्थालय' पुस्तकालय तथा 'श्रीराधारमण दातव्य औषधालय' की मन्दिर के परिसर में ही संस्थापना की गई है।

९1वें वर्षों से श्रीमन्दिर द्वारा वैष्णवों के आवश्यक व्रतोत्सव निर्णयार्थ एक पत्र प्रकाशित होता आरहा है।

परिकर—

श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी के व्रजागमन काल से लेकर आज भी भारत के प्रत्येक प्रान्त, जनपद, नगर तथा ग्रामों के अतिरिक्त अधिकांश विदेशों में भी उनके शिष्य, प्रशिष्य, अनुगतों की अगणित संख्यायें हैं, भारत का अधिकांश ब्राह्मण एव अग्रवाल वंश इस मन्दिर को ही अपनी आराधना-स्थली मानकर श्रीराधारमणजी को अपना इष्ट मानता है।

भारत का मूर्द्धन्य राजनयिक, धार्मिक तथा सामाजिक चेतना-सम्पन्न सुधी-समूह इसी परिकर के अनुयायी हैं और हुये हैं, यदि उनका संक्षिप्त परिचय भी दिया जाय तो एक वृहत् रूपायित ग्रन्थ की आवश्यकता है अतः कुछ नाममात्र निर्देश से ही इसकी पूर्त्ति सम्भव है।

[1]नेपाल यात्रा समय श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी द्वारा किये गये शिष्य ने वृन्दावन आकर श्रीजी को रत्नजटित स्वर्णाभूषणों की भेट की थी।

भगवतमुदित (वि० १६२०-१७1०)

ये श्रीमाध्वगौड़ेश्वर मतानुयायी श्रीगोविन्द सेवाधिकारी श्रीपण्डित हरिदास के अनुगत शिष्य थे। श्रीराधारमणचरणों में इनकी ऐकान्तिक-निष्ठ भावना अत्यन्त प्रबल थी जिसका परिवर्णन—

साँचो श्रीराधारमण झूंठो सब संसार।
वाजीगर को पेखनो मिटत न लागत वार॥

१—कबहुँ गये बद्रकाश्रमही ज़ँह कियो सिख्य जो आयो।
ठाकुर के सिंगार हित गहने जड़ाऊ के लायौ॥
—गोपालकवि गोपालभट्टचरित्र

मिटत न लागत वार भूत की सम्पत्ति ऐसे ।
महरी नाती पूत धूआँ के वादर जैसे ॥
'भगवत' तै नर अधम लोभ वस घर घर नाचे ।
झूंठे गढ़े सुनार वैन के वोले सांचे ॥
'भगवत' सत्तये आवरण करहि केलि राधारमण ।
सर्वोपरि सर्वेश गुरु रसिकराय, मङ्गल भवन ॥

उपर्युक्त पदों में किया गया है ।

माधुरीदास (वि० १६४०-१७०५)

ये श्रीमन्माध्वमार्त्तण्ड कलियुगपावनावतार श्रीभगवत कृष्णचैतन्य चरणानुचर श्रीरूप गोस्वामी शिष्य के रूप में विख्यात थे । इनकी—

दान, मान, वंशी, बिपिन, केलिकला, अभिलाष की ।
माधुरी भई षट् माधुरी, मधुर माधुरीदास की ॥
—श्रीराधाचरण गोस्वामी नवभक्तमाल छन्द संख्या ३०

इसके अतिरिक्त नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा 'श्रीराधारमण विहार-माधुरी' का भी अनुसन्धान प्राप्त हुआ है ।

श्रीमनोहरदास (वि० सं० १७१०-१७८०)

श्रीदामोदरदास गोस्वामी के तिरोधान पश्चात् श्रीजी की सम्पत्ति सुरक्षार्थ माध्वगौडेश्वर सम्प्रदायानुगत वैष्णव ही 'भण्डारी' नियुक्त किये जाते रहे हैं साथ ही इस परम्परा में यह ध्यान रखा जाता था कि वे यहाँ के गोस्वामीगणों से सम्बन्धित न हों किन्तु श्रीगोपालभट्ट-परिकर परम्परा इसका अपवाद था कारण इस परम्परा का श्रीजी की सेवाराधना से कोई सम्बन्ध न था ।

श्रीनिवासाचार्य के शिष्यानुशिष्य-परम्पराश्रित श्रीमनोहरदास विरक्त वैष्णव के रूप में बङ्गाल से वृन्दावन आये थे । श्रीजनार्दनदास गोस्वामी ने मनोहरदास की उत्कट वैराग्यभावना और श्रीजी के प्रति ऐकान्तिकनिष्ठ भावना देखकर उन्हें श्रीजी के भण्डार का स्वामी अर्थात् भण्डारी नियुक्त किया । स्नेहवश श्रीगोस्वामीस्वरूप उन्हें 'स्वामीजी' के नाम से सम्बोधित करते थे ।

श्रीजी के सान्निध्य में रहने के कारण इनकी प्रेमोच्छ्वलित भावना सहस्रगुणित बढ़ने लगी । इन्होंने अपनी प्रत्येक रचनाओं में स्वामीष्टदेव के

रूप में श्रीजी की अभिवन्दना की है। इनके रचित ग्रन्थों में 'श्रीराधारमण-रस-सागर' एक सर्वोत्कृष्ट कृति है। बङ्गभाषाभाषी होने पर भी ब्रजभाषा पर इनका सशक्त अधिकार था। इस ओज, माधुर्य परिपूर्ण 'रससागर' की समापना [1]श्रीराधारमण के सान्निध्य में श्रीगोपालभट्ट-गोस्वामीपाद की १७५७ वैक्रमीय श्रावण कृष्णा पञ्चमी महोत्सव तिथी पर हुई।

इनके गुरु [2]वृन्दावनवासी श्रीरामशरण चट्टराज थे [3]जिनकी कृपा-कारुण्य दृष्टि वल से इन्होंने प्रत्युत्पन्न प्रतिभा प्राप्त की थी।

ये श्रीनाभाजी विरचित "भक्तमाल" के लब्धप्रतिष्ठ टीकाकार श्रीप्रियादासजी के मन्त्रप्रदाता गुरुदेव थे। इन्होंने अपने स्वेष्ट देव की अभिवन्दना में अपनी प्रत्यक्षानुभवता का परमोत्कृष्ट प्रवाहमय परिवर्णन किया है—

---

१. सम्वत् सत्तरहसै सतावन जानिके।
सावन वदी पञ्चमी महोत्सव मानिके॥
निरखि श्रीराधारमण लडैतीलाल को।
'मनोहर' संपूरन वनराज विचारयो ख्याल को॥

—श्रीराधारमण रससागर ६ सं० ११३

२. भजे वृन्दारण्ये विजितकरणं रामशरणम्।

—श्रीगोवर्द्धनभट्ट ग्रन्थावली श्लोक सं० ९

चट्टराज कुल कमल रवि, छवि फवि परम उदार।
रामशरण गुरु चरणवर, 'मनोहर' प्राण अधार॥

—सम्प्रदाय-वोधिनी लिपिकाल १७७६ वि०

इनकी गुरु परम्परा —

श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु
|
श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी
|
श्रीनिवासाचार्य
|
श्रीरामचरण चक्रवर्त्ती
|
श्रीरामशरण चटर्जी

३. रसिकताई कविताई जाही दीनी तिन पाई,
भई सरसाई हिये नव-नव चाय है। —रसवोधिनी ६३० सं०

सजल जलद तन दमक चमक चख चकित तडित पट।
मोर मुकुट झलमले चलै मृदु मरुत जमुन तट ॥
अंग त्रिभंगी वलित ललित भूषन मन रञ्जन।
अरुण अधर मधु वैन नैन नृत्यत युग खजन ॥
छरी टेक दक्षिण भुजनि मणि कुण्डल मंडित श्रवण।
वाम 'मनोहर' दाम वन जै जै श्रीराधारमण ॥
—श्रीराधारमण रससागर ६ सं० २३

श्रीप्रियादास (वि० १७३५-१८२०)

भव्य भक्त भारती के भासमान रत्न के रूप में प्रियादासजी का जन्म गुजरात प्रान्तान्तर्गत सूरत के निकट रामपुरा ग्राम में हुआ था। ये श्रीराधा-रमणपरिकरस्थ मनोहरदासजी के कृपापात्र अनुगत शिष्य थे। इन्होंने श्रीनाभाजी कृत 'भक्तमाल' में अवर्णित भक्तों के चरित्रों पर 'भक्त रस-बोधिनी' टीका के माध्यम से पूर्ण प्रकाश डाला है। इनकी सरस काव्य धारा परम प्राञ्जल, प्रवाहमय अन्तस्तल की कश्मलता को अविलम्ब प्रक्षालन में समर्थ है इसमें कोई सन्देह नहीं। इन्होंने श्रीमनोहरदासजी जो उस समय मन्दिर के एकमात्र भण्डारी थे की आज्ञा से—

'भक्त सुमरिनी' क्रमवद्ध भक्तों के स्मरणात्मक रूप-रम्य रचना की।

'चाहवेली' में भी श्रीराधारमणजी की अभीष्ट लाभ प्राप्ति के लिये विनय की गई है। यह प्रियादासजी को पर आपकी टिप्पणी भावात्मक रचना है।— वृन्दावन की माधुरी इन मिलि आस्वादन कियो।
—नाभाजी छप्पय ९५

श्रीगोपालभट्ट के हिये वे रसाल वसे,
लसें यों प्रकट राधारमन स्वरूप हैं।
नाना भोग राग करे, अति अनुराग पगे,
जगे जग माँहि हित कौतुक अनूप हैं ॥
वृन्दावन माधुरी अगाध को सवाद लियौ,
जियौ जिन पायौ सीथ भये रस रूप हैं।
गुन ही को लेत, जीव औगुन को त्याग देत,
करुना - निकेत धर्म - सेत भक्त भूप हैं ॥
—कवित्त संख्या ३७५

श्रीवैष्णवदास 'रसजानि' (१७६०-१८३५ वि०)

ये श्रीभक्तमाल के सुप्रसिद्ध टीकाकार श्रीप्रियादासजी के पौत्र थे। इनके गुरुदेव श्रीराधारमणीय श्रीसेवादासात्मज [1]श्रीहरिजीवनजी थे। इन्होंने 'भक्ति' 'भक्त' 'भगवत्' तत्त्व सम्बन्धित अनेक ग्रन्थों की रचनायें कीं। रस के वास्तविक तत्त्व को जानने के कारण इन्हें श्रीगोस्वामी स्वरूपों द्वारा 'रसजानि' की उपाधि प्रदान की गई।

श्रीहरिराम जौहरी 'रामहरि' (१७७५-१८४० वि०)

श्रीराधारमण-चरणाश्रित प्रारम्भिक शिष्य परम्परा में श्रीहरिराम जौहरी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने अपने प्रत्येक रचना ग्रन्थों में श्रीचैतन्यदेव तथा श्रीराधारमण विग्रह की विशेष भाव से वन्दना की है।

इन्होंने श्रीप्रियादास पौत्र वैष्णवदास की प्रेरणा से 'भक्तमाल' की टीका रसबोधिनी के अनुसार—

'संत हंस गुण गहहि पय, परिहरि वारि विकार।'

को दृष्टिकोण में रखकर परमहंस, श्रीचैतन्यदेव, वैष्णवदास तथा श्रीधाम वृन्दावन के बल पर 'सतहंसी' ग्रन्थ की संरचना की।

यह टाटीवाला परिवार सदा से ही श्रीराधारमण-चरणाश्रित है। इस परिवार के प्रमुख दिवंगत श्रीगेंदीलाल, दामोदरदास, विश्वेश्वरनाथ 'मधुर' बड़े ही भागवतजन थे। 'मधुरजी' की भावग्राही कवितायें अत्यन्त सुन्दर और सरस हैं।

वर्त्तमान में श्रीराधेश्याम, घनश्याम एडवोकेट द्वय, श्रीरामेश्वरदास, कृष्णदास, श्रीनारायण आदि भावुक भक्तगण के रूप में श्रीजी की ऐकान्तिक निष्ठ सेवा साधनायें कर रहे हैं।

गोपालराय (१८५५-१९२० वि०)

ये श्रीराधारमण मन्दिर के प्रमुख कविराय के रूप में प्रसिद्ध थे। इनकी अन्यान्य रचनायें भगवत् भक्ति भावना परक होने के साथ-साथ ऐतिहासिक तथ्यों से पूर्ण हैं। इसी का एक अङ्ग 'वृन्दावन-धामानुरागावली' की रचना है जिसमें पुरातन एवं अर्वाचीन मन्दिर एवं विग्रहों का आनुपूर्विक वर्णन है।

---

१. श्रीहरिजीवन गुरु कृपा पाय सोई रसजानि।
श्रीभागवत माहात्म्य की भाषा करी वखानि॥

—भाषाभागवत माहात्म्य दो० सं० ३, पृ० १

इनके द्वारा 'श्रीगोपालभट्ट-चरित्र' में श्रीराधारमण विग्रह का प्राकट्य तथा विशिष्ट गोस्वामीगणों का प्रभावोत्पादक गुण गौरव का गान किया गया है।

श्रीहरदेव (१८६२-१६१६ वि०)

ये श्रीराधारमणीय गोस्वामी श्रीव्रजलालजी के पिता श्रीमुन्नालाल गोस्वामीजी के मन्त्र दीक्षित शिष्य थे। इनकी कई ग्रन्थ रचनायें उपलब्ध हैं। आपने अपनी सर्वोत्तम कृति 'रसचन्द्रिका' की पुष्पिका में स्वयं को 'श्रीराधारमण-चरणारविन्द-मिलिन्द' के रूप में प्रस्तुत किया है।

[1]ये 'ग्वाल' कवि के सहाध्यायी थे। इनके वंशस्थ 'मुकुटवाला' परिवार रूप में प्रसिद्ध हैं। इस परिवार के प्रमुख परमभागवत स्व० श्रीनन्दकिशोर एक साहित्यिक एवं प्राचीन ग्रन्थ संग्राहक के रूप में प्रसिद्ध थे।

वर्त्तमान में श्रीदामोदर, रामकृष्ण, विपिन अग्रवाल अपने पूर्वजों की भाँति श्रीजी के ऐकान्तिक-निष्ठ भक्त हैं।

श्रीहरदेव ने अपनी निम्न कविता में श्लेषार्थ रूप से अपने श्रीगुरुभ्राता 'व्रजलाल' का उल्लेख किया है—

हे 'हरदेव' विना न कहुँ कल, या विरहाग विसालहि के भरि।
देखहु वेग हवाल भटू 'व्रजलाल' के नैन रहे झरना झरि॥
—छन्द पयोनिधि

श्रीकृष्णचैतन्य 'निजकवि' (१८७०-१६४० वि०)

ये श्रीराधारमणीय गोस्वामी परिवार की दौहित्र परम्परा में थे। इनके पिता श्रीरासविहारीजी की दीक्षा विख्यात भागवत टीकाकार श्रीराधारमणदास गोस्वामीजी द्वारा होने के कारण यह परिवार × पूर्णतः माध्वगौड़ेश्वर सम्प्रदायानुगत था और इसी नाते इनके स्वेष्टदेव श्रीराधारमण थे।

इनका आवास स्थान वाराणसी का 'गोलघर' मुहल्ला था इसी कारण ये 'गोलघरिये' कहलाते थे।

---

१. ग्वालजी के पिता सेवाराम राधारमणीय गोस्वामियों के राय थे।
—डा० नरेश वंसल चैतन्य सम्प्रदाय, पृ० ३४५

× राधारमन सुइष्ट मम आचारज चैतन्य।
जाति द्विजन्मा गौडिया मध्वसम्प्रदा जन्य॥
उक्ति जुक्ति रसकौमुदी।

ये अत्यन्त प्रतिभाभावापन्न मनीषी थे सुर भारती साहित्य के साथ साथ हिन्दी साहित्य पर भी आपका पूर्ण अधिकार था,व्रजभाषा काव्यके कुशल पारखी होने के कारण तत्कालीन श्रीराजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द', भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पं० मन्नालाल 'द्विज' अम्बिकादत्तव्यास, दम्पतिकिशोर गोस्वामी आदि आपके प्रिय छात्रों में थे। आपकी रचनायें विशेष भावपूर्ण होने के साथ आलङ्कारिक भावनायों से रसाप्लावित थीं। आपके 'उद्धव सन्देश' से ही प्रेरणा प्राप्तकर श्रीजगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने 'उद्धव शतक' की रचना की। उपन्यास सम्राट् श्रीकिशोरीलाल गोस्वामी के आप मातामह थे। आपकी रचनायें रसपेशल की दृष्टि से अत्यन्त रमणीय और प्रभावोत्पादक हैं। आपके द्वारा रचित 'श्रीराधारमणजू को श्रृङ्गार' नामक पद्य निवन्ध का प्रकाशन १९३५ वै० की 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका' में किया गया है।

ललितकिशोरी–ललितमाधुरी (१८८२-१९३०-१८८५-१९३८ वि०)

अग्रवाल वंशोद्भव श्रीशाहविहारीलालजी के पूर्वज फर्रूखावाद निवासी थे किन्तु नवावों के अनुरोध से आप प्रमुख रत्नपरीक्षक (जोहरी) के रूप में लखनऊ रहने लगे। आपकी श्रीराधारमणजी के श्रीचरणों में एकान्तिक निष्ठा थी और उसीके फलस्वरूप आपने श्रीजी का नव मन्दिर निर्माण कराकर अमूल्य रत्न जटित आभूषणों की भेट दी थी।

उनके देहावसान के पश्चात् उनके पुत्र श्री गोविन्दलाल भी उसी भांति श्रीजी के 'ऐकान्तिक-निष्ठ अनुरागी थे। आपके चार पुत्र श्रीरघुवर-दयाल, मक्खनलाल, कुन्दन एवं फुन्दनलाल भी अपने पूर्वजों की भाँति श्रीजी के श्रीचरणाश्रित थे।

श्रीकुन्दन एवं फुन्दनलाल जो बाद में 'ललितकिशोरी' 'ललितमाधुरी' के नाम से विख्यात हुये का नवावों पर पूर्ण प्रभाव था ओर उस समय आपने अपने वुद्धि कौशल से लखनऊ में कई भव्य भवनों का निर्माण कराया। अन्त में आपके हृदय में संसार के प्रति वैराग्यभावना पनप उठी और उसी समय समस्त वादशाही वैभव का परित्याग कर वृन्दावन के लिये चल पड़े।

वृन्दावन में पाँच सहस्र सहयात्रियों के साथ आपने श्रीराधारमण परिसर स्थित पटनीमल कुंज में निवास किया। इस निवास काल में आपका श्रीराधारमणजी तथा अपने गुरुदेव श्रीराधागोविन्द गोस्वामी के दर्शनों का दैनिक नियम था। श्रीजी का प्रसाद आप अत्यन्त श्रद्धा तथा दैन्य भावना से ग्रहण करते थे, पत्तल का प्रसादी कण कण पा जाने के वाद सूखी पत्तल को भी चवाकर खा जाते थे।

अन्त में हाथों में प्रसाद देने की व्यवस्था की गई। आपकी अद्भुत वृन्दावनधाम निष्ठा थी वे कभी वृन्दावन सीमा से बाहिर नहीं जाते न जूता खड़ाम पहिनते यहाँ तक कि मल-मूत्र के पात्र भी व्रज की मिट्टी से निर्मित नहीं होते थे।

आपने १९२५ वै० को संगमरमर निर्मित 'ललित-निकुञ्ज' मन्दिर में युगल विग्रह की संस्थापना की। रासलीला के आप अनन्य अनुरागी थे और इसमें लाखों रुपये व्यय करते थे। जब तक रासलीला होती तब तक खड़े होकर 'प्रिया प्रीतम' को पंखा झलते थे।

एक दिन मन्दिर के पार्श्वस्थ कालीदह पर 'कालियनाग' लीला हो रही थी। शाहजी ने अपने हाथों से लाखों के आभूषण श्रीविग्रह को धारण कराये थे, सहसा लीलानुक्रम में श्रीकृष्ण यमुना में कूद पड़ते हैं चारों ओर हाहाकार! परन्तु शाहजी अविचल भाव से पद गान कर रहे हैं। इधर पलक झपकते ही एक काले नाग को हाथसे पकड़कर श्रीकृष्ण रास मञ्च पर आकर नृत्य करने लग जाते हैं, इस दृश्य को देखकर जनता उच्च कण्ठ से 'जय श्रीराधारमण' कह दिग्दिगन्तों को आघोषित कर उठी है। यह थी उनके रासलीला की महत्वपूर्ण घटना। अन्त में आपने अन्तिम समय आतुर सन्यास लेकर अपनी नश्वर देह को व्रजरज में घसीट कर ले जाने की आज्ञा दी।

आपके लघुभ्राता श्रीकुन्दनलालजी भी अपने अग्रज के समान सेवा-भावापन्न रसिकजन थे।

आपके द्वारा रचित पदों का संग्रह 'अभिलाष माधुरी' एवं 'रस-कलिका' नामक ग्रन्थों में प्रकाशित हुआ है।

आपके पुत्र श्रीशाह माधुरीशरण एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीरामदेवी भी श्रीराधारमणजी की अनन्य आराधिका थी। एक दिन—

शाह माधुरीशरण सुगृहिणी रामदेवी विख्याता।
सेवत रहत सदा श्रीजी को मानत साँचो नाता॥
एक दिन शीत प्रतीत भई उन काँपति रही जड़ाती।
उठि-उठि चौंकि परत छिन-छिन तिन चेन न रेन समाती॥
पूँछि जाय कहो श्रीजी को काहे न वसन उढाये।
चूक जानि मूक ह्वै बैठी चार दुशाल पठाये॥

—गौरकृष्ण

आपके पुत्र स्वर्गत शाह श्रीगौरशरण भी अपनी श्रीजी के प्रति ऐकान्तिक-निष्ठा के लिये प्रसिद्ध थे।

शाह श्रीगौरशरणजीके पुत्र शाह श्रीकृष्णशरण एवं श्रीशाह अभिलाष-शरण भी अपने पूर्वजों की भांति श्रीराधारमणदेव के श्रीचरणानुरागी हैं और परम्परागतक्रम से श्रीजी की अनेक प्रकारों से सेवा करते चले आ रहे हैं।

राधारमण चरण जो पाऊं।
शुक समान दृढ कर गहि राखौं नलिनी सम दुलराऊं॥
सौरभजुत मकरन्द कमलवर शीतल हिये लगाऊं।
विरह जनित दृग् तपनि 'किशोरी' सहजै निरखि नसाऊं॥

राधारमण रंगीलो सुनियत होरी में नव छयल बनैगो।
संग नवेली प्रिय अलबेली श्रीवन नवरंग प्याल ठनैगो॥
अति चित चाय चोंप मन वाटी धूम मचें मम कौन सुनैगो।
वेगि कृपा करि 'ललितमाधुरी' बोलि लेहु रस रंग ढुलैगो॥

इसके अतिरिक्त—

श्रीबांकेपिया (लखनऊ), सरसमाधुरी, विश्वेश्वरनाथ 'मधुर', सूरज-देवी (जयपुर), रत्नेश्वरदयाल (अलीगढ़), मोहिनीदेवी एवं पं० श्रीरामानन्द जी (दिल्ली), दीनबन्धुदास (नासिक) आदि अनेक भागवत रसिकजनों ने प्रेमरसाप्लुत हो अपनी काव्य कला द्वारा श्रीराधारमणदेव की सौन्दर्य सुषमा का सरस सम्वर्णन किया है।

श्रीरसिकमुकुन्द

श्रीचैतन्य सम्प्रदाय के सर्वप्रथम व्रजभाषा नाटचकार नायक 'रसिक-मुकुन्द' श्रीराधारमणचरणाश्रित परिकर के ही एक भाव-प्रवीण ख्याति-प्राप्त रसिकजन थे। इन्होंने स्वरचित 'गोविन्द-हुलास' नाटक की प्रस्तावना में * श्रीरूप गोस्वामी कृत 'विदग्धमाधव' की प्रस्तावना के अनुरूप—

आनन्द मगन चित्त, पीवत रसिक नित,
राधिकारमणजू की लीला तेई सिखरनी।

श्रीराधारमणजी को लीला को शिखरिणी स्वरूप प्रदान किया था।

---

* प्रणीतां ते तृष्णां हरतु हरिलीला शिखरिणी।
—विदग्धमाधव १।१

परिपाटी–

स्थानीय श्रीशाहजी, श्यामारमण, साधूमां, कानपुरवाला, अमिय-निमाई, षड्भुज महाप्रभु आदि मंदिरों एवं पटना, प्रयाग,वाराणसी, भरतपुर, फर्रुखाबाद आदि स्थान स्थित चैतन्य सम्प्रदाय के मन्दिरों तथा गौडीयमठ एवं 'इस्कोन' द्वारा सञ्चालित देश विदेश स्थित मन्दिरों में श्रीराधारमण-मन्दिर की भाँति सेवाराधन की परिपाटी का प्रचलन है।

प्रणाली–

सर्वप्रथम श्रीमन्मध्वाचार्य द्वारा प्रतिष्ठित सम्प्रदाय में श्रीचैतन्य महाप्रभु के समावेश पश्चात् इसको 'माध्वगौड़ेश्वर' सम्प्रदाय कहा जाने लगा। साधकों के लिये साम्प्रदायिक भजन निष्ठा की प्रारम्भिक भूमिका में सदैव से प्रणाली का एक महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है।

श्रीमन्नारायणो ब्रह्मा नारदो व्यास एव च।
श्रीमध्वः पद्मनाभश्च नृहरिर्माधवस्तथा ॥

अक्षोभः जयतीर्थश्च ज्ञानसिन्धुः दयानिधिः।
विद्यानिधिश्च राजेन्द्रः जयधर्ममुनिस्तथा ॥

पुरुषोत्तम ब्रह्मण्यः व्यासतीर्थ मुनिस्तथा।
ततो लक्ष्मीपतिः श्रीमान्माधवेन्द्रयतीश्वरः ॥

ततः श्रीकृष्णचैतन्यः प्रेमकल्पद्रुमोभुवि।
ततः गोपालभट्टश्च भावनिष्ठाफलप्रदः ॥

श्रीदामोदरदासश्च पूर्णानुग्रहकारकः।
इति स्वगुरुपर्यन्तं नाम ग्राहं च वन्दनम् ॥

धर्मशाला—श्रीगोवर्द्धन　　नदी—श्रीयमुना
क्षेत्र—श्रीनवद्वीप　　निवास—श्रीवृन्दावन
धाम—श्रीबद्रीनाथ　　तीर्थ—श्रीराधाकुण्ड
मुनि—श्रीनारद　　सम्प्रदाय—मध्व
मन्त्र—श्रीगोपाल मन्त्र

श्रीवृन्दावन में श्रीराधाकृष्ण युगल विग्रह की उपासना।

गुरुश्रेष्ठ—श्रीगोपालभट्ट　　इष्ट—श्रीराधारमण
प्रभु—श्रीकृष्णचैतन्य　　परकीया भाव—रस-शृङ्गार

परिजन-परम्परा

माध्वगौडेश्वर परम्पराश्रित श्रीहरिसेवक भण्डारी—

श्रीजी का एक अनन्यनिष्ठ आराधक था। उसकी श्रीजी के श्रीचरणों में अपार अनुराग तथा सेवा निमित्त उत्कट उत्साह देख गोस्वामी स्वरूपों ने उसे प्रतिदिन पान लगाने की आज्ञा प्रदान की।

हरिसेवक अत्यन्त प्रेम तथा श्रद्धा भावना से यह सेवा करने लगे। वे पान लगाते जाते और श्रीजी की अपूर्व रूप माधुरी का ध्यान रख प्रेमाश्रु बहाते रहते किन्तु उन्हें यह ध्यान नहीं रहता कि पान में कितना चूना लगा है और कत्था लगाया गया है कि नहीं। श्रीजी भण्डारी द्वारा लगाये गये पानों को बड़े चाव से खाते। इधर पानों में चूना अधिक होने के कारण गोस्वामियों के मुँह फटने लगे, उन्होंने कई बार भण्डारी से कहा ज्यादा चूना न लगाओ, पर वे किसकी मानते प्रेम नशे में मस्त जो वे थे। उनका यह क्रम दूर न हो पाया अन्त में गोस्वामियों ने भण्डारी की यह दैनिक पान सेवा बन्द कर दी। भण्डारी विचारे करते तो क्या करते? अन्त में विवश हो रात्रि को यमुना के किनारे एक कोने में बैठ बिना कुछ खाये पीये रोने लगे। रोते-रोते उन्हें सारी रात बीत गई। भक्त की अन्तर्वेदना भगवान् से छिपी न रही वे भण्डारी को पान-सेवा मना करने वाले गोस्वामियों के पास पहुँचे और जगाकर कहने लगे, 'तुम लोगों ने भण्डारी को पान न लगाने की आज्ञा दे बहुत बुरा किया। उसके लगाये पान मुझे बहुत प्रिय लगते हैं। देखो! आज मैंने पान ही नहीं खाये। उसे यह सेवा करने दो। इसमें विघ्न डालना उचित नहीं।' गोस्वामी स्वरूप उठे भण्डारी के पास गये पर भण्डारी मन्दिर में हो तब न। उसकी तलाश की गई देखा कि यमुना के किनारे एक कदम्ब के तले वेसुध हो रो रहे हैं। गोस्वामियों ने भण्डारीजी को उठाया सान्त्वना दी और उन्हें श्रीजी का स्वप्नादेश सुना पुनः पान लगाने की आज्ञा दी। भण्डारीजी उठे यमुना स्नान कर पान-गृह पहुँचे और उसी प्रेम भावना से पानों को लगाकर श्रीजी को अर्पण हेतु पानों की बीड़ी गोस्वामीजी को दी।

इधर श्रीजी पान आरोग रहे हैं उधर भण्डारीजी श्रीजी का ध्यान कर दोनों हाथों की अञ्जलि बांध न जाने क्या प्रार्थना कर रहे हैं, प्रार्थना समाप्त हुई तो वे क्या देखते हैं कि उनके दोनों हाथ पानों की पीक से रंगे हुये हैं। मन्दिर प्राङ्गण में खड़े हुये दर्शक इस अपूर्व दृश्य को देख चमत्कृत हो उठे, वे शतमुख से भण्डारीजी की भाग्य की सराहना करने लगे।

भण्डारीजी ने श्रीजी के पान प्रसाद को बड़े प्रेम से ग्रहण किया और अन्त में पान सेवा करते-करते निकुञ्ज-लीला में प्रविष्ट हुये।

श्रीयुगलदास भण्डारी—

एक दिन श्रीराधारमणजी की शयन आरती के पश्चात् जब वे शयन का उपक्रम कर रहे थे तब क्या देखते हैं कि एक श्यामवर्ण का बालक उनके सामने खड़ा हुआ अपनी मन्दस्मित ज्योति प्रभा से उनकी कोठरी के कण-कण को प्रभासित कर रहा है भण्डारीजी उसकी इस अपरूप रूप माधुरी छटा को देख विमोहित हो उसे पकड़ने दौड़ते हैं पर वह अपना अंगूठा दिखाकर भाग रहा है अन्तमें भण्डारीजी शिथिल हो गिर पड़ते हैं। भगवान् से भक्त की यह दशा न देखी गई, उन्होंने भण्डारीजी को अपनी गोद में बैठाकर कहा—

बाबा ! मोय सोने को मुकुट बनवाय दे। सबन पै है मोपै नाँय है।

इतना कहकर वे अन्तर्हित हो गये। भण्डारीजी को संज्ञा हुई, उनका सारा शरीर पसीना-पसीना हो गया। उनके मन को अपनी तिरछी चितवन से घायल कर अब वह नीलकमलदलकान्ति छटा जा चुकी थी, मन में चैन हो तो कैसे ?

'घायल की गति घायल जाने जो कोई घायल होय' दूसरे दिन भण्डारीजी ने मन्दिर में समस्त गोस्वामीस्वरूपों को एकत्रित कर अपनी ओर से श्रीजी के लिये मुकुट निर्माण की इच्छा व्यक्त की।

रत्नपारखी के रूप में श्रीललितकिशोरीजी बुलाये गये, नवरत्नों का संग्रह कर कुशल कारीगरों द्वारा अपूर्व कटावयुक्त स्वर्णरत्न-जटित मुकुट का निर्माण किया गया।

श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीजी के समय से ही वर्ष में एकबार शरद्-पूर्णिमा पर श्रीजी को मुकुट धारण कराने की परम्परा थी।

इधर भण्डारीजी की इच्छा थी कि प्रति पूर्णिमा पर श्रीजी मुकुट धारण करें अतः सबों ने श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीजी के श्रीचरणों में इस विषय में आज्ञा देने की प्रार्थना की, तुरन्त श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीजी द्वारा आज्ञा माला प्राप्त हुई। भण्डारीजी के हर्ष का ठिकाना न रहा अन्त में १६१७ वैक्रमीय की माघी पूर्णिमा के दिन पूर्व प्रतिवन्ध को तोड़ते हुये श्रीजी ने अत्यन्त समारोह के साथ मुकुट धारण किया। भण्डारीजी का मन मयूर नाच उठा और उन्होंने भक्तमण्डली के साथ जगमोहन में खड़े होकर श्रीजी के दर्शन किये, वलैयां लीं, नेगी जनों को वस्त्र तथा दक्षिणायें दीं गईं,

साष्टाङ्ग प्रणतिकर वे भाव विह्वल हो 'गोपालभट्ट के प्राणधन श्रीराधारमण' कहकर नाचने लगे।

इसके पश्चात् प्रति पूर्णिमा को श्रीजी मुकुट धारण करते रहे, अन्त में वैक्रमीय १६१८ की ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी को श्रीयुगलदास भण्डारी ने श्रीजी की सिंहपोल में सज्ञान अवस्था में निकुञ्जवास प्राप्त किया, गोस्वामीगण सकीर्त्तन करते हुये उनके इस पार्थिव शरीर को यमुना तट पर ले गये और वहाँ उनका अन्तिम संस्कार किया गया।

श्रीरामकृष्ण (१७७५-१८४० वि०)

की जन्म स्थली फर्रुखाबाद थी, यह कान्यकुब्ज कुलीन ब्राह्मण थे। आपका पूर्वनाम 'कृपासिन्धु' था। सारस्वत शास्त्र के उद्‌भट विद्वान् होने के कारण पाञ्चाल प्रदेश में आपका बड़ा सन्मान था।

उस समय फर्रुखाबाद में श्रीराधारमणीय श्रीसुन्दरदास गोस्वामी के पौत्र श्रीरामकृष्ण गोस्वामी की विशेषरूपेण ख्याति थी। प्रत्यह अनेक छात्र व्याकरण, वेदान्त एवं श्रीमद्‌भागवत की शिक्षायें उनसे ग्रहण करते थे। इसी समय 'कृपासिन्धु' भी आपके सम्पर्क में आये और उनके प्रखर पाण्डित्य से प्रभावित हो उनके द्वारा मंत्र दीक्षा ग्रहण की और ऐकान्तिकनिष्ठ भावना से उनकी सेवा करने लगे।

एक बार आप अपने श्रीगुरुदेव के साथ श्रीवृन्दावन आये यहाँ आकर वृन्दाबन रस माधुरी तथा श्रीराधारमणदेव की—

मेघ श्याम वपु सुभग त्रिभंगी।
कलित मन्द मुसकनि वहुरंगी॥
....
कोटि-कोटि मनसिज छवि फीकी॥ —रामकृपा

लावण्य छटा का सन्दर्शन कर भाव बिभोरित हो उठे। वृन्दावन आकर आपकी सम्पूर्ण जप, योग साधना समाप्त हो गई, अब वे हरि-रस मदिरा मदाभिमत्त जन की भाँति वेषाश्रित वैष्णव के रूप में श्रीजी का कैङ्कर्य करने लगे।

श्रीरामकृष्ण गोस्वामीजी ने उनकी श्रीजी के श्रीचरणों में ऐकान्तिक-निष्ठ भावना देख वृन्दावन में ही निवास कर गोस्वामी बालकों को संस्कृत शिक्षण की आज्ञा दी।

श्रीगुरुदेव की आज्ञा मानकर 'कृपासिन्धु' अखण्ड वृन्दावन वास-निष्ठा से श्रीजी का कैङ्कर्य तथा गोस्वामी बालकों को संस्कृत शिक्षा देने लगे।

वृन्दावन आकर उनकी लगन ही और हो गई अब वे प्रत्येक बातों में 'रामजी की कृपा' कहने लगे। यह कहते-कहते 'कृपासिन्धु' 'रामकृपा' बन गये। * जीव पर जब राम की कृपा हो जाती है तब उसके लिये बाकी ही क्या रह जाता है।

उस समय वृन्दावन में 'ब्रह्मसंहिता' का अप्राप्य प्रथम भाग जिसे श्रीचैतन्यदेव ने दक्षिण यात्रा से लौटकर नीलाचल निवास काल में श्रीराय-रामानन्द को दिया था एवं जिसकी प्रतिलिपि कराकर श्रीरूप गोस्वामी अपने साथ वृन्दावन लाये थे का रसास्वादन की दृष्टि से विशेष प्रचार था।

श्रीरूप गोस्वामी ने ब्रह्मसंहिता पर रसिकजनों की आत्यन्तिक निष्ठा देख इसके तत्त्वार्थ निर्देशन के लिये श्रीजीव गोस्वामीको आज्ञा दी। श्रीजीव-गोस्वामी ने अपनी विशद वैदुषी के बल पर इसकी 'दिग्दर्शिनी' स्वरूप वहु-मुखी विस्तृत व्याख्या की।

श्रीरामकृष्ण गोस्वामी ने भी वृन्दावन आकर इस व्याख्या ग्रन्थ को देखा, वे इसके चमत्कारपूर्ण प्रतिपाद्य सिद्धान्तों का समन्वयात्मक-स्वरूप देख विमुग्ध हो उठे और उसी भावावेश में अपने अनुगत 'रामकृपा' को × कठिन संस्कृत न जानने वाले साधकों के रसास्वादनार्थ व्रजभाषा में उसके पद्यानुवाद की आज्ञा दी।

श्रीजीव गोस्वामी के प्रतिपाद्य विषयों पर लिखना सामान्य कार्य न था। श्रीगुरुदेव की अनुज्ञा मानकर[१] 'रामकृपा' ने अपनी नव नवोन्मेष-शालिनी प्रतिभा के बल पर अपूर्व शब्दरसव्यञ्जनायुक्त सुन्दर प्राञ्जल प्रवाहपूर्ण व्रजभाषा में अपने गुरु भ्रातुष्पुत्र[२] श्रीब्रजलाल, स्वेष्ट श्रीराधा-

---

* राम कृपा वल पाय कपीन्द्रा। भयऊ पक्षयुत मनहु गिरिन्द्रा ॥
—रामचरितमानस

× कठिन संस्कृत जानि टीका यह दिग्दर्शनी।
'रामकृष्ण' मन आनि भाषा याकी होइ भलि ॥
प्रभु आयसु विधि पाइ, हरषित हिय रचना रची।
रामकृष्ण एक समै सुधारी। प्रेरयौ मो कहु हृदय विचारी ॥

१. तासु हेतु पहिचानि, 'रामकृपा' भाषा रची।
तासु हेतु लखि मैं सुख पावा। 'रामकृपा' भाषा करि गावा ॥

२. वन्दौं 'श्रीब्रजनाथ', 'कृपासिन्धु' 'राधारमन'।
तारे अमित अनाथ, निगम साखि जग जस प्रकट ॥

रमण तथा [१] अधमोद्धारक महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव की बन्दना करते हुये [२] १८२२ वैक्रमीय वर्ष में इसका क्रमवद्ध पद्यानुबाद कर वैष्णवों के कण्ठहार-स्वरूप श्रीगुरुदेव के करकमलों में समर्पित किया। इसकी रचना शैली 'राम-चरितमानस' की भाँति प्रभावोत्पादक तथा सौष्ठवयुक्त है।

पारिवारिक (प्रमदापक्ष)—

श्रीजीवनलाल गोस्वामी की धर्मपत्नी ※ श्रीकृष्णकुँवर गोस्वामिनी एक महीयसी महिला थी जिन्हें आदि से लेकर अन्त तक श्रीजयदेव कृत 'गीत-गोविन्द' काव्य पूर्णतः कण्ठ था।

श्रीराधारमणदास गोस्वामी की वृषभानु-(वरसाना) वंशोद्भवा माता × श्रीकिशोरी, मुक्तादेवी, कुन्दलता, वसन्तकुमारी, व्रजलता, वृन्दा-देवी, नन्दरानी, चमेलीदेवी, सरवतीदेवी, विद्या, सोमवती, पुष्पा गोस्वामिनी प्रभृति अनेक विदुषी महिलायें इस परिवार में हुईं जिन्होंने श्रीराधारमणजी की गुण गौरव गाथाओं का पद्यात्मक रूप में परिवर्णन किया है।

+ तृतीय थामें की अवशिष्ट रश्मि श्रीहुलसा भाँजी अन्ध और अपङ्ग होते हुये भी जीवन के अन्तिम क्षण तक श्रीराधारमणजी के दर्शन तथा चार लक्ष 'हरिनाम' महामन्त्र जप करती रहीं अन्त में श्रीजी की रूप माधुरी का सन्दर्शन कर निकुञ्जलीला प्रविष्ट हुईं। वंश में किसी अन्य पुरुष न होने के कारण समाज की अनुमति से इनका अन्तिम संस्कार चतुर्थ थामें के श्रीदामोदराचार्य गोस्वामी द्वारा किया गया।

---

१. बन्दौं विधि कर जोरि 'महाप्रभु' पद कंज वर।
   वहु विधि ताहि निहोरि जिन तारचौ वहु अधम नर॥

२. सुरवैद्य अरु युग्म वसु, इन्दु सुवत्सरु जानु।
   आश्विन कृष्ण भानु तिथी शशिसुतवार प्रमानु॥

※ पितामहीं प्रपद्येऽहं श्रीकृष्णकुंवराभिधाम्।
   गीतगोविन्द-काव्यं हि यस्याः कण्ठे विराजते॥
   —दीपिकादीपनी ११।१

× किशोरीं मातरं वन्दे वृषभानुपुरोद्भवाम्। — दीपिकादीपनी ११।१

+ इनकी मृत्यु के पश्चात् किसी औरस पुरुष सन्तान न होने के कारण इस तृतीय थामे की साढे चार मास की सेवा का विभाजन प्रथम, चतुर्थ तथा पञ्चम थामों में ४५-४५-४५ दिनों के समान रूप से किया गया।

वसगई वसगई वसगई हो राधारमणजी की मूरति इन नयनन में वसगई हो।
साँवल मूरति मोहनी सूरत भाल पै वेंदी चमक रही हो। वस····
ललित त्रिभङ्गी मूरति प्यारी अधर पर वंसी बज रही हो। वस····
'वृन्दा' के प्रभु प्राण जीवनधन चरणों का ध्यान धरति रही हो। वस····

'सोमवती' सोवति रही बीते वरस अनेक।
रसिक राधिकारमन पद भजे न मूरख नेक॥

व्रजराज ! राज़ मेरा तुमसे छिपा रहा क्या ?,
आ आज आज़मालो मुझ पर बढ़ा करज है।
कब तक तुम्हें पुकारूं कारूं का ना खज़ाना,
खारी भिखारी के घर आने में क्या हरज़ है।
भवपास में फँसी हूँ है पास में न कोई,
अरदास खास में यह बातें सभी दरज़ है।
कातिल बनो न मोहन ! तिल-तिल तड़फ़ रही हूँ,
हरदिल अज़ीज़ दिल के धड़कन की यह तरज़ है।
इतना सताना भगवन् ! तुमको उचित नहीं है,
चित में तुम्हें वसाकर पैदा किया मरज़ है।
गौरव से 'गौर' 'विद्या' को ग़ोर कर सम्भालो,
राधारमण ! दयालो ! इतनी सी ही अरज़ है।

विन देखे रमण जियरा तरसे।
हुई दिवानी फिरूं अकेली राधारमण कहाँ दरसे॥
सगरी रैन तड़फत बीती, तऊ न मिली दवा ढंग से।
विना दरस मोहे कल ना परत है विनय करूं चरनन परसे।
सूखे 'पुष्प' विना माली के, लगी आस कब मेहा वरसे॥

रे मन राधारमन भज, वृन्दावन रसखान।
ललित लड़ैती लाडिली, जो चाहत कल्यान॥१॥

'विश्वम्भर' वृन्दाविपिन महिमा वरनि न जाय।
रवितनया तट वर निकट, वंशी विटप सुहाय॥२॥

— दिवंगत बालकवि श्रीविश्वम्भरनाथ गोस्वामी

पारिवारिक (पुरुषपक्ष)—

[1]श्रीजनार्दनदास गोस्वामी—

अत्यन्त प्रतिभा भावापन्न सौन्दर्यस्वरूप सहृदय महानुभाव थे।

श्रीगोस्वामी जनार्दन पूजत राधारमण सदा ही।
धरि,कें भोग करत है तरपन नित यमुन तीर पर जाही ॥
एक दिन एक पंजाब ही को कोऊ शिष्य अतर यँह लायो।
अति अमोल सत तोले को सो चाहत प्रभुहि चढ़ायो ॥
बरसन में लखि डील गयौ सो गोस्वामी पै वहाँ ही।
नमस्कार कर सीसी दीनी ए श्रीजी हित आई।
तब गोस्वामी यमुनाजी में लै चढ़ाय सब दीनो।
तब वह सेवक भयौ विमन मन कछु गोस्वामी सो चीनो ॥
कही जाओ दरशन कर लीजै जब गयो दरशन के काजै।
देख अतर में तर श्रीजी को अति अचरज भयौ आजै ॥
तब गोस्वामी कह्यौ अतर यह राधारमन निहारो।
यमुनाजी के हाथ पठायो तुम जानी जल डारो ॥
जाय परचौ चरनन में सेवक भाव भगति में भीनो।

—गोपालकवि, श्रीगोपालभट्टचरित्र

श्रीचैतन्यदास गोस्वामी—

को चरित्र कछु सुनिये।
रहै सदा अलमस्त प्रेम में गिनें न सम्पति दुनियै ॥
करन कृपा एक समय जनन पर ते दिल्ली माँहि पधारे।
तँह वजार मधि जलेबिन के ताते थाल निहारे ॥
यह श्रीराधारमन ही लायक यह कहि सब ले लीनो।
श्रीजी को धरि भोग द्विजन सन्तन बरताय सो दीनो ॥
राधारमन जाय पाय जँह यहाँ भोग मधि पाई।
सब भोजन में देख जलेबी अचरज भयो महाहीं ॥
लखिकें भोग उतारचौ सब अरु करि पुनि भोग लगायौ।
कोई दिन पीछें करि रामत चैतन्यदास यहाँ आये।

---

१. 'पचदूता' प्रतिज्ञा पत्र के अनुसार ज्ञात होता है कि इन्हें श्रीजी का अधिकारी पद प्राप्त हुआ था किन्तु आपने समान भावना को दृष्टिकोण में रख उदारता से इसका प्रत्याख्यान कर दिया।

मिलि गोस्वामी कही जलेवी एक दिन भोगन माँही।
खीर भात अरु कढी शाक में भोग लगावत पाई ।।
भोग लग्यौ हमन कहाँ जो यहाँ श्रीजी ने पायौ।
यह कहि प्रेमहि में विह्वल ह्वै अति आनन्द उर छायौ ।।
—गोपालकवि, श्रीगोपालभट्टचरित्र

श्रीराधारमणदास गोस्वामी—

का नाम श्रीराधारमणीय गोस्वामी वंश परम्परा में अत्यन्त समादर के साथ स्मरण किया जाता है। आप श्रीमद्भागवत के रससिद्ध भाव वक्ता तथा षड्दर्शन शास्त्र के अप्रतिम विद्वान् थे। आपके पिता श्रीगोवर्द्धनलाल तथा पितामह श्रीजीवनलाल गोस्वामी भी उच्चकोटि के सार्वभौम पण्डित थे। आपकी माता श्रीकिशोरीदेवी बरसाने के गोस्वामी परिवार की कन्या थी। पितामही श्रीकृष्णकुंवर गोस्वामिनी एक परम विदुषी भाव प्रवीण महिला थी जिन्हें सम्पूर्ण श्रीजयदेव कृत 'गीतगोबिन्द' कण्ठस्थ था जिसका कि वे नित्य नियमित रूप से पाठ करती थी। आपके पारिवारिक भ्राता श्रीकृष्णगोविन्द अभिन्न मित्रों में थे। आपकी दीक्षा पितामह श्रीजीवनलाल गोस्वामी द्वारा सम्पन्न हुई थी। आपने अपनी वैदुषी के समाश्रय से 'श्रीमद्-भागवत' की श्रीधरीय टीका के अवशिष्ट अंशों के आन्तरिक आशयों का स्पष्टीकरण करते हुये 'दीपिका-दीपन' नामक विस्तृत भावपूर्ण टीका का प्रणयन किया। आपने 'शारीरिक सूत्र' पर भाष्य तथा 'सर्वसिद्धान्त तत्त्व-प्रकाशिका' टीका की भी रचना की। आपकी असाध्य रोग विमुक्ति श्रीचैतन्यदेव द्वारा हुई थी इसका परिवर्णन आपने 'दीपिका-दीपन' टीका में किया है।

※ राधारमनदास गोस्वामी तँह पण्डित एक राजे।
तिनके सम वृन्दावन में नहि पण्डित दूजो आजे ।।
वेद पुराण शास्त्र उपशास्त्र सु सबके मरमन जानें।
गौड़ियान के ग्रन्थ जिते पुनि निज कृत ग्रन्थ बखानें ।।

※ श्रीगोस्वामी विश्वम्भरजी के समीप सञ्चित अभिलेखों द्वारा ज्ञात होता है कि— १८१८ वैक्रमीय से १८५७ वैक्रमीय तक नरवर रियासत से प्रतिवर्ष इनके पितामह दीक्षागुरु श्रीजीवनलाल गोस्वामी को माफी मिलती रही और १८८७ वैक्रमीय में आपके अनुज श्रीव्रजलाल द्वारा पारिवारिक सम्पत्ति का विभाजन हुआ था अतः आपका जन्मकाल अनुमानतः १८५० वैक्रमीय स्थिर होता है साथ ही श्रीगोपालकवि की १९०० वैक्रमीय रचना में आपकी वृन्दावन स्थिति पर प्रकाश पड़ता है अतः अनुमानतः १९१० वैक्रमीय पर्यन्त आपका जीवित

श्रीधर टीका पै टीका भागवतहि पै कियो।
वृन्दावन सों वाहिर कवहूँ पैंड़ पाँव नहीं दियो ॥
पण्डित पढत रहत जिनते वहु.................... ।
—श्रीगोपाल कवि श्रीवृन्दावनधामानुरागावली

श्रीसार्वभौम मधुसूदन गोस्वामी (पौष कृ० ६ सं० १९१४—ज्येष्ठ कृ० ६, सं० १९८५)

संस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित के रूप में आपका आविर्भाव हुआ था। अपनी वैदुषी के बल पर प्रति घन्टा ३०० श्लोकों को कण्ठस्थ रखने की आपमें अद्भुत क्षमता थी। आपने अन्यतम सहयोगी श्रीशोभन गोस्वामी एवं श्रीराधाचरण गोस्वामी के सहयोग से 'वैष्णवधर्म-प्रचारिणी' सभा की संस्थापना कर वैष्णवधर्म का विश्व विश्रुत प्रचार किया जिससे प्रभावित हो नवद्वीप के पण्डित समाज ने आपको 'सार्वभौम' की सर्वोच्च उपाधि से समलंकृत किया।

सहस्रों छात्र आपके श्रीचरणोपान्त में बैठकर श्रीमद्भागवत एवं वैष्णव शास्त्र का गहन अध्ययन करते थे। आपका 'आचार्यकुल' 'वैष्णव-विद्यालय' 'प्रेम महाविद्यालय' एवं 'गुरुकुल बिश्वविद्यालय' की संस्थापना में बहुल बड़ा योगदान था। सर्वश्री भक्तिविनोद ठाकुर, भक्तिसिद्धान्त सरस्वती, शिशिरकुमार घोष, हरिदास गोस्वामी एवं रसिकमोहन विद्याभूषण आदि विद्वानों से आपका घनिष्ठ साम्प्रदायिक सम्बन्ध था। आपके द्वारा 'श्रीराधा-रमण प्राकट्य' 'स्मार्त्तमर्म' 'संस्कारतत्त्व' 'प्रतिमातत्त्व' 'गायत्रीपरिणय' आदि मौलिक ग्रन्थों की रचनायें की गई। आपके ज्येष्ठ पुत्र

श्रीराधाकृष्ण गोस्वामी—पिताश्री के समान प्रतिभाशील जन थे। अनेक वर्षों तक 'आनरेरी मजिस्ट्रेट' पद पर विराजित होकर आपने अपनी अद्भुत न्यायशीलता का परिचय दिया। श्रीराजा महेन्द्रप्रताप आपके अभिन्न मित्रों में थे। आपके अनुज

श्रीकृष्णचैतन्य गोस्वामी—

भी एक भावप्रवीण विचक्षण विचारशील व्यक्ति थे। आप अनेक वर्षों तक 'आनरेरी मजिस्ट्रेट' तथा स्थानीय नगरपालिका के शासन द्वारा मनोनीत सदस्य रहे। वृन्दावन में नव मन्दिर निर्माण कर आपने 'अमिय निमाई

रहना निश्चित है। सार्वभौम श्रीमधुसूदन गोस्वामी के कार्त्तिक शुक्ला पूर्णिमा भौम-वासर १९५७ वै० में निर्मित 'शान्तिकुटीर' द्वार पर उटङ्कित अभिलेख से ज्ञात होता है कि यह वह स्थान है जहाँ विराजित होकर श्रीगोस्वामीपाद ने टीका ग्रन्थों का प्रणयन किया था।

गौराङ्ग महाप्रभु की प्रतिष्ठापना की। श्रीराधारमण मन्दिर के अनेक वर्षों तक कोषाध्यक्ष तथा अनेक संस्थाओं के सम्माननीय न्यासी थे।

श्रीराधाकृष्ण गोस्वामी के ज्येष्ठ पुत्र

श्रीहेमाङ्ग गोस्वामी शास्त्री—

भी प्रतिभाशील व्यक्ति थे। आपने अपनी १० वर्ष की अवस्था में 'श्रीराधा-रमण, चैतन्याष्टक' 'प्रमेय-रत्नावली' का भावानुवाद की संरचना कर अगाध पाण्डित्य का परिचय दिया। यह प्रभासित प्रभा अकाल में ही कालगर्भ विलीन हो गई।

प्रातः स्मरणीय श्रीगोपीलाल, श्रीसखालाल गोस्वामी—

भ्रातृ युगल संस्कृत साहित्य, श्रीमद्भागवत, वैष्णव शास्त्र के उद्भट विद्वान् थे। प्रतिदिन शत-शत छात्र आपसे विविध विषयों का अध्ययन करते थे। पण्डित बाबा श्रीरामकृष्णदास, ग्वारिया बाबा, मथुरादास भण्डारी आदि अनेक सिद्ध वैष्णव आपके अनुगत छात्र थे।

× आपने अपने उद्योग से शिष्यों द्वारा संग्रहीत धनराशि के स्थायी कोष की संस्थापना श्रीजी के अखण्ड भोगराग सञ्चालनार्थ वाराणसी में की। साझी, बंगला, सेवा परम्परा का मर्यादित स्वरूप प्रदान द्वारा आपने अविस्मरणीय सामाजिक सराहनीय सेवायें सम्पादित की। स्थानीय श्रीरङ्ग मन्दिर के आद्याचार्य श्रीरङ्गाचार्य स्वामी का आप पर अगाध स्नेह था।

'वेषाश्रयविधि' 'दीक्षाविधि' एवं विभिन्न विषयों की व्यवस्थाओं का विस्तृत सङ्कलन आपके द्वारा सम्पन्न हुआ। आपके ज्येष्ठ पुत्र

श्रीवनमालीलाल गोस्वामी—

अपने पिताश्री के समान तेजस्वी महानुभाव थे। सङ्गीतशास्त्र के अनुपम ज्ञाता होने के कारण श्रीभैया बलवन्तराव शिन्दे, पं० विष्णु दिगम्बर एवं श्रीचन्दन चौबे आदि सङ्गीतज्ञ समय-समय पर आपसे संगीत विषयक निर्देशन प्राप्त करते थे। श्रीनरोत्तम ठाकुर रचित 'प्रेमभक्तिचन्द्रिका' का आपने व्रजभाषा में पद्यानुवाद किया था। आपके अनुज

दार्शनिक सार्वभौम साहित्य दर्शनाद्याचार्य न्याय-तर्करत्न पण्डित श्रीदामोदरलाल गोस्वामी शास्त्री—

विश्वविश्रुत विद्वान् थे। षड्दर्शन, न्याय, वेदान्त, साहित्य, व्याकरण के अप्रतिम पाण्डित्य के साथ आप आयुर्वेद, ज्योतिष तथा सङ्गीत

× श्रीराधारमण-सेवा समिति—काशी उसका ही विस्तृत स्वरूप है।

शास्त्र के भी सूक्ष्मदर्शी ज्ञाता थे । वाराणसी में विराजित होकर पण्डित समाज का आप प्राधान्यास्त पद समलंकृत करते थे । आपने कुछ समय तक श्रीपण्डित मदनमोहन मालवीय के ऐकान्तिक अनुरोध से 'वाराणसी हिन्दू विश्व विद्यालय' में अवैतनिक साहित्याध्यापक पद सुशोभित किया था । आपकी विलक्षण स्मृति प्रतिभा थी । सर्वश्री डा० मङ्गलदेव शास्त्री, गोपीनाथ कविराज, प्रमथनाथ तर्कभूषण आदि विद्वान् आपसे समय-समय पर शास्त्रीय दिशा निर्देशन प्राप्त करते थे । आपकी 'भक्तिरसामृतसिन्धु-टिप्पणी' वात्सायन कृत 'कामसूत्र' पर टीका *श्रीमद्भागवत का प्रति-अध्यायोक्त व्रजभाषा पद्यानुवाद, सामयिक धार्मिक पत्रों में प्रकाशित विद्वतापूर्ण लेख एक संग्रहणीय निधि है । आपके भ्रातुष्पुत्र—

श्रीमाधवलाल गोस्वामी वैष्णवदर्शनतीर्थ—

अपूर्व पाण्डित्य तथा श्रीजी के अनन्य आराधक तथा नाट्य सङ्गीतके अप्रतिम ज्ञाता के रूप में सुप्रसिद्ध थे । आप स्थानीय नगरपालिका के सदस्य भी रहे । श्रीसार्वभौमपाद के एकमात्र पुत्र

श्रीयादवलाल गोस्वामी तथा पौत्र श्रीवास गोस्वामी-

भी वैष्णव शास्त्र के गहन चिन्तक थे ।

श्रीलल्लूलाल निवासी काशी श्रीमाधवलाल प्रयागी ।
सेवत रहत सदा श्रीजी कों पण्डित अति अनुरागी ॥
करि प्रसार मतवाद दूरि करि वैष्णव धर्म कथा कों ।
अगणित शिष्य किये जगती महं थापी प्रेम प्रथा कों ॥
श्रीजगदीश ईश ईशन कों गीत सङ्गीत प्रसारी ।
राधारमण चरण आराधक भक्ति भाव सञ्चारी ॥
वासुदेव गोवर्द्धनजू की करनी कौन बखाने ? ।
कांग्रेस के दृढ़ समुपासक जो जाने सो जाने ॥

---

* श्रीमद्भागवतोक्त सब अध्यायन अनुसार ।
व्रजभाषा में मैं कहूँ कथा भागवत सार ॥

आनन्दवन में यह भयो 'कृष्णकेलि' अनुवाद ।
सम्वत् दो नौ नौ धरा पूस गौर परसाद ॥

व्रजभाषा मीठी पुनः जननी भाषा हेत ।
या कारन अनुवाद में लीनी हरषित चेत ॥

श्रेय—श्रीमद्भागवतांक १९९२-९३ वें०

नाटय शास्त्र के अद्भुत ज्ञाता श्रीबद्रीलाल यशस्वी।
कर्मकाण्ड कुल कमल शिरोमणि श्रीवलदेव मनस्वी ॥
श्रीरणछोर सौर मण्डल के ज्ञाता रहे अनोखे।
श्रीराधालाल ज्ञान गरिमा तै लोक अनेक प्रतोषे ॥
श्रीवामन आचारीजू की कीर्त्ति ध्वजा फहरानी।
श्रीमदनगुपाललालजू की ही रही मधुर रस वानी ॥
श्रीचन्द्रकिशोर शोर करि राख्यौ भाव भगति के मग में।
श्रीश्यामकिशोर वेद विधि पण्डित मण्डल मन्डन जग में ॥
श्रीघनश्याम नवल भ्रातृद्वय भाव भगति रस भीने।
श्रीव्रजराज शास्त्रीजी हू पण्डित रहे नवीने ॥
श्रीव्रजरतन अवनि-मणिभूषण वाराणसी निवासी।
पावन किये अमित्र अग्रिम कुल राधारमण उपासी ॥

श्रीदम्पतिकिशोर गोस्वामी—

व्रजभाषा के रससिद्ध कवियों में आपकी गणना थी। आपकी नव-रसपरक रचनाओं का संग्रह 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' में संकलित है।

नवनीत गुपाल को भावति है जननी जिय में यह जानि रही।
उठि भोर ही जाति है गायन लै सङ्ग ग्वालनि के नहीं माने कही ॥
कबि 'दम्पति' दूध जमाय धरयौ अरु नेति सुवांधिके राखी रई।
घन सौं गरजै दधि को मटुका यशुदा उठि प्रात चलात रही ॥

ऊपर भूखी माछरी नीचे भूखे शेर।
यह व्यवस्था द्वार की खाऊँ कौन कू घेर ॥

श्रीनरसिंहदास गोस्वामी—

सरस श्रीमद्भागवत वक्ता के साथ एक मान्य प्रतिभा-भावापन्न व्यक्ति थे, इनके जीवन का बहुत बड़ा भाग श्रीजी की सेवाराधना में व्यतीत हुआ। आपने अनेक वर्षों तक स्थानीय नगरपालिका के उपाध्यक्ष रूप में जनता की सेवायें की। आपके चिर प्रसन्न स्वभाव के कारण जो एक बार आपके समीप आता वह चिरकाल के लिये वशीभूत हो जाता था।

श्रीलालमणि गोस्वामी—

व्रजभाषा के ख्यातिमान कवि थे। आपके द्वारा 'श्रीराधारमण-विनय' सम्बन्धित काव्य कलात्मक संग्रह प्रकाशित हुआ है।

श्रीधर गोस्वामी—

ने स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी के रूप में राष्ट्रीय आन्दोलनों के समय सक्रिय भाग ले वर्षों तक कारागार यातनायें वरण की। योग साधना के कारण आप 'योगीराज' के नाम से प्रसिद्ध थे।

श्रीछबीलेलाल गोस्वामी—

श्रीमद्भागवत के रससिद्ध भाववक्ता थे।

आचार्य श्रीमदनमोहन गोस्वामी, वैष्णवदर्शनतीर्थ 'भागवतरत्न'—

श्रीमद्भागवत तथा वैष्णव शास्त्र के शीर्षस्थानीय विद्वान् थे। वैष्णवदर्शन परीक्षा में सर्वोच्च अङ्क प्राप्त होने के कारण 'वङ्गाल संस्कृत एसोसियेशन' द्वारा स्वर्णपदक प्राप्त हुआ। वर्षों तक आप स्थानीय नगर-पालिका के मनोनीत सदस्य तथा 'आनरेरी मजिस्ट्रेट' पद पर आसीन रहे।

श्रीलाल गोस्वामी—

प्रबल प्रतापी महज्जन थे इन्हीं की प्रेरणा से श्रीजी के नव मन्दिर तथा × निजीय आवास स्थान का निर्माण हुआ था इन्हीं के पुत्र

श्रीप्रभुदयाल तथा श्रीहरदयाल गोस्वामी—

भी पिताश्री के समान तेजस्वी थे। राजकीय फरमानों के अनुसार आपको शासन द्वारा निश्चित वार्षिक भेट प्राप्त होती थी। श्रीहरदयाल गोस्वामी के पुत्र

एक श्रीचैतन्यदयाल दूजै श्यामलालजी वाजें।
—गोपालकवि

श्रीजी के अनन्य आराधक तथा श्रीस्वामी रङ्गाचार्यजी के अभिन्न मित्रों में थे। प्रतिवर्ष ब्रह्मोत्सव के 'अवभृथ' स्नान में श्रीस्वामीजी के साथ आप सम्मिलित होते थे। इस अवसर पर मन्दिर की ओर से आपको रेशमी परिधान तथा उपवस्त्र भी प्रदान किये जाते थे।

श्रीगोस्वामी गल्लूजी–गुणमञ्जरीदास—(१८८४-१९४७ वै०)

आपके पिताश्री का नाम श्रीरमणदयाल गोस्वामी था। आपने श्रीवृन्दावन में सुन्दर मन्दिर निर्माण कर वै० १९३२ में 'श्रीषड्भुज महाप्रभु' विग्रह की प्रतिष्ठापना की। आपकी सेवा भावना सर्वोच्च कोटि की थी। आप मानसिक सेवा में श्रीजी का प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त करते थे। स्वभाव सहज सरल तथा निच्छल था। व्रजभाषा में ही आप वार्त्ता करते थे। आप व्रज में

× वर्त्तमान में इसका अर्द्धांश श्रीमन्दिर द्वारा क्रय कर लिया गया है।

श्रीमद्भागवत के रससिद्ध वक्ता तथा व्रजवासियों के लिये कल्पवृक्ष दाता के रूप में प्रसिद्ध थे। आपके द्वारा निर्मित 'सेवाविधि' 'उत्सवावली' 'श्रीगोपाल-भट्ट शतक' 'स्मरण मंगल' 'श्रीराधारमण पद मञ्जरी' आदि रचनायें सरस एवं भावपूर्ण हैं।

प्यारी चरनन में नव वसन्त। दस नख ससि किरननि नित लसन्त।।
अगनित अंगुरी है नव प्रवाल। बिछुवा घुंघरु मुकलित रसाल।।
मेंहदी द्युति केसू को प्रकास। जावक नव वेली कर विलास।।
छिप बोलति स्यामल गुनि सरूप। कोकिल कुहुकति है अति अनूप।।
दामन लामन मलया समीर। सुरभित चहुँदिसि मिलि हरित धीर।।
केसर उर की प्रिय लगी आय। गुन-गुन 'गुन-मंजरी' मधुप धाय।।

श्रीराधाचरण गोस्वामी 'मञ्जु'—(१६१५-१६८२ वै०)

का श्रीगोस्वामी गल्लूजी के एकमात्र पुत्र रूप में जन्म हुआ था। आपका प्रारम्भिक शिक्षण फर्रुखाबाद में हुआ। आप अनेक भारतीय भाषाओं एवं उर्दू, अंग्रेजी भाषा के भी प्रौढ विद्वान् थे। आपकी रचनायेँ इतनी सशक्त तथा प्राञ्जल होती थी कि विद्वत् समाज में आपकी 'बाणभट्ट' के रूप में गणना की जाती थी। आप 'भारतेन्दु श्रीहरिश्चन्द्र' के अत्यन्त प्रिय तथा अनन्य सहयोगी थे। 'कविकुल-कौमुदी' 'वैष्णवधर्म-प्रचारिणी' 'चैतन्य-चन्द्रिका' आदि सामयिक पत्रिकाओं के सम्पादन तथा शताधिक ग्रन्थ तथा निबन्धों की रचनाओं के कारण हिन्दी साहित्याकाश में आप चन्द्र के समान ज्योत्स्ना सम्पन्न थे। आपकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर विद्वत्समाज द्वारा आपको 'विद्यावागीश' की उपाधि से समलङ्कृत किया गया। वर्तमान हिन्दी भाषा प्रसार के आप आदिजनक थे। पञ्चदश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के आप मान्य सभापति मनोनीत किये गये। अनेक वर्षों तक आप 'आनरेरी मजिस्ट्रेट' तथा स्थानीय नगरपालिका के सम्मान्य सदस्य रहे।

रा धिकारमन को न भूल मन आठोयाम,
धा य धाय वृन्दावन निसिदिन निवसि रे।
च रित सरित में स्नान कर साधू संग,
र ज तम तापन में नेकहू न फंसि रे।
न रक निवारन निमित्त नित नाम रट,
गो पीजनवल्लभ को गाय गाय जसि रे।
स्वा रथ सजेगो परमारथ पुजेगो 'मंजु'
मी त सो मिलेगो नाँहि लागे मुख मसि रे।।

आपके ज्येष्ठ पुत्र श्रीगौरचरण गोस्वामी—

भी पिताश्री के समान प्रतिभाभावापन्न थे। आपने अपनी अल्पावस्था में 'विष्णुप्रियादेवी चरित्र' 'गौराङ्ग-जीवनी' 'भूषणदूषण' 'अभिमन्युवध-नाटक' आदि मौलिक ग्रन्थों की रचना की।

श्रीदामोदराचार्य गोस्वामी, वैष्णव-शास्त्री (का० कृ० ४, वैं० १९४४, श्रावण शुक्ला १३ वैं० २०२९) —

आपका जन्म श्रीगंगाप्रसाद गोस्वामी एवं श्रीनारायणीदेवी के पुत्र रूप में हुआ। पिताश्री के देहावसान के पश्चात् अल्प अवस्था में आप वृन्दावन आये और श्रीवलदेव गोस्वामी, श्रीसार्वभौम मधुसूदन गोस्वामी एवं श्रीराधाचरण गोस्वामी के सान्निध्य में श्रीमद्भागवत एव वैष्णव शास्त्र का अध्ययन करने लगे। वृन्दावन में ही आपकी माता का देहावसान हो गया अतः आपकी पारिवारिक चाची श्रीराधावल्लभीयं-सेवाधिकारी श्रीमोहनलाल गोस्वामीजी (छोटी सरकार) की सहोदरा श्रीचमेलीदेवी द्वारा आपका लालन-पालन और उन्हीं की प्रेरणा से श्रीराधावल्लभीय-सेवाधिकारी श्रीराधेश्यामवल्लभ गोस्वामी (लखनऊ) की कन्या श्रीचमेलीदेवी के साथ विवाह सम्पन्न हुआ। आप कांग्रेस के एकनिष्ठ अनुयायी थे।

पण्डित परम प्रवीण प्रतापी दामोदर आचारी।
पूर्व बङ्ग ढाका नगरी में हरि लीला विस्तारी॥
एक सहस्र भागवतजू को पूर्ण पारायण कीनो।
निरवधि राधारमण लडाये भाव भक्ति रस भीनो॥
को कहि सके तात गुणगण जन अद्भुत परम विरागी।
वैष्णवधर्मशास्त्र को वक्ता 'गौर' चरण अनुरागी॥

मदनमोहन अरु बालकृष्णजू राधारमण मनाये।
नृत्यगुपाल निरत हरिकीर्त्तन निरवधि हरि जस गाये॥

वक्ता सरस भागवतजू के श्रीकन्हैयालाल गुसांई।
श्रीनारायण राजाजी जो भरि हरिगुण गरिमा गाई॥

आपके पुत्र श्रीबालकृष्ण गोस्वामी राजाजी—

स्वेष्ट श्रीजी के एकनिष्ठ आराधक थे। आप प्रतिदिन सप्ताह क्रम से श्रीमद्भागवत पाठ किया करते थे। सङ्गीतशास्त्र के भी पारदर्शी ज्ञाता थे।

श्रीठाकुरलाल गोस्वामी—

एक दिन ठाकुरलाल गोस्वामी निशि प्रभु शयन कराये।
जल करुवा न भरयौ जल ते तँह दे कपाट घर आये॥

तब 'गोपाल' खवास को सपनो अर्द्धरात्रि पुनि दीनों।
गोस्वामिन सों कही जाय जलपात्र न भरचौ नवीनों।
तब वह गोस्वामिन ढिग आयो स्वप्न लख्यौ सो सुनायो।
करि स्नान लख्यौ करुवा तँह जल विन रीतो पायो।।
भरि जल स्तुति करि श्रीजी की.................................

—श्रीगोपालकवि, श्रीगोपालभट्टचरित्र

श्रीगोपालकवि के अनुसार—

इसीप्रकार एक दिन एक अन्य गोस्वामी भी शयन के समय जलपात्र रखना भूल गये। भगवान् भला प्यासे कैसे रह सकते थे? उन्होंने तुरन्त टट्टीस्थानके *महन्त श्रीललितकिशोरदेवजी को आधी रात में जगा कर अपने प्यासे रहने की बात बतलाई। श्रीललितकिशोरदेवजी ने तुरन्त अपने दो शिष्यों को सेवाधिकारी गोस्वामीजी के समीप जलपात्र न रखने की सूचना दी। गोस्वामीजी उठे और स्नान कर मन्दिर में प्रविष्ट हो जलपात्र निवेदन करते हुये श्रीजी से इस महदपराध की क्षमा याचना करने लगे।

श्रीलाडिलीलाल गोस्वामी—

एक मल्लविद्या-विशारद व्यक्ति थे। वृक्ष को दो भागों में विभक्त कर उसमें लोढी फंसा आपने धोलपुर राज्य से वार्षिक भेट प्राप्त की। आपके पुत्र

श्रीराधाचरण गोस्वामी—

एक विख्यात सुकृति जन थे। आपकी 'श्रीचैतन्यसार' तथा 'संक्षिप्त दीक्षाविधि' का अनुवाद मौलिक रचनायें हैं। आपके ही पारिवारिक—

श्रीगोवर्द्धन गोस्वामी एक ख्यतिमान कवि थे।

'गौर' 'गोवर्द्धन' दोनों दास, नितप्रति करें चरण की आस।

श्रीचिम्मनलाल गोस्वामी—

वैष्णव वेषाश्रय परम्परा के शिरोमणि रूप में विख्यात थे। श्रीकृष्णदास भण्डारी के बाद में आपके ही साक्ष्य से विजय प्राप्त हुई थी। आपने निरन्तर हरिनाम रटते हुये इच्छा मृत्यु वरण की।

श्रीनन्हेलाल गोस्वामी—

श्रीमद्भागवत के एक अप्रतिम विद्वान् थे। कथा में एक साथ हास्य, करुण एवं शृङ्गार रस का परिवर्णन कर श्रोताओं को विमुग्ध करने की आपमें अद्भुत कला थी।

---

* श्रीललितकिशोरजी के जीवनवृत्त से।

आचार्य श्रीबालकृष्ण गोस्वामी—

वैष्णव साहित्य के अप्रतिम विद्वान् के साथ कला पक्ष के भी पारदर्शी ज्ञाता थे। आपने 'फाइन आर्ट–प्रेस' के माध्यम से गौडीय रस ग्रन्थों का प्रकाशन, 'नीलाचल में व्रजमाधुरी' की रचना के साथ 'श्रेय' 'चैतन्य' 'नाम-माहात्म्य' आदि मासिक पत्रों के सम्पादक रूप में अविस्मरणीय साहित्य सेवा की।

श्रीमां यशोदा, श्रीकृष्णप्रेम (रोनाल्ड निक्सन) आपके ही अनुगत शिष्य थे, अन्त में आपने वैष्णव-वेषाश्रित श्रीकृष्ण-किङ्कर तीर्थ के रूप में स्वेष्ट लाभ प्राप्त किया। आपके कनिष्ठ पुत्र

श्रीविहारीलाल गोस्वामी—

पिताश्री के समान एक प्रतिभापन्न व्यक्ति थे। आप केन्द्रीय शासन के उच्च पद से सेवा-निर्वृत्त हो साम्प्रदायिक ग्रन्थ रचनाओं में अपना समय अतिवाहित करने लगे। 'श्रीगौराङ्ग' आपकी प्रसिद्ध मौलिक रचना है।

श्रीदाऊदयाल श्रीदामोदर सोदर युगबर पर उपकारी।
करुणाकर धरणीधर-मन्डन वृन्दाविपिन-विहारी ॥
व्रजभूषण दूषणहर रसमय भावभक्ति रस भीनो।

श्रीगिरिधरलाल गोस्वामी—

× गिरिधर चरण शरण अशरण की राधारमण उपासी।
सरस सुविज्ञ सुजन जन सरवस पीलीभीत निवासी ॥

श्रीगोविन्दलाल गोस्वामी—

'नित्य, वर्षोत्सव चन्द्रिका' के रचनाकार थे।

श्रीराधालाल गोस्वामी—

भूषण, पटना वारे न्यारे।
मन्दिर माँहि सुने भीषण रव शत-शत विषधर कारे ॥
जित-जित जात सुनत उत अतिकर डरपै निज मन माँही।
लिये बुलाय चार आचारज तिनहूँ सुनै महाही ॥
करि वहु विनय गहे युग चरनन परैं धरनि अकुलाई।
माखन मिश्री भोग धरायौ जिय की जरनि नसाई ॥

× गौर गौरगत गोन 'गिरिधर' छाँडि प्रपञ्च सब।
ए दोऊ सुख भौन चरन राधिकारमन भज ॥

श्रीकृष्णचैतन्य, श्रीगोवर्द्धनाचार्य गोस्वामी—

भ्रातृयुगल ने पटना स्थित निज 'श्रीचैतन्य मन्दिर' जहाँ श्रीवृन्दावन यात्रा के समय श्रीसनातन गोस्वामी ने विश्राम किया था एवं जहाँ श्रीगौर-निताई विग्रह के अपूर्व दर्शन हैं में एक विशाल 'चैतन्य-पुस्तकालय' की संस्थापना की। यह संग्रहालय विहार का ख्याति-प्राप्त स्थान है जहाँ अनेक दुर्लभ कलात्मक वस्तु एव प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों का संग्रह है।

वर्षों तक आपने 'चैतन्य-चन्द्रिका' पत्रिका का भी सम्पादन किया। उस समय इस पत्रिका के माध्यम से विहार में हिन्दी भाषा का बहुत बड़ा प्रचार हुआ। षोड़श हिन्दी साहित्य सम्मेलन के आप मन्त्री भी थे। आपके ज्येष्ठ पुत्र

श्रीकृष्णकुमार गोस्वामी—

साधनसम्पन्न कलाकोविद महज्जन थे। सांझी रचना पक्ष को आपने अपनी प्रतिभा से नया आयाम दिया।

श्रीघनश्यामलाल, श्रीपुरुषोत्तमलाल गोस्वामी—

भ्रातृयुगल श्रीमद्भागवत, व्याकरण, कोषशास्त्र के अद्वितीय विद्वान् के साथ सांझी, बङ्गला आदि कलात्मक-पक्ष के सूक्ष्मदर्शी ज्ञाता थे।

श्रीरासविहारी गोस्वामी शास्त्री, एम.ए., व्याकरणाचार्य—

व्याकरण, न्याय, दर्शन के अन्यतम विद्वान् के साथ सङ्गीत, वैष्णव-सिद्धान्तशास्त्र, ज्योतिष तथा आयुर्वेद के भी निष्णात ज्ञाता थे। श्रीमद्-भागवत की रससिद्ध वर्णना में आपकी अपरिमित ख्याति थी। आपने शारी-रिक सूत्रों का अर्थ श्रीमद्भागवत के श्लोकों द्वारा समाहित कर 'आनन्दानु-भूति-रहस्य' की रचना की।

श्रीगोपाललाल गोस्वामी—

परम प्रसिद्ध तपोनिष्ठ तेजस्वी भजनानन्दी महानुभाव थे। प्रतिदिन चार लक्ष 'श्रीहरिनाम महामन्त्र' जप आपके जीवन का चरम लक्ष्य था। आप श्रीशचीनन्दन गौरचन्द्र की वात्सल्यभाव से समुपासना करते थे।

सिद्ध, प्रसिद्ध, सन्तजन-मन्डन, श्रीसन्तदास गोस्वामी।
सरल स्वभाव, सत्यव्रत पालक, कर्मठ, कुशल, सुनामी॥

श्रीरामचन्द्र गोस्वामी—

श्रीमद्भागवत के रससिद्ध वक्ता तथा वैष्णवस्मृति के विचक्षण परि-ज्ञाता थे। पञ्जाव का प्रत्येक स्थान आपकी वाग्मिता से प्रभावित था।

आपने अपनी रसशैली में श्रीचैतन्यदेव के उदात्त सिद्धान्तों का प्रचार कर 'सनोतनधर्म' समाज में एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी।

'भारतधर्म महामण्डल' काशी द्वारा आपको 'गोस्वामीकुलभूषण' उपाधि से समलंकृत किया गया।

श्रीनन्दकुमार गोस्वामी—

श्रीजी के अन्यतम आराधक तथा वैष्णव सिद्धान्त के प्रतिभा-सम्पन्न प्रचारक थे।

श्रीडाक्टर जगजीवनाचार्य गोस्वामी—

श्रीमद्‌भागवत के अन्यतम वक्ता तथा चिकित्सा शास्त्र के अनुभवशील विद्वान् थे। आपने अपने चिकित्सा सौष्ठव से अनेक निराश रोगियों को आरोग्य प्रदान किया।

श्रीकिशोरीलाल गोस्वामी—

सत्यनिष्ठ, स्वतन्त्रचेता, सहृदय, सज्जनजन थे। प्रत्येक राष्ट्रीय आन्दोलनों में सक्रिय योगदान दे वर्षों तक कारागार यन्त्रणायें वरण की। स्थानीय नगरपालिका के उपाध्यक्ष भी थे। श्रीमहात्मा गान्धी के व्यक्तिगत पत्रों का संग्रह आपके समीप था।

श्रीगोवर्द्धन मनहरण राधिकारमणहि लाड़ लड़ाये।
श्रीगोपीलाल विधिज्ञ-मौलिमणि गुन नहीं जात गनाये॥

श्रीशोभनलाल गोस्वामी—

एक परम प्रकाशित प्रभाप्रकाशपुञ्ज के रूप में श्रीमद्‌भागवत के रससिद्धभाव वक्ता थे। *श्रृङ्गार एवं वात्सल्यपरक काव्यगत सौष्ठव द्वारा आपने श्रीराधारमणदेव की समाराधना की।

श्रीमानीलाल सुजन सम्मानी दानी अमित अमानी।
वानी सरसानी सुजानमणि ज्ञानी गुनन गुमानी॥
भाव-कलात्मक पक्ष पक्षधर राधारमन अराधे।
चारु विचार अचारज मन्डन कारज कोटिन साधे॥

श्रीविजयकृष्ण गोस्वामी व्याख्यान-वाचस्पति, वाणीभूषण—

ने एक तेजस्वी, मनस्वी एवं यशस्वी वक्ता के रूप में काश्मीर से कन्याकुमारी एवं काबुल से कलकत्ता तक वैष्णव सिद्धान्तों का प्रचार प्रसार किया। बिना ध्वनि-विस्तारक यन्त्र के निःशब्द अपार जनसमूह को अपने वाणी विलास से विमुग्ध करने की आपमें अपरिमित शक्ति थी। आज

* 'शोभन-ग्रन्थावलि' देखें।

पञ्जाव में सनातनधर्म तथा वैष्णव सिद्धान्त का जो प्रचार है उसमें श्रीगोस्वामीजी का बहुत बड़ा अंश है। आपकी वैदुषी पर विमुग्ध हो विद्वत्-समाज द्वारा आपको 'व्याख्यान-वाचस्पति' 'व्याख्यान-वारिधि' तथा 'वाणी-भूषण' उपाधियों से समलंकृत किया गया।

श्रीजयकृष्ण सतृष्ण भाव भरि राधारमण उपासी।
राशि ज्ञान, दृष्टि करुणासी, प्रबल प्रताप प्रकाशी।।

श्रीव्रजलाल गोस्वामी—

परमभागवत साधननिष्ठ साधक के रूप में सदैव श्रीजी की सेवा में संलग्न रहे।

श्रीगोपाललाल गोस्वामी—

ने श्रीगोपालमन्त्र की अनुष्ठानपूर्त्ति के स्वरूप भगवद्विग्रह का प्रत्यक्ष दर्शन सौभाग्य प्राप्त किया।

श्रीविहारीलाल गोस्वामीजू-

की भगति जाय नहीं वरनी।
सेवत रहत सदा श्रीजी को कहत वनत नहीं करनी।।
केशर, अतर, सुगन्ध, वसन बहु भाँति-भाँति के लावें।
श्रीश्रीजी हित देत निरन्तर नितप्रति लाड़ लड़ावें।।
एकनिष्ठ चैतन्य उपासक श्रीजी विन नहिं जाने।
प्रवल प्रताप जाप अविरत हरि, गुन नहीं जात बखाने।।

श्रीहरिचरण गोस्वामी—

विधिवेत्ता के साथ परम रससिद्ध श्रीमद्भागवत वक्ता थे। पञ्चायत समिति के कर्मठ सदस्यरूप में आप सदैव श्रीजी की सेवा में संलग्न रहे।

श्रीसुन्दरलाल गोस्वामी—

आपके द्वारा रचित 'रासपञ्चाध्यायी' 'गोपीविरह' 'इन्द्रस्तुति' 'व्रज-यात्रा' 'रासप्रबन्ध' आदि गद्यात्मक वर्णनायें हृद्य, मनोहारी तथा प्रसाद-गुणयुक्त शैली की हैं। भाषा में प्राञ्जलता तथा पद्यात्मक प्रौढ सौष्ठव का समावेश है। भाषा की शैली प्राचीन और अर्वाचीन विकास के पूर्व की है।

'रूप को उजागर, रस को सागर, गुनन को आगर, नटनागर जो चलो सोई लता, जो झुरमुठ छाय रही ही तिनके बीच में होयके मुकुट कूं नचावत, कांछनी संभारत, चहुँदिश निहारत, पटका के दोऊ छोर पकड़त, चटकत, मटकत, लतान कूं झटकत, पताल कूं पटकत, डारन सूं अटकत,

लटकत, झूलत, झुकत, झूमत, बैठत, उठत, झट्टपट्ट झपाके कूँ वृन्दावन तट वंशीवट यमुना के तट पै धीरसमीर के तीर निकटतर वंशीवट पै—

—पञ्चाध्यायी खोज रिपोर्ट
वि० रा० भा० परि० दूसराखण्ड
पृष्ठ १५४।

श्रीमधुसूदन गोस्वामी (पञ्च)—

कलात्मक पक्ष के ज्ञाता, मन्दिर एवं समाज के अन्यतम निदेशक थे।

श्रीअनन्तलाल गोस्वामी—

एकनिष्ठ इष्ट श्रीजी को भाव भागवत वाचक।
ज्ञान अनन्त श्रीअनन्तलालजू श्रीचैतन्य उपासक॥
सारी नवसारी उधारि करि वैष्णवधर्म प्रचारो।
परम प्रताप रहे करतलगत चारु पदारथ चारो॥

श्रीअद्वैतकुमार गोस्वामी

कांग्रेस के कमठ क्रियाशीलकर्त्ता थे। राष्ट्रीय आन्दोलनों में सक्रिय भाग ले वर्षों तक कारागार यन्त्रणायें वरण की। आप स्थानीय नगरपालिका के उपाध्यक्ष भी थे। देश के सम्माननीय राजनैतिक नेताओं से आपका सरस स्नेह सम्बन्ध था।

श्रीबलदेव गोस्वामी (श्रीदाऊजी महाराज)—

परम तेजस्वी, षडङ्गदर्शन तथा श्रीमद्भागवत के अप्रतिम विद्वान् थे। शब्दों का प्रत्यक्ष ज्ञानाभ्यास आपकी विशिष्ट अध्ययन शैली थी। वेदान्तवादगत विषयों के शत शत छात्र आपके समीप अध्ययन करते थे। श्रीस्वामी सङ्कर्षणदासजी आपके प्रिय छात्रों में थे।

श्रीकृष्णचरण गोस्वामी—

भी प्रतिभाशील विद्वान् थे। आपने 'चैतन्यचन्द्रामृतकणिका' आदि मौलिक ग्रन्थों की संरचना की। आपके सुपुत्र

श्रीनिमाईचरण एवं श्रीगदाधरचरण गोस्वामी—

भी प्रतिभाभावापन्न महानुभाव थे।

श्रीललिताचरण गोस्वामी--

दस सहस्र श्रीजी हित अर्प्यौ श्रीललिताचरण गुसांई।
परहित निरत सतत व्रत विस्तृत, गरिमा गणनि न जाई॥
अनुगत रहे नृपति-तति प्रतिपद राधारमन उपासी।
गौरव ज्ञान मौर महिमा के पीलीभीत निवासी॥

✪

प्रभु-प्रसाद—

१—एकदिना कोऊ गोल बंगालिन को दरसन कू आयो।
लखि श्रीजी की रूप माधुरी प्रेम भाव उर छायो॥
तिनमें एक बंगालिनी को प्रभु निकट दरस नहीं दीनो।
माथो कूट द्वार पर फोर्यौ तऊ विचार नहीं कीनो॥
गौर गुसाईं की सेवा तँह तिन पूंछी सब वाता।
वोली रोय कियो अध भारी हौं पापिन विख्याता॥
निराहार रही चारिकदिन द्वार ही पै विलखाती।
कीन्हीं कृपा परम करुणानिधि दरस दान दै थाती॥

२—गुड़गांवा में रहत वैश्यकुल विन श्रीजी नहीं जाने।
नाचत रहत सदा घर आंगन वावा कहि करि माने॥
जब जब विपति परत इन पर तब आय मनौती मांगे।
छूटत विकट निकट सङ्कट शत भाव भगति में पागे॥

३—बाटी दाल गोठ मधि एक दिन चन्द्रकिशोर गुसांई।
विजया घोटि ध्यान धरि प्रिय करि श्रीजी भोग लगाई॥
इत मन्दिर में लख्यौ पुजारी झारी रीति पाई।
करुओ टूटि परचौ धरनि पर वसन लिये लपटाई॥
अरुन नयन मद भरे उनीदे झुकि झुकि परति प्रिया पै।
प्रेम नशा में छके विलोके वारत प्राण अदा पै॥
पेड़ा घोलि दूध धरि अरप्यौ मिश्री मधुर मलाई।
उतरचौ नशा दशा स्वच्छल भई लीला ललित लखाई॥

४—पन्नालाल लखनऊवारो सांचो रसिक प्रबीनो।
भयो अग्रकुल कमल दिवाकर भाव भगति रस भीनो॥
सरबस धन अरपन करि हरि पद आन देव नहीं माने।
लाख कहे पै डिगत न नेकहू विन श्रीजी नहीं जाने॥
एक दिम जाय दियो सुपनो प्रभु भोग रहत कछु थोड़ो।
लखि करि स्वपन भयो अति आतुर बृन्दावन की दोड़ो॥
करि वंघान भोग व्यारू को परचौ धरनि अकुलाई।
निजजन जान वंश विस्तारो महिमा वरनि न जाई॥

—गौरकृष्ण

प्रदीक्षित परम्परा—

के अन्तर्गत अनेक शीर्षस्थानीय राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय, राजनैतिक, सामाजिक, आध्यात्मिक संचेतना-सम्पन्न भागवतजन श्रीराधारमण चरणाश्रित परिवार के रूप में पञ्चायत मन्दिर श्रीराधारमण वृन्दावन तथा श्रीराधारमण सेवा समिति काशी के माध्यम से आज भी श्रीजी की अखण्ड भोगराग परम्परा को स्थायित्व प्रदान करने में संलग्न है। ※ इसमें भक्तिमती महिलाओं का भी पूर्णतः सहयोग रहा है।

पाण्डित्य प्रभा-प्रकाश—

प्रारम्भिक काल से ही इस वंश परम्परा को सर्वश्री जीवगोस्वामीचरण, विश्वनाथ चक्रवर्त्ती, वलदेव विद्याभूषण, स्वामी रङ्गाचार्य, गङ्गाधरशास्त्री, शिवकुमार शास्त्री, तपस्वीजी, जयदेव शास्त्री, दुलारेप्रसाद शास्त्री, नत्थीलाल शास्त्री, सीताराम शास्त्री प्रभृति संस्कृत के उद्भट विद्वानों द्वारा अवाधगति से प्राप्त होता रहा है। इसीके फलस्वरूप विगत काल में अभूतपूर्व राजनैतिक, सामाजिक, आध्यात्मिक संचेतना के साथ यहाँ के आचार्यों ने जहाँ आचार्यकुल' 'वैष्णवविद्यालय' 'गौराङ्गविद्यालय' 'आदर्शविद्यामन्दिर' 'राधा मोन्टेसरी स्कूल' जैसे शिक्षण सस्थान, 'वैष्णवधर्म-प्रचारिणी' 'कविकुल कौमुदी' 'वालवन्धु परिषद' 'गौराङ्ग क्लव' 'आचार्य क्लव' 'सार्वभौम श्रीदामोदर, श्रीराधाचरण, श्रीमधुसूदन ग्रन्थालय' 'सार्वभौम श्रीमधुसूदन छात्रवृत्ति प्रदान संस्थान, 'चैतन्य पुस्तकालय पटना'-'चैतन्य-प्रेम, संस्थान, 'सङ्गीत गुरुकुल' 'श्रीराधारमण दातव्य औषधालय' आदि सर्वजन समाहृत प्रतिष्ठानों की जहाँ प्रतिष्ठापना की वहाँ 'वनवीर' 'चित्तोड़ चन्द्रिका' 'जगाई माधवोद्धार' आदि मौलिक नाट्य ग्रन्थों की संरचना कर अपने ही

※ वस गये रमन नयनन में।

मैंने पीया भक्तिरस प्याला, मुझे लगे जगत् जंजाला,
सुधि रही न अब तन मन में। वस........
जब सुनी बंसुरिया तेरी, मैं भई चरन की चेरी,
अब लखूं श्याम कन कन में। वस........
'करुणा' कर कृष्णमुरारी, प्रभु आय हरो दुःख भारी,
विनती है यही छन छन में। वस........

—श्रीमती करुणा अग्रवाल, प्रयाग

नाटच मञ्च पर सफल मञ्चन, × सूखे सामान्य रङ्गों से सांझी रचना, प्राचीन ध्रुपद, धमार रागों का पुनरुज्जीवन श्रीगोविन्द मन्दिर की छत पर उटङ्कित प्रस्तरीय भाग की ज्यामितीय वदरूम के जालों को फूलों की कोमल कलियों में उतारकर विशेष सुख्याति अर्जित की।

यहाँ के आचार्यों ने सर्वप्रथम श्रीमद्भागवत की अष्ट टीका, शताधिक सामाजिक, ऐतिहासिक, आध्यात्मिक गद्य पद्यात्मक निबन्ध तथा 'आचार्य' 'श्रेय' 'नाम-माहात्म्य' 'भारतेन्दु' चैतन्यचन्द्रिका' 'चैतन्य' आदि मासिक पत्रिकाओं के प्रकाशन के माध्यम से हिन्दी, संस्कृत तथा बङ्गला साहित्य सर्जना में बहुत बड़ा योगदान किया।

आज भी यहाँ के आचार्यजन विभिन्न राजनैतिक संस्थानों में सर्वोच्च पद समलंकृत करने के साथ सुख्याति-सम्पन्न चिकित्सक, राजपत्रित अधिकारी, डाक्टरेट, न्यायाधिकारी, विधिज्ञ, ज्योतिर्विद, सङ्गीतज्ञ, नगर-पालिकाध्यक्ष, उपाध्यक्ष, प्राध्यापक, वैष्णव धर्म प्रचारक चित्राङ्कक, ग्रन्थ-संशोधक, श्रीमद्भागवत वक्ता, व्याख्याता, लायन्स, जे० सी०, वीमा, वैङ्किग एवं विविध औद्योगिक प्रतिष्ठानों के सञ्चालक रूप में अपनी गुण-गौरव परम्परा को देश और विदेशों में सतत स्थायित्व प्रदान करने में सचेष्ट हैं।

आज भी यहाँ के आचार्यजनों से शत शत छात्र विभिन्न विषयों का ज्ञानार्जन कर भारत में ही नहीं देश विदेशों में उच्च पद प्राप्त कर ज्ञानप्रभा प्रकाश प्रभासित कर रहे हैं।

× सांझी रचना अति विशद विरची गोपीलाल।
तिनके प्रतिपथ अनुसरत शत शत बुद्धि विशाल।।

पद्वी—

आचार्य—

श्रुतियां सदा से ही मानबमात्र को—

'मातृदेवो भव' पितृदेवो भव' 'आचार्यदेवो भव'

अर्थात् माता पिता तथा आचार्यों के अनुगत होने का उपदेश करती आ रहीं हैं। आचार्य के मूलभूत सिद्धान्त प्रतिपादन में 'सदाचार' का विशेष महत्त्व है कारण धम की उत्पत्ति आचार से होती है एवं सज्जनों का आचरण एवं व्यवहार हो ×'सदाचार' कहलाता है एवं उसका परिपालन करने वाला जन ही 'आचार्य' कहलाने की योग्यता रखता है। श्रुतियों के अनुसार—

'आचायवान् पुरुषो वेद'।

'आचार्यं मां विजानीयात्'।

उस आचार्यवान् पुरुष के स्वरूप को जानना प्रत्येक व्यक्ति का आवश्यक कर्त्तव्य है।

'जिन्होंने काम क्रोध आदि को अपनी आत्मशक्ति से पराजित कर दिया है, जो सदैव निरोगी हैं, जिनकी श्रीकृष्ण चरणोंमें आत्यन्तिक अनुरक्ति है, जिन्हें द्विजत्त्व के रूप में आगम, निगम का पूणत: ज्ञान है के साथ जो जितेन्द्रिय, विनत और गुरुंजनों के अनुगत हैं वे ही

'श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्'

श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ महज्जन 'आचार्य' की परिभाषा में आते हैं।'

गोस्वामी—

गवामिन्द्रियाणां वाणीनां तथा अगणित धेनूनां स्वामी वृषभत्वेन श्रेष्ठ:।

जिन्होंने अपनी * पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, + पञ्च कर्मेन्द्रिय तथा मन को अपने नियन्त्रण में कर लिया है। जिनका अपनी वाणी पर पूर्ण अधिकार होने के साथ जो सत्य, मित, हित तथा मनोहारी सद्वाक्यों का सदैव प्रयोग करते हैं एवं जिनका जीवन गौ सेवा में निरत रहता है वे ही वृषभ अर्थात् श्रेष्ठ जन गोस्वामी पदवी धारण की योग्यता रखते हैं।

× आचारप्रभवो धर्म: सन्तश्चाचारलक्षणा:।
साधूनाञ्च यथा वृत्तं स सदाचार उच्यते॥
—भविष्योत्तर

* चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, त्वक्।
+ वायु, उपस्थ हस्त, पाद, वाक्।

प्रेय—

और श्रेय मानवमात्र चाहे वह भगवत् सम्बन्धित 'सत्यं, शिवं, सुन्दरम्' स्वरूप हो अथवा सांसारिक क्षणिक नश्वर रूप में हो की सुखानुभूति के दो समृद्धिमान् सूत्र हैं जिसकी सार्थ साधन दिशा में मानव बिना किसी निश्चित स्थान के निरन्तर आगे बढ़ता जा रहा है।

इस नैरन्तर्य भगवत् सम्बन्धित सत्य सुखानुभूति की दिशा में अग्रसर प्रायः एक ही समय व्रज सौन्दर्य सन्दर्शन तथा श्रीराधाकृष्ण की दिव्य लावण्यमयी लीलाओं के आस्वादनार्थ सहारनपुर-जनपदस्य देववन ग्राम निवासी दो प्रमुख गौड ब्राह्मणवंशीय महानुभाव श्रीहरिवंशचन्द्रजी महाराज तथा श्रीगोपीनाथजी महाराज प्रथम प्रणम्य रम्यातिरम्य परमपावन श्रीधाम वृन्दावन पधारे।

श्रीवृन्दावन आकर इन दोनों महानुभावों के विलक्षण क्षण अनुक्षण व्रजनवतरुणीकदम्बमुकुटमणि श्रीराधा एवं सर्वाराध्य भगवान् व्रजेशतनय श्रीकृष्ण की समाराधना एवं अनन्ताद्‌भुत रागरञ्जित भावनाओं में अतिवाहित होने लगे।

इनकी नित्य नव निभृत निकुञ्जगत भावना तथा समुज्वल स्वारसिकी सेवा संराधना से प्रभावित हो व्रज के रसिकजनों द्वारा इन्हें 'गोस्वामी' के गौरव पदसे सम्बोधित किया गया। कुछ समय पश्चात् श्रीहितहरिवंशचन्द्रजी के ज्येष्ठ पुत्र श्रीवनचन्द्र गोस्वामीजी एवं श्रीगोपीनाथगोस्वामीजी के ज्येष्ठानुज श्रीदामोदरदासगोस्वामीजी भी श्रीवृन्दावन पधारे और यहाँ आकर अपने प्रवल प्रताप, प्रखर पाण्डित्य, समुन्नत सेवाराधन तथा सतत सदाचरणों के कारण वृन्दावन के क्षितिज में श्रीराधावल्लभीय तथा श्रीराधारमणीय दो देदीप्यमान गोस्वामी 'ध्रुव' तारक के रूप में प्रकाशित होने लगे।

इन महानुभावों ने सर्वोत्कृष्ट भगवत् सेवा समाराधना, नियमनिष्ठा, भोगराग श्रृङ्गार दर्शन परम्परा तथा आदर्श भव्य भावनाओं का सञ्चालन अपरिग्रह रूप से अपने सीमित साधन सम्बल पर ही किया।

उस समय का रससिद्ध माधुर्य वृन्दावन शनैः शनैः ऐश्वर्य वृन्दावन के रूप में परिवर्त्तित होने लगा। अब 'कुञ्जन माँहि बसेरो' का स्थान भव्य मन्दिर तथा उच्च प्रासादों के निर्माण ने ले लिया, इसके साथ ही भोगराग परम्परा के रूप का भी बहुत कुछ विकास हुआ, इन सब कारणों से श्रीगोस्वामीजनों की प्रतिभा दिग्‌दिगन्तों में प्रसरित होने लगी। वृन्दावन के वास्तविक विकास का पूर्णाधिकार इन दोनों परिवारों के सबल हाथों में था।

इधर अब उभय गोस्वामी कुल में सदाचार भावनाओं को स्थायित्व देने के लिये 'पारस्परिक विवाह सम्बन्ध', प्रचलन का निर्णय लिया गया इसका सुनिश्चित परिणाम यह हुआ कि उभय कुल की कन्यायें नववधू के रूप में अपनी संस्कृति, सभ्यता, साहित्य तथा संस्कारों को इधर से उधर और उधर से इधर साथ लेती गईं। अब—

'अपरस, सपरस, झूंठा, सच्चा, घरका, वाहरका, अमनिया, प्रसादी, सखरा, निखरा, परम्परा अवाध गति से परिचालित होने लगी। सामयिक स्थिति का आकलन कर तात्कालीन गोस्वामीजनोंने समाज सुधार की दिशा में भी अनेक सर्वसम्मत निर्णय लिये। विवाहादि संस्कारों में निश्चित व्ययराशि निर्द्धारण के लिये 'विवाह वही' निर्माण के माध्यम से अनेक प्रचलित कुरीतियों का उन्मूलन किया गया।

इतना घनिष्ठ सम्बन्ध होते हुये भी उभयगोस्वामी परिवारों ने अपनी पुत्र सन्तति के अभाव में अपने कन्यापक्ष को वसीयत, दानपत्र अथवा दत्तक पुत्र रूप में भगवत् विग्रह सेवा का अधिकार नहीं दिया, न कन्यापक्ष ने ही इसकी कभी इच्छा प्रदर्शित की। यह एक ऐसा अन्यतम आदर्श था जिसने समाज के मूलभूत सिद्धान्तों की रक्षा करते हुये उसे विखरने न दिया।

इधर पारिवारिक वंश वृद्धि के साथ मथुरा के श्रीगतश्रमनारायण सेवाधिकारी 'आचार्य गण' 'मिश्र' तथा वृन्दावन के गौड सरदार परिवारों में भी पारस्परिक विवाह सम्बन्ध प्रचलित होने लगे।

आज जो कुछ समुज्वल वंश गौरवोल्लास दिखलाई दे रहा है उसके मूल में इस सतत सुधारस सिञ्चन का बहुत बड़ा अंश निहित है।

⊛

प्रार्थना—

विगत रहा सर्वोच्च भविष्यत् भी महान् है।
परमोत्कृष्ट विशिष्ट हमारा वर्त्तमान है॥
इसे समझ कर्त्तव्य-मार्ग पर बढ़ते रहना।
डिग पाँये नहीं पाँव कभी, मन में यह धरना॥
उन्नति के दो सूत्र सहज हम बतलाते हैं।
जाते जाते आज महज यह समझाते हैं॥
सदा राधिकारमण चरण आराधन करना।
सरवस निज धन जान सतत सेवारत रहना॥
भरे भूरि भण्डार धरा, धन, धान, धाम से।
करते रहना काम वन्धुवर! सुनिष्काम से॥
निज गुरुजन जिय मान मान देते ही रहना।
उनसे आशीर्वाद अमित नतमस्तक लहना॥
उनके ही निर्देश हमेशा काम पड़ेंगे।
हरदम ये दो कदम साथ ही साथ बढ़ेंगे॥
यही 'गौर' की विनय वंश सिरमोर आप हो।
पूरन प्रभा प्रताप कलित कुल कलालाप हो॥
शालग्रामस्वरूप वन्द्य मेरे हो प्रियवर!।
देना आशीर्बाद कृपाकर! पूर्ण कृपाकर॥
गुरु श्रीवनमालीलाल पिताश्री दामोदरवर।
'गौर' राधिकारमण चरण अनुकम्पा पाकर॥
यह प्रबन्ध प्रतिवन्धरहित परिपूर्ण करा है।
इसमें वंश विलास सुधारस सार भरा है॥
पीकर इसका स्वाद बाद में जान सकोगे।
होकर प्रेमोन्मत्त 'गौर' गुण याद करोगे॥

परिशिष्ट—

(मुद्रा)

पचदूता (प्रतिज्ञा-पत्र)

लिखतं लिख दीनी गुसाई हरिनाथ जी के वेटा जनार्दन वृन्दावनदास गोविवदास सुन्दरदास व्रजभूषणदास और चाचा मथुरादास हरीराम जी वेटा दामोदरदास के तिन सबन मिलके संवत् १६८५ मिती भादों वदी १३ जो कछु बाबा को हो सौ और श्रीराधारमण जी को सिंगार व आभूषण और वस्त्र जो कछु काररवाई की चीज तिन्हें छोडिके पचंदूता के हिसावसूं तीन हिस्सा बड़े भाई के वेटा पांचने लीने और एक एक हिस्सा हम दोनों भाईन ने लीने, द्रव्य और समस्त सामिग्री सो हिस्से माफिक वाँट लीनी और सेवा वी जाई हिसाव सूं बड़े भाई के वेटा पांचों ने तीन हिस्सा के अठारह महीना लीने और एक एक हिस्सा के छै छै महीना हम दोनों भैयान ने लीने और एक एक बाखर भतीजे ने वाँट लीनी और आधौ खिरक और एक वाखर अपने चाचान कूं दीनी सो हम दोनों भाईन ने, एक एक वाँट लीनी या रीति सों पंचन के हजूर हम सबने झगड़ौ निवटाय लीनों काऊकौ काऊ सों दावो नहीं जो कोई दावों करे सो झूंठो श्रीजी सूं बहिर्मुख पंचन को द्रोही और सिरकार को गुनहगार। और बीच और वाहर के दरवज्जे पच्छिम की जिमीन और डोल के दक्खिन की समाध के उत्तर जे सब घेर सुद्ध करने को लीजै जिमीदारन सूं खरीदी अस्सी मन अन्न चौरासी रुपया एक वेल में खरीदे घेरे की हद गोपीनाथ पूरव लम्बी गज १०४ हद दक्खिन ७१ गज हद पश्चिम गज ८६॥ उत्तर गज ५१ वा जिमीन कूं की हम सबने मिलके वाँट लोनी और जो बाखर वड़ी है तिनकौ ब्यौरो खोलिकें लिख दीवों पहले लँबर उत्तर की तरफ वाखर गुसाईं जनार्दनदासजी की लम्वी गज ४६ चौड़ी गज पच्छम १२ पूरव गज १२॥ बीचके दरवाजे की भीतर गुसाई जनार्दनदास की बाखर छोटी हद्द उत्तर की लम्वो गज १७ हद्द दक्खिन की लंबी गज ११ हद्द पूरव गज ८॥ हद्द पच्छिम तिकोनिया ६॥ और तीसरी बीच के दरवज्जे के सामने की दक्खिन सरेराह सरकारी लंबी गज ३७॥ हद्द उत्तर सरेराह पंचायतीं ठाकुर राधारमण हद्द पूरब बीच में गली जिमीन चौडी गज १५॥ हद्द पच्छिम में गज ५ दूसरे लवर गुसाई गोविंददास जी की वाखर हद्द उत्तर दक्खिन गज २४ लंवी हद्द पच्छिम चौडो गज २० परे में गली हद्द पूरव में चोडी गज १० वीच में गली तीसरे लंवर गुसाई सुंदरदास जी की वाखर भीतर की तिकोनिया हद्द पूरव चौडी गज १७॥ हद्द दक्खिन लंवी गज २२ हद्द उत्तर गज २७ हद्द पच्छिम चौडी गज १७॥ सरेराह पंचा-

यती ठाकुर के मन्दिर को दरवज्जो छत्ता के नीचे की गली कूआन के लीजै साढे सत्रह गज कोंनो छोड दीनो छत्ता गज चौडी २॥ लंवी गज ८॥ दूसरी वाहर की जिमीन समाध के पास की गुसांई सुन्दर दास जी, हद्द पच्छिम लवी गज २५ सरेराह सरकारी हद्द पूरव गली पंचायती हद्द दक्खिन चौडी गज १६॥ गली पंचायती हद्द उत्तर वाखर वनिया की चौथे लवर गुसांई व्रजभूषणदासजी की वाखर मंदिर के कोने की हद्द पच्छिम में मंदिर पूरव गोपीनाथ लंवी गज २० वीच में गली हद्द उत्तर में गज ८॥ दक्खिन में गज २॥ दूसरी वाखर वीच के दरवज्जे के भीतर की गुसांई व्रजभूषणदास जी की हद्द उत्तर दक्खिन लंवी गज १६ हद्द पूरव चौडी गज ११॥ हद्द पश्चिम चौडी गज १३ एक वैठक मंदिर के दक्खिन उत्तर लंवी गज १० हद्द पूरव पच्छिम चौडी गज ४॥ दूसरो वैठका समाध के दक्खन डोल के उत्तर लंवो गज १२॥ हद्द पच्छिम चौडो गज ५। समाध लंवी गज १० चौडी गज ८॥ डोल की जिमीन दक्खिन में लवी गज १७ उत्तर में गज १४। पूरव में, ६॥ पच्छिम में ८। पांचो लंवर दो वट खिरक गुसांई मथुरादासजी को लंवो गज ४१ वोच के वाहर के दरवज्जे के लगमां दरवज्जौ पंचायती वीच में गली हद्द दक्खिन में चौडी गज २६॥ सरेराह सरकारी हद्द पूरव में गज ३७॥ उत्तर में गज १२ वीच के दरवज्जे के पच्छिम में वेठका गुसाई मथुरा-दासजी को पूरव सरेराह सरकारी पंचायती ठाकुर राधारमण वैठका लंवों गज १६ हद्द उत्तर चोडो गज ४ हद्द दक्खिन गज ३। और खिरका को तीसरो हिस्सा चंद गुसाई को दीनो सेवा पूजा को अख्तयार नहीं भीतर की वाखर हरीराम जी की हद्द पूरव पच्छिम चौडो गज १८ दोनों वगल गली उत्तर दक्खिन लंवी गज १८॥ बीच के दरवज्जे की जमीन गुसांई हरीरामजी की दक्खिन हद्द लंवी गज २५ सरेराह पंचायती ठाकुरजी की पच्छिम में चौडी गज १५॥ गली समाध की और जो हमारे वड़े जा रीति सों वाँट गये है और सवने मिलके यह संमत्ती कीनी जो देहली पे नगदी आवे सो सेवा वाले की ....और गहनों वस्त्र जो कुछ असवाव और भेट भंडार की सो भंडार में तोंल के गिनके लिखनौ परैं और ठाकुर जी की टहल के वास्ते गौडीया वैष्णो रखै तिनमे एक वैष्णो सतपात्र होय वैष्णवन की जो रीति वाई रीति सों रहै ताकूं ठाकुर की द्रव्य गहनो वस्त्र ताकी हिफाजत के लिये सव मिलिके भंडारी करें सबमें एकभाव राखे आपस को चेला न होय और भंडारी कूँ कुछ दैंने लेनें कौ अखत्यार नहीं और काऊ गुसाईं कौ छिपाय के न देय और गुसाईं भी छिपाय के न लेय जो गुसाई वैष्णो के अंश सूं पैदा होय तौ और जो लेय सों हिसाव सों सवके वट में आवै

सो ले और जो लेय और देय ताकू गोवध की हत्या है और टहलुआनकूं भोजन वस्त्र देय ताकी सेवा होय सो और जो काम परै सो सबसौं पूंछ के के करै जो वे पूंछे करै और नुकसान करै तो गुसाइन कौं अखत्यार है निकाल देय और जो गुसांई वाकी पच्छ करै सों श्रीजी सूं वहिर्मुख पंचन कौ द्रोही सरकार कौ गुनहगार। और ठाकुर जी की जो द्रव्य इकट्ठी होय और वस्त्रन कौ गोटा उधेर लीनों जाय सो दोनों उच्छवन में सवासे रुपैया लगाय के जो वचे सो भंडार मे इकट्ठी हो फेर वाकी कछु जीवका करके ठाकुरजी के राज-भौग में लगै कुमारग में न लगावे और सादी पोशाक होय तिनमें सूं पन्द्रह पोशाक भंडार में रखै सो जो सेवक मांगै वाकूं देय और जो वचें तिन्हें हिसाव सों वाँट लेय और विधवा कूं रहन वै का अखत्यार नहीं और गोद कौ अख-त्यार काहू कौं नहीं और जो हमने लिख दीनों है वाई रीति सों चलै जो हमारे अंश सूं पैदा होय और श्रीजी की सेवा में कोई वात कौ विघन न करै और जो विघन करै तो और लिखें सूं वाहर चलै तो श्रीजी सूं वहिर्मुख पंचन को द्रोही सिरकार कौ गुनहगार।

दस्तखत गोस्वामी चैतन्यदास जी के ऊपर कौ लिखौ सही
दस्तखत गुसाई छवीलराम जी के ऊपर कौ लिखौ सही। संमति रामदासजी की। संमति सेवादासजी की उर्फ छवीलेलालजी।
संमति गुसांई मधुमंगलजी की ऊपर कौ लिखो सही। संमति गोवर्द्धनदासजी
संमति गुसाई अमरसिंहजी। दस्तखत पुरुषोत्तमदासजी के।
भगवानदासजी। दस्तखत गुसांई वंशीधरजी ऊपर को लिखौ सही।
संमति मुरलीधरजी की।
दस्तखत गुसांई नवनीतरायजी। संमति गोस्वामी हरिचरणजी की।
दस्तखत गोस्वामी गोकुलचन्दजी। संमति गोस्वामी हरिदास जी।
संमति मधुसूदनजी। दस्तखत विष्णुदासजी के ऊपर को लिखौ सही।
संमति मेघश्यामजी की। दस्तखत गुसांई कुंजमणि ऊपर को लिखो सही।
संमति गोस्वामी पूर्णकीर्त्तिजी।

की यह नकल पहले वाँट भयौ ताकी है वाके पीछे वाहर के घेरे की जगै लीनी गई और तव ताईं भंडारी प्रभृति न ही किये है ता पीछे वडौ कागज कियौ गयो तव ही भंडारी प्रभृति किये गये याकौ वृत्तान्त वी यामे लिख पक्की करि लियौ॥

हमने लिख दीनो वाई रीति सूं चलै जो हमारे अंससूं पैदा होय और श्रीजी की सेवा में कोई वात को विघन न करै और जो विघन करै सो और

लिखे सूं वाहर चलै तो श्रीजी सूं वहिर्मुख पंचन को द्रोही सिरकार को गुनहगार संवत् १७५८ मिती वैशाख वदी नोमी ।

श्रीराधारमणजी

अंश लिखत कीनों कलि संवत १६८५ वर्षे मिती भादों वदी १३ लिखतं जनार्दनदास अधिकारी वा वृन्दावनदास गोविंददास सुन्दरदास ब्रजभूषणदास लडका गुसाई हरिनाथजी के व मथुरादास हरीराम वेटा गुसांई दामोदारदासजी के आपस में पंचन के हुजूर झगरो या भांति चुकायो हिस्सा पंचदूता कौ व्यौरौ हिस्सा तीन अधिकारी जनार्दनदास वा वृन्दावनदास गोविंददास सुन्दरदास ब्रजभूषणदास के हिस्से दोय मथुरादास हरीराम के जो कछु ठाकुरद्वारे को काररवाई को चीज राख कर वावा की थी सेवा वा द्रव्य वा समस्त सामिग्री सो हिस्से माफिक वाँट पाई हील हुज्जत *लोग भागो नास्ति जो कोई आपस में झगरौ करै सो झूंठो श्रीराधारमणजूं सूं विमुख होय श्रीपातसाह जू को गुनहगार ।

मतं जनार्दनदास ऊपर को लिखौ सही । मतं वृन्दावनदास ऊपर कौ लिखौ सही । मतं गोविंददास ऊपर कौ लिखौ सही । मतं सुन्दरदास ऊपर कौ लिखौ सही । मतं ब्रजभूषनदास ऊपर कौ लिखौ सही । मतं मथुरादास ऊपर कौ लिखौ सही । मतं हरिराम ऊपर कौ लिखौ सही ।

वाखर कौ व्यौरो ।। हरिबोला की अनन्तदास की १ हरिराम की १ पंगु भगवान् १ सुन्दर वौहरा की १ भावसिंह १ स्वामीदास की १ सेठानी १ और मथुरा की वाग ये शिष्य गुसांई जनार्दनदासजी के तिन सव सेवकन मिल अपनी वाखर वाग जिमीन अपने गुरु गुसांई जनार्दनदासजी को दीनी और गुसांई दावो करै तो झूंठो तिनमें एक एक वाखर गोसांई जनार्दनदासजी ने अपने सगे भाइन कूं दोनी ३ वाखर आधौ खिरक मथुरादासजी को दी हरीराम को दीनी वाखर १ पंचन के हुजूर फिर पीछे भैया वृन्दावनदास गोविंददास सुन्दरदास ब्रजभूषनदास वा चाचा मथुरादास हरिराम ये जो जिमी वा वाग वाखर पै झगरे तो पंचन में झूठे ।।०।।

मतं वृन्दावनदास ऊपर को लिखौ सही । मतं गोविंददास ऊपर को लिखौ सही । मतं सुन्दरदास ऊपर को लिखौ सही । मतं ब्रजभूषनदास ऊपर को लिखौ सही । मतं मथुरादास ऊपर को लिखौ सही । मतं हरिराम ऊपर को लिखौ सही ।

---

* लोभ भोगो ?

प्रतिज्ञा-पत्र १६१४ ई०

॥ श्रीराधारमणोजयति ॥

हम मधुसूदन गोस्वामी पुत्र गोस्वामी तोतारामजी के व गोस्वामी बनमाली-लाल व गोस्वामी दामोदरलाल शास्त्री पुत्र गोस्वामी गोपीलालजीके गोस्वामी गिरधारीलाल पुत्र गोस्वामी मुन्नालालजी के व गोस्वामी बच्चूलालजी पुत्र गोस्वामी लक्ष्मणजी के व गोस्वामी बल्देवलाल पुत्र गोस्वामी कन्हैयालालजी के व गोस्वामी कृष्णकिशोरजी पुत्र गोस्वामी पीतमकिशोरजी के व गोस्वामी युगलचन्द्रकिशोरजी पुत्र गो० मूलचन्दजी व गोस्वामी नृसिंहदास पुत्र गोस्वामी हनुमानदासजी के व गोस्वामी छक्कूलाल व गोस्वामी पन्नूलाल पुत्र गोस्वामी सोहनलालजी के व गोस्वामी राधाचरण पुत्र गोस्वामी गल्लूजी के व गोस्वामी मदनमोहनजी पुत्र गोस्वामी राधागोविंदजी के व गोस्वामी दामोदराचार्य पुत्र गोस्वामी गंगाप्रसादजी के व गोस्वामी व्रजरजदास पुत्र गोस्वामी कृष्ण-दासजी के व गोस्वामी नन्हेलाल पुत्र गोस्वामी राधाचरणदासजी के व गोस्वामी बालकृष्ण पुत्र गोस्वामी मगनूलालजी के व गोस्वामी घनश्यामलाल पुत्र गोस्वामी राधारमणदासजी के व गोस्वामी गोपाललाल पुत्र गो० गोविंद-लालजी के व गो० संतदास पुत्र गो० दासीलालजी के व गो० मानीलाल पुत्र गो० पीतमलालजी के व गो० बिहारीलालजी पुत्र गो० बिरजीलालजी के व गो० अनंतलाल पुत्र गो० बनमालीलालजी के व गो० कृष्णचरण पुत्र गो० बलदेवजी के जाति गौड ब्राह्मण मुहतमिम व मुतवल्ली मन्दिर श्रीराधारमण-जी निवासी श्रीवृन्दावन मुहल्ला घेरा श्रीराधारमणजी तहसील सदर मथुरा जिले मथरा के हैं। जो कि हम सब श्रीराधारमणजीके गोस्वामी एक श्रीदामो-दरदासगोस्वामीजी की सन्तान है और ठाकुर श्रीराधारमणजी महाराज की सेवा पूजा व भोग राग व श्रीजी के भन्डार और जायदादम के प्रबन्ध करने में सबका एक ही स्वार्थ और अधिकार है और एक ही नियम व मर्यादा के आधीन हैं और एक की प्रतिष्ठा में सबकी प्रतिष्ठा और एक के अपमान में सबका अपमान समझते हैं और समय प्रतिदिन कठिन होता जाता है इस-लिये हम लोग पूर्वापर विचार करके पंचायत करके सबकी सम्मति से यह प्रतिज्ञापत्र लिखते है और प्रतिज्ञा करते हैं कि इन प्रतिज्ञाओं का पालन करेंगे और जो हमारे भाई गोस्वामी परदेश को गये है उन्हें भी यह प्रतिज्ञा-पत्र माननीय होगा क्योंकि हमारे कुल में यह रीति है कि जो नियम श्री वृन्दावन के गोस्वामी भाई करते है वह सर्वत्र माननीय होता है। यह भी विदित रहे कि जो गोस्वामी लोग इसके विरूद्ध कार्य करेंगे वह सरकारी और जातिय दण्ड से दण्डनीय होंगे और श्रीजी की सेवा से विमुख किये जायगे।

(क)—जो मर्यादा और रीति हमारे पूर्व पुरुषों ने ठाकुर श्रीराधा-

रमणजी की सेवा और भोगराग के बिषय में नियत की है उनपर हम लोग दृढ़ है और रहेंगे तथा हमारे पूर्वपुरुषों ने और हमने जो प्रतिज्ञापत्र और इकरारनामें लिखे है वह हमे मान्य है इसलिये जो सामान जैसा कि बाजार के पेड़ा,बर्फी, दही,ओटा दूध, आलू,ढेड़स, गूलर, तरवूज, सफेद सकरकन्दी, हींग, सामरनोन,हड्डी से साफ की हुई खांड,मिश्री, लाल मिर्च इत्यादि तथा एलोमिनियम, जर्मन सिलवर व कलई चीनी कांच के बर्तन, मिट्टी का तेल, चर्वी और केरोसिन की बत्ती—इत्यादि अपरस में श्रीजी की सेवा व रसोई में न जायगी और न श्रीमाध्वगोडेश्वर सम्प्रदाय के शिष्य के अतिरिक्त किसी सम्प्रदाय का वैष्णव श्रीजी की रसोई जलसेवा आदि में जायगा, न राधाबल्लभी चेला श्रीजी के मन्दिर व भन्डार के किसी काम में रक्खा जायगा।

(२) हमारे कुल में पुरुष तथा स्त्रियों को घेरे की जायदाद को बेचने, रहन करने दान करने, दत्तक पुत्र लेने आदि का सदा से अधिकार नहीं है और न आगे होगा तथा जो कोई स्त्री, पुरुष अमर्यादा दुराचारी सदाचार कुलाचार से भ्रष्ट होंगे उनका उचित शासन पंचायत में प्रमाण लेकर किया जायगा और हमारे कुल में लड़कियों का पैत्रिक सम्पत्ति पर कुछ अधिकार न होगा।

(३) ता० ११ मार्च सन् १८८० के लिखे और रजिस्ट्री किये हुये इकरारनामा की दफा ४ चार व ६ छै के अनुसार श्रीजी के मन्दिर तथा भन्डार के सम्पूर्ण प्रवन्ध करने के लिये दस गोस्वामी स्वरूप पंच नियत हुये थे और अब वह दस स्वरूप पंच श्रीवृन्दावनवास हो गये और मन्दिर के व भन्डार के प्रवन्ध में नाना प्रकार के कष्ट होते है इस कारण दस स्वरुपों को जिनके नाम नीचे लिखे है पंच नियत करते है और उन्हें अधिकार देते है कि वे नीचे लिखे नियमों के अधीन होकर काम करे।

क—यह कि श्रीजी के भन्डार में जितने आभूषण सोना व मोती व हीरा व जड़ाऊ मौजूद हैं और जितने आभूषण सोना व मोती हीरा व जड़ाऊ श्रीजी नित्य धारण करते है और जितनी पोशाकें नई व पुरानी भन्डार में जमा हैं और जो कुछ उत्सवों का असवाव चांदी व सोने का जैसा कि सिंहासन, हिंडोला, हठरी, रथ व आसा व सोटा व छत्र इत्यादि भन्डार में मौजूद हैं और जो असवाव मन्दिर के सजाने के जैसा कि कांच के झाड फानूस व हांडी व दर्पण व सामान फूलबंगला व डोल व दरी व गलीचा व काठ के सिंहासन व छत्त व पिछवाई व पर्दे व निशान व शायवान इत्यादि और जितने बर्तन चांदी व पीतल व कांसा व तांवा इत्यादि के मन्दिर व रसोई व भन्डार में मोजूद है और जो दस्तावेज़ात के नकल व डिगरी व फैसलेजात इत्यादि भन्डार में मौजूद है इस सब सामान की रक्षा व सुधार व

टूटे फूटे का जीर्णोद्धार पंच लोग कराते रहे और अपने को इस सामानात्त की हानि लाभ का जिम्मेदार समझें और जो पंच गोस्वामी व अन्य गोस्वामी श्रीजी की किसी सम्पत्तिको बदनियती से नष्ट करेंगे वा अपने काम में लावेंगे सब गोस्वामी उनका सरकारी और जातीय कानून के अनुसार शासन करेंगे और उनके चल,अचल धन से उस चीज के दाम लिये जायेंगे व उस चीज को बनवा लेंगे, कोई गोस्वामी स्वरूप मन्दिर का कोई सामान अपने घर न लेजा सकेगा।

ख—जो श्रीजी की जायदाद मन्दिर व मकानात व कुन्ज व दुकानें व कटरे व जमीन व खन्डहर व जमीन खेती माफी व लगानी जहां २ मौजूद है या आगे कहीं भेंट हो पंच लोग उनका भाड़ा व भूमिभाड़ा व लगान वसूल करके भन्डार में दाखिल करते रहें और मरम्मत टूटे फूटे की कराते रहे और किरायेदार व ठेकेदार व आसामियों को आबाद करते रहे और जायदात को खराब न होने दे और मालगुजारी व म्यूनिस्पिल टेक्स देते रहे और अपने को जायदात के नफा नुक्सान का जिम्मेदार समझें।

ग—जो नगद रुपया लगभग ६००००) साठ हजार श्रीजी महाराज के अखन्ड भोग के लिये काशी में बाबू माधवदासजी की कोठी में बाबू रामादासजी के प्रवन्ध में आठ आना सैकड़ा सूद पर जमा है जिसका सूद श्रीजी महाराज की नित्य सेवा राजभोग इत्यादि में सात रुपये रोज के हिसाब से खर्च होता है उस रुपये का पंच लोग उचित प्रबन्ध करें चाहे उस रुपये को उसी कोठी में जमा रहने दें चाहे किसी भोतविर बैंक में जमा करा दे चाहे कोई जायदात गाम या कटरा आदि खरीद लें, जिसके सूद व भाड़ेसे श्रीजी का अखन्ड भोग चला जाय और आगे से जो रुपया श्रीजी के भोगराग तथा और काम के लिये आवेगा वह किसी गोस्वामी के पास न रहेगा। पंच लोग उस रुपये को एक दिन के भीतर भन्डार में जमा करदें।

घ—पंच लोग तमाम नालिशें श्रीजी की जायदातके सम्बन्धमें अदालत दीवानी व फौजदारी व माल व गवर्नमैन्ट इन्डिया व लोकल गवर्नमैन्ट व हिन्दुस्तानी रजवाडो में वहेसियत पंच व मुहतमिम के करे और जवावदेही भी अपनी तरफ से उसी हैसियत से करते रहें और तमाम दस्तावेजात्त सरखत व बयनामाजात व तमस्सुकात्त वहैसियत पंचान व मुहतमिमान के अपने नाम से लिखाते रहें और रसीद व पट्टा व ठेके वगैरा भी उसी हैसियत से देते रहे और अपने नाम से दाखिल खारिज भी वहैसियत पंचान व मुहतमिमान के कराते रहें।

ङ—पंच लोग प्रतिपक्ष में एकादशी के दिन श्रीजी के मन्दिर में कमेटी करें उस कमेटी में मन्दिर के सब कामकाज व प्रबन्ध व शिकायतों पर विचार करें और जो मन्तव्य प्राप्त करें एक पुस्तक में लिखें और अपने हस्ताक्षर करें कमेटी के समय पंच लोग अपने में से किसी एक को प्रेसीडेन्ट करलें और कमेटी में किसी बात पर विरोध हो तो प्रेसीडेन्ट कसरत राय पर फैसला करें और प्रेसीडेन्ट की दो राय समझी जायगी, जो मामले ऐसे होंगे जिनमें पंच और अन्य गोस्वामी स्वरूपों की राय में विरोध होगा तो एक जनरल कमेटी में जिसमें सब गोस्वामी जो श्रीवृन्दावन में उपस्थित होंगे उस समय कसरत राय पर फैसला होगा। इन पंचों की कमेटी का नाम पंचायत मंदिर श्रीराधारमणजी होगा और इस नाम से ही अब लिखा पढ़ी होगी और काम काज की सुविधा के लिये पंचायत अपना एक दफ्तर रक्खे और एक मुहर पंचायत मन्दिर श्रीराधारमणजी के नाम से बनवाले और अपना दफ्तर नागरी अक्षरो में रक्खे।

च—पंच लोग मन्दिर के सब रुपयों का हिसाब भण्डार की वही में मुफस्सिल रक्खे और आमद खर्च पर नजर रक्खे और आमदनी से ज्यादा खर्च न करे और सालियाना बजट कमेटी में पास करे और जो रुपया शिष्य सेवकों से भोगराग के लिये बाहर से आवे उसे सेवावालो में बांट कर जो बचे उसे बैंक में जमा करे और एक हिसाब सैविंग बैंक वृन्दावन में श्रीराधारमण टेम्पिल इमप्रूमेन्ट फन्ड के नाम से मन्दिर का है पंच लोग उसका भी प्रबन्ध करे और पंचो को किसी सूरत में मन्दिर के किसी रुपये को किसी सख्स को उधार देने का अधिकार नहीं है और न कर्जा लेने का ही अधिकार होगा।

छ—जो पंच बदनियती करके श्रीजी की सम्पत्ति को नष्ट करें व अपने खर्च में लगावे तो वो पंचायत से निकाल दिये जायेगे और जो कोई पंच किसी कारण से इस्तैफा दे या देहान्त हो जावे तो उसकी जगह उसी थामे में से दूसरा पंच नियत होगा और ये सब पंच तीन वर्ष के लिये नियत होगे और तीन वर्ष के पीछे दूसरी वार पंचो का चुनाव इसीप्रकार से होगा।

ज—पंच लोगो को यह भी अधिकार होगा कि श्रीजी की भोगसामा की सुव्यवस्था करें और प्रसाद तथा माला को ठीक तौर से बटवादे।

नाम पंचो के

१—श्रीमधुसदन गो० बल्द श्री गो० तोतारांम जी महाराज साकिन वृन्दावन।

२—श्रीदामोदरलाल गोस्वामी बल्द श्री गोस्वामी गोपीलालजी महाराज साकिन वृन्दावन।

३—श्रीछक्कूलाल गोस्वामी बल्द श्री गोस्वामी सोहनलालजी महाराज साकिन वृन्दावन।

४—श्रीराधाचरण गोस्वामी बल्द श्री गोस्वामी गल्लूजी महाराज साकिन वृन्दावन।

५—श्रीब्रजरजदास गोस्वामी बल्द श्री गोस्वामी कृष्णदासजी महाराज साकिन वृन्दावन।

६—श्रीबालकृष्ण गोस्वामी बल्द श्री गोस्वामी मगनूलालजी महाराज साकिन वृन्दावन।

७—श्रीगोपाललाल गोस्वामी बल्द श्री गोस्वामी गोविन्दलालजी महाराज साकिन वृन्दावन।

८—श्रीसन्तदास गोस्वामी बल्द श्री गोस्वामी दासीलालजी महाराज साकिन वृन्दावन।

९—श्रीमानीलाल गोस्वामी बल्द श्री गोस्वामी पीतमलालजी महाराज साकिन वृन्दावन।

१०—श्रीकृष्णचरण गोस्वामी बल्द श्री गोस्वामी बलदेव जी महाराज साकिन वृन्दावन।

४—इस समय जो कई गोस्वामी स्वरूपों के ऊपर श्रीजी के आभूषण खो जाने के कारण रुपया लेना है वह रुपया उनको छै महीने के भीतर भन्डार में जमा करा देना होगा और जो वे रुपया दाखिल न करे तो पंच लोग कार्रवाई जाप्ता की करें और जो कई गोस्वामी स्वरूपों के पास भन्डार का कुछ रुपया अमानतन जमा है वह भी जहां तक सम्भव हो जल्दी भन्डार में जमा करादे और जो जो मकानात गोस्वामियों के पास भाड़े पर है या बिना भाड़े के कब्जा में है वे छै महीना के भीतर उन मकानों को खाली करा दे यदि न करे तो पंचो को जाप्ते की कार्यवाई करने का अधिकार होगा और आगे से किसी गोस्वामी स्वरूप को कोई मकानात भाडे पर या विना भाडे नही दिया जायगा।

५—जो जायदाद नीचे लिखी है उनमे कोई गोस्वामी स्वरूप किराया देकर व विना किराये दिये न रहे और न अपना दखल करें किसी खास काम विवाह, जनेऊ इत्यादि के लिये पंचो की आज्ञा से इन स्थानो में नियत समय तक अपना काम कर सकते है।

तफसील जिसकी यह है—जायदाद वाके वृन्दावन मुहल्ले श्रीराधारमणजी।

१—श्रीजी का मन्दिर नया पुराना व कारखाना व बगीची।
२—छोटा दरवाजा मय दोनो कोठरी व छत्त।
३—डोल दोनों चौक मय चबूतरा व तिवारी।
४—समाधि ।
५—बड़ा दरवाजा मय तिवारी व सहनची व छत्त।
६—रासमन्डल मय तिवारी व कोठरी।
७—नक्कारखाना मय छत्त।

इसलिये ये चन्द कलमा वतरीक इकरारनामा के लिख दिये कि सनद रहे और वक्त जरूरत के काम आवे। तहरीर तारीख ६ जनवरी सन् १६१४ ईस्वी मुताबिक मिती पौष शुक्ला १२ शुक्रवार सम्बत् १६७०, बकलम किशनप्रसाद कायस्थ वृन्दावन।

हस्ताक्षर :—

युगलचन्द्रकिशोर गोस्वामी, द: कृष्णकिशोर गोस्वामी, द: बलदेवलाल गोस्वामी, द: गोस्वामी बच्चूजी, द: गिरधारीलालजी, गोस्वामी दामोदरलालशास्त्री, बनमालीलाल गोस्वामी, बालकृष्ण गोस्वामी, मधूसूदन गोस्वामी, द: नन्हेलाल गोस्वामी, द: ब्रजरजदास गोस्वामी, द: गोस्वामी दामोदराचार्य, द: मदनमोहनजी, राधाचरण गोस्वामी, गोस्वामी कृष्णचरण, छक्कूलाल गोस्वामी, नृसिहदास गोस्वामी, द: गोस्वामी अनन्तलाल, द: विहारीलाल गोस्वामी, मानीलाल गोस्वामी, सन्तदास गोस्वामी, गोस्वामी गोपाललाल, द: घनश्यामलाल गोस्वामी, खुद।

नोट—प्रतिज्ञा पत्रों के प्रकाशन में पूर्णतः सावधानी वरती गई है तथापि मात्रिक, आक्षरिक, शाब्दिक त्रुटियां सम्भाव्य हैं।

श्रीराधिकारमण तथा श्रीभारतेन्दु हरिश्चन्द्र—

श्रीभारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने १९३० वैक्रमीय के श्रावण मास में व्रज-सुषमा सौन्दर्य तथा हिन्दोलोत्सव सन्दर्शनार्थ निजीय पारिवारिकजनों के साथ श्रीवृन्दावन यात्रा की।

ललितलतावलिवलयित रससिद्ध व्रजभूमि का अवलोकन कर कवि का हृदय रसाविष्ट हो उठा और वे इसी रसावेष्टित भाव-दशा में अग्रवाल जनों की अभीष्ट पूर्त्ति-साधन-स्वरूप इष्टदेव श्रीगोपालभट्ट प्रेम-प्रकटित श्रीराधिकारमण विग्रह के दर्शनों के लिये समुपस्थित हुये। वे इस अभिनव वनश्यामल श्रीराधिकारमण विग्रह की अनुपम रूप लावण्य माधुरी का अपलक अवलोकन कर भाव-विगलित हो नयनों से अविरल अजस्र अश्रु-धारायें प्रवाहित करने लगे।

इसी भावावेश परिवेश में उन्होंने स्वरचित पदों द्वारा श्रीराधिका-रमणदेव की—

* सुन्दर सुचिक्कन सुढार श्याम सोहै महा,
कोटि लावण्य धाम लटक निज अंग की।
कोमल चरण कौल नटवर ढोर मोर,
पोर-पोर छोरे छवि कोटिन अनंग की।
वंक गति लंकत सुअङ्क लौं तिरीछे ठाड़े,
मृदु कर लीन्हें मुद्रा वेनु के प्रसंग की।
कुण्डल श्रवन सीस चन्द्रिका नमन जै जैं,
राधिकारमनलाल ललित त्रिभंग की॥ पद ९८

पूरन सुकृत फल भट्ट श्रीगोपालजू के,
भक्त महिपालजू के संकट समन जू।
दौरे गजराज काज लाज राखी द्रोपदी की,
धार्यौ गिरिराज देव मद के दमन जू।
निज दासी दीन दुख हरन चरन चारु,
सुख के करन सदा सम्पदा भमन जू।
मुरली लकुटवारे चन्द्रिका मुकुटवारे,
दुरित हमारे दरो राधिका-रमन जू॥ पद ९९

---

* व्रजमाधुरीसार—सम्पादक-श्रीवियोगी हरि।
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग १९८० वै०, पृष्ठ ५७१-५७२।

वन्दनात्मक परिवृर्णना की, साथ ही श्रीचैतन्य सम्प्रदायानुगत मूल सिद्धान्त व्रजवधूवर्ग द्वारा समुपास्य रागानुगा सरणि को मान्यता देते हुये–

'निज दासी दीन दुख हरन चरन चारु'

रूप में स्व को गोपिका भावानुगत कल्पना का रूप दिया ।

इससे पूर्व वे अपने काव्यकलागुरु श्रीकृष्णचैतन्य गोस्वामी 'निजकवि' तथा श्रीमनोहरदास कृत 'श्रीराधारमणजू को शृङ्गार' तथा 'श्रीराधारमण-रस-सागर' की काव्यगत सुषमा सौन्दर्य सुधा सार का समास्वादन कर चुके थे । आज जैसा सुना उससे अधिक पाकर उन्होंने मन्दिर प्राङ्गण में समुप-स्थित पारिवारिक-जन तथा अभिन्न सहचर श्रीराधाचरण गोस्वामी के समक्ष प्रेममय भगवान् श्रीराधिकारमण को भजनीय देव तथा अपनेको उन्हीं का अनुगत अनन्य 'वीरवैष्णव' व्रती रूप में मानते हुये 'श्रीतदीय-समाज' स्थापना का शिव सङ्कल्प लिया ।

आपने श्रीवृन्दावन से प्रत्यावर्तित हो वाराणसी पहुँचकर 'श्रीतदीय-समाज' संस्थान स्थापना के माध्यम से उन पालनीय षोडश सूत्रीय परि-कल्पना को नियम शृङ्खला के अन्तर्गत साकार रूप दे भाद्र शुक्ला ११ बुध-वार १९३० वैक्रमीय को इसे स्वहस्त से लिपिवद्ध कर—

"हम हरिश्चन्द्र अमरवाले श्रीगोपालचन्द्र के पुत्र काशी चोखम्भा महल्ले निवासी मिती भाद्रपद शुक्ल ११ बुधवार संमत १९३० तदीय समाज के सामने परम सत्य ईश्वर को मध्यस्थ मानकर तदीय नामाङ्कित अनन्य वीरवैष्णव का पद स्वीकार करते हैं और नीचे लिखे हुए नियमों का आजन्म मानना स्वीकार करते हैं ।"

* १–हम केवल परम प्रेममय भगवान श्रीराधिकारमणजी का भजन करेंगे ।

अपने अनुगत जनों को उसके परिपालन का दिशा निर्देशन दिया ।

वृन्दावन पावन की प्रीति रीति पावन की,
गोठ ग्वाल ग्वालिनि की गैल को बतावतो ।
गावतो न कोऊ राधा रूप रावरी के राग,
व्रज रस माधुरी को स्वाद को चखावतो ।
पावतो न कोऊ नेह सिन्धु की अथाह थाह,
भक्ति भावना को भला भेद को जतावतो ।
छावतो अंधारो चहुँ ओर वासना को घोर,
'गौर' अवतार धारि जग में न आवतो ।।

—गौरकृष्ण

---

* नवभारत टाइम्स नई दिल्ली ६ जनवरी १९८५ से साभार

कण्ठी तिलक तत्त्व

★

वैष्णव सम्प्रदाय में कण्ठी, तिलक धारण का सदा ही महत्वपूर्ण स्थान रहा है। माध्वगौडेश्वर सम्प्रदाय में कण्ठलग्न तुलसी तथा ललाट पटल पर उर्ध्व पुण्ड्र तिलक का विशेष विधान है। वास्तव में यही तिलक मालाङ्कित वैष्णवगण समस्त भुवन को अपनी अचिन्त्य शक्ति से पवित्र करने की सामर्थ्य रखते हैं।

तुलसी अनेक शारीरिक व्याधियों का नाश करती है साथ ही अपनी वैद्युतीय कृपा शक्ति से भगवत सान्निध्य प्रदान कराती है। पुराणों में उर्ध्व-पुण्ड्र रचना को विशेष महत्व दिया गया है।

माध्वगौडेश्वर सम्प्रदाय में पार्थिवादि पञ्चभूतात्मक तत्त्व, श्रीनित्यानन्दादि तथा श्रीमन्महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवानुमोदित—

ईश्वर, जीव, माया, काल, कर्मस्वरूप पञ्चतत्त्व जिनमें ईश्वर अचिन्त्य सर्वस्वतन्त्र सच्चिदानन्द घन तत्त्व तथा जीव ईश्वर का अणु-स्वरूप तथा काल, कर्म, माया सदैव जड़ स्वरूप है, इसी तत्त्व चिन्तन को सदैव स्मरण पथ पर रखने के कारण उद्‌र्ध्वपुण्ड्र की रचना निर्दिष्ट की गई है।

वैष्णवता का प्रामाणिक प्रधान चिह्न तिलक उद्‌र्ध्व और अधोगति स्वरूप है। इसी को साकार रूप देने के लिये उद्‌र्ध्वपुण्ड्र की कल्पना है। जीव और ईश्वर का पृथकत्व प्रतिपादन के लिये दो भिन्न-भिन्न रेखायें हैं। काल, कर्म, माया का निम्न स्थान है अतः इसकी त्रिकोण में स्थिति है।

काल जड़ होने पर भी उसमें ईश्वरत्त्व है अतः वह त्रिकोण रेखा से संलग्न है। माया काल और कर्म से सूक्ष्म है अतः वह सूक्ष्मांश से नासाग्र की और अवस्थित है। योगीगण भी नासाग्र-मूल का अभिचिन्तन कर ध्यानाव स्थित होते हैं अतः इस क्रिया में प्राण के सञ्चरण स्थान नासिका पर ही त्रिकोण की स्थिति निर्दिष्ट की गई है।

ईश्बर एवं जीव चैतन्य ज्ञानस्वरूप है। काल, कर्म, माया जीव, का सांसारिक लेप है अतः यह त्रिकोण में लिप्त रहता है, जब कि ईश्बर सारूप्य ज्ञानमय चेतनत्त्व के कारण निर्लेप है अर्थात् पृथक् स्वरूप है। ज्ञान जड़तत्त्व की और जितना आगे बढ़ता है उतना ही संकुचित और जितना पृथक् होता उतना ही प्रशस्त होता जाता है अतः ईश्वर जीव का पृथकत्त्व निर्देश कराने वाली दो उद्ध्र्वपुण्ड्र रेखायें जड़तत्त्व के समीप संकुचित और स्व स्वरूप में प्रशस्त रहती है।

उद्ध्र्वपुण्ड्र विहीन व्यक्तिकी सम्पूर्ण भजन जपादि क्रियायें निष्फल होती हैं। आचार्योंने अपनी साम्प्रदायिक सिद्धान्त प्रणालीके अनुसार उद्ध्र्वपुण्ड्रको हरि मन्दिर "की संज्ञा दी है" जहाँ रसराज महाभावस्वरूपा श्रीराधा के साथ साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण विराजते हैं।

शरीर के द्वादश भागों पर भगवन् नामोल्लेख के साथ तिलक रचना द्वादश मास एवं द्वादश राशियों को उपलक्षित कर उसीके पवित्रीकरण का एक महत्त्व पूर्ण अङ्ग है। यद्यपि गोपीचन्दन से तिलक रचना का विधान है तथापि विविध सिद्धियों की प्राप्ति के लिये केशर आदि अन्य पदार्थों से भी तिलक रचना की जाती है।

अपने हाथ से घिसा चन्दन बिना भगवन्निवेदन के लगाना सर्वथा निषिद्ध है।

श्रीचैतन्यदेव ने श्रीराधाकुण्ड दर्शन के समय उसके आर्द्र रजः कणों

को मस्तक पर लेप किया था इस कारण गौडीय सम्प्रदायानुयायी वैष्णव श्रीकुण्ड मृत्तिका का तिलक धारण करते हैं।

माध्वमतानुयायी भगवान् के निवेदित धूप शेष से ललाट के मध्य-भागमें श्याम विन्दु तथा एक उद्ध्वं रेखा युक्त तिलक जीव अणु विन्दु तथा ईश्वर वृहत् अर्थात् उद्ध्वं रेखा स्वरूप है इस भावना से धारण करते हैं। ※

आवश्यक निर्देश—

१— श्रीवृन्दावनस्थ सर्वश्री सनातन, गोपालभट्ट, लोकनाथ, रूप, दामोदर दास जीव एवं श्रीगोपीनाथदास गोस्वामियों की निकुञ्ज वासतिथियों पर श्रीजी तथा श्रीप्रियाजी के भोग पश्चात् पृथक् पात्र में कुछ भोग सामिग्री निकाल कर शेष प्रसाद श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी को निवेदन किया जाता है। श्रृङ्गार आरती समाधान के पश्चात् निकाले हुये श्रीजी तथा श्रीप्रियाजी की प्रसादी भोग सामिग्री से उपर्युक्त समाधियों के पूजन का विधान है।

एतादृशी प्रक्रिया ६४ महन्तों के भोग जो श्रीगोस्वामीवर्ग से सम्वन्धित हो की जायगी किन्तु यह प्रक्रिया अन्य किसी के भोग तथा समाधि पूजनमें प्रयुक्त नहीं होगी।

२— यद्यपि शास्त्रों में सूर्य तथा चन्द्र ग्रहण में सूतक विधान आरम्भ काल से चार तथा तीन प्रहर का निर्दिष्ट किया है किन्तु हमारे यहाँ श्रीजी की सेवा सौकार्य सम्पन्नता साधनार्थ यह आरम्भ काल से न लेकर मोक्ष काल से ही प्रहरीप गणना की गई है।

इस ग्रहणकाल में मन्दिर तथा रसोई में प्रवेश निषिद्ध है। ग्रहण के पूर्व

अनसखड़ी तथा प्रसादी पदार्थों में कुश निक्षेप आवश्यक है। मोक्षो-परान्त सेवा सम्वन्धित जन स्नान एवं यज्ञोपवीत धारण कर सेवा कार्य सम्पादन करेंगे। नवीन यमुना जल से ही श्रीजी की स्नानादि सेवा सम्पादित होगी। पात्र शुद्धि एवं मन्दिर रसोई परिमार्जन पश्चात् ही कार्यारम्भ किया जायगा। प्रात: कालीन उपरागोपरान्त मङ्गला सेवा पश्चात् तथा सान्ध्यकालीन उत्थापन के पूर्व श्रीजी का पञ्चामृत से घन्टादि वाद्य द्वारा अभिषेक विधि सम्पन्न होगी उसके पश्चात् ही शेष सेवा विधि प्रारम्भ की जायगी।

३—श्रीजी की पूजन तथा भोग निवेदन विधि तुलसी निक्षेप, अष्टादशाक्षर गोपल मन्त्रजप तथा गोस्तन एवं कच्छपिका मुद्रा प्रदर्शन के पश्चात् की जायगी।
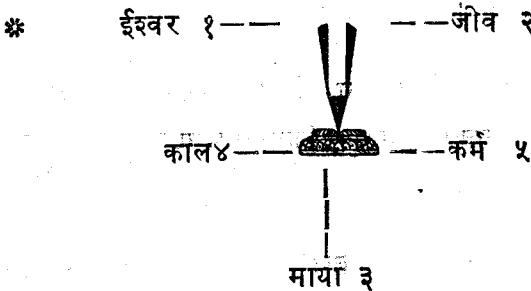
* नाम सेवा *

श्रीमन्माध्वगौडेश्वर सम्प्रदाय के तीन श्रीगोविन्द, श्रीगोपीनाथ, श्रीमदनमोहन विग्रहों की सम्प्राप्ति तथा प्रतिष्ठापना एकाकी विग्रह के रूप में हुई थी अत: इनका समाराधन भी एकाकी विग्रह के रूप में होता था।

वर्षों बाद श्रीविग्रहों का स्वप्नादेश प्राप्त कर उडीसा नरेश श्रीप्रताप-रुद्र के पुत्र श्रीपुरुषोत्तम जानाने तीन श्रीराधा प्रतिमायें निर्माण कराकर श्रीविग्रहों के पार्श्व में प्रतिष्ठापनार्थ श्रीवृन्दावन प्रेषित की और यहाँ अत्यन्त समारोह के साथ श्रीराधा प्रतिमायें श्रीगोविन्द, श्रीगोपीनाथ तथा श्रीमदन-मोहन विग्रह के वाम पार्श्व में विराजित की गई। उसी समय से इन विग्रहों का नाम श्रीराधागोविन्द, श्रीराधागोपीनाथ, श्रीराधामदनमोहन कहा जाने लगा।

श्रीकृष्ण विग्रहों के आकार प्राकार ज्ञात न होने से ये प्रतिमायें अपेक्षाकृत बहुत छोटी थी। इधर श्रीमन्नित्यानन्दपाद की गृहिणी श्रीजाह्नवा ईश्वरी जी श्रीवृन्दावन आकर उपर्युक्त श्रीविग्रहों के दर्शनों को गई और वहाँ पहुँचकर उन्हें भी यह कमी ज्ञात हुई, स्वप्न में भी श्रीविग्रहों द्वारा इस कमी ओर उनका ध्यान दिलाया गया। शक्ति-सम्पन्ना नारी के रूप में उन्होंने इस कमीके वास्तविक रूप को समझा परन्तु प्रतिष्ठित मूर्त्तियां हटाई नहीं जा सकती थी अत: उन्हें ललिता सखी के रूप में पार्श्वस्थ विराजमान की आज्ञा दी तथा शीघ्र ही दूसरी श्रीराधा प्रतिमायें निर्माण करा कर शीघ्र वृन्दावन भिजवाने का भार अपने ऊपर लिया।

वे रासस्थली विराजित स्वयम्भू श्रीराधारमण विग्रह के दर्शनों को भी गई किन्तु वहाँ उन्हें श्रीराधा विग्रह के स्थान पर सम्पुटित श्रीराधा नाम सेवा के दर्शन प्राप्त हुये। दर्शनों के पश्चात् उन्होंने श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी से श्रीराधा मूर्त्ति प्रतिष्ठापना के लिये कहा और इनके लिये भी पृथक् श्रीराधा प्रतिमा निर्माण करा कर भिजवाने की व्यवस्था का भार अपने ऊपर लिया।

यद्यपि शास्त्रों में—

गौरतेजो विना यस्तु श्यामतेजः समर्चयेत् ।
जपेद्वा ध्यायते वापि स भवेत् पातकी शिवे ! ॥
तस्मात् ज्योतिरभूद्वेधा राधामाधवरूपकम् ।

(सम्मोहनतन्त्र)

गौरतेज के विना श्याम तेज का समाराधन सर्वथा निषिद्ध है यह श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी भली भाँति जानते थे किन्तु यहाँ स्वयं श्रीराधा-द्युति सम्वलित श्रीगौर ही नव घनश्यामल श्रीराधारमण विग्रह रूप में अवतरित हुये हैं सुतरां श्रीराधारमण विग्रह में स्वभावतः गौर तेज का समावेश है। द्वितीय श्रीराधारमण विग्रह के नाम के आगे श्रीराधा शब्द है ही पुनः श्रीराधा विग्रह की प्रतिष्ठापना के पश्चात् पुनः एक और राधा का नाम आगे रखना समुचित प्रतीत नहीं होता।

तृतीय श्रीराधारमण विग्रह का प्रादुर्भाव शालग्राम से स्वयं प्रकटित रूप में हुआ है तब इनके पार्श्व में पुनः प्रतिष्ठित श्रीराधा विग्रह की स्थापना-सङ्गत प्रतीत नहीं होती।

चतुर्थ श्रीमन्महाप्रभु चैतन्यदेव ने—

"श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलम्"

श्रीमद्भागवत को आप्त प्रमाण माना है, उसमें भगवन्नित्याह्लादिनी

शक्ति सौन्दर्यसीम रस सार स्वेष्ट आराध्य परम गोप्य निधि श्रीराधा का नामोल्लेख श्रीशुकदेव द्वारा प्रकट रूप से नहीं किया गया है। यहाँ तक* कहा गया है कि श्रीराधा नाम उच्चारण मात्रसे ही उन्हें षाण्मासिकी मूर्च्छा हो जाती थी।

"अनया राधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः"

(श्रीमद्भागवत १०-३०-२८)

की टीका में श्रीसनातनगोस्वामीपाद ने श्रीराधा नाम को—

'राधयति आराधयतीति श्रीराधेतिनामकरणञ्चदर्शितम्'

सम्पुटित रूप में ही प्रदर्शित किया है।

यह अन्तर्द्धान लीला श्रीराधारमण प्राकटच-स्थली में ही सम्पन्न हुई थी और वहाँ ही श्रीकृष्ण श्रीराधा को—

'राधामाधाय हृदये तत्याज व्रजसुन्दरीः'

अपने सम्पुटित हृदय में बिठाकर ही अन्तर्हित हुये थे इसी भावना को दृष्टिकोण में रखकर श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी द्वारा स्वयं प्रकटित श्रीराधारमण विग्रह के वाम पार्श्व में सम्पुटित श्रीराधा विग्रहरूपा 'श्रीराधा" नाम सेवा की प्रतिष्ठापना की गई।

इधर श्रीजाह्नवादेवी के आदेश से श्रीनिवास आचार्य ने श्रीभास्कर द्वारा श्रीराधामूर्त्ति निर्माण कराकर श्रीराधारमण विग्रह के पार्श्व में प्रतिष्ठापना के लिये वृन्दावन प्रेषित की।

प्रेषित श्रीराधा मूर्त्तिको देखकर श्रीगोपालभट्टगोस्वामी विशेषतः चिन्तित हो उठे। इधर श्रीजाह्नवादेवी के आदेश की अवमानना महत्तम अपराध है उधर उनके सङ्कल्पित हार्द सिद्धान्त का हनन। क्या किया जाय कुछ समझ में नहीं आ रहा है। सम्पूर्ण निशा इसी ऊहापोह में उनकी व्यतीत हुई। प्रातः तनिकसी तन्द्रा हुई उस अवस्था में वे देखते है कि स्वयं श्रीराधारमण इनसे कह रहे हैं—

---

* परम धन राधा नाम अधार।
जाहि श्याम मुरली में टेरत सुमिरत बारम्बार॥
श्रीशुक प्रकट कियो नहीं जाते जान सार को सार।

"गोपालभट्ट" श्रीराधाजू की मूर्त्ति जो आई हैं वू मूर्त्ति मोते बड़ी है। तैनें देखी नाय का ? बताओ ये मोपै कैसे संभरेगी। कहूँ द्वै राधा हूँ भई हैं जो तुम इन्हें मेरे ढिग बैठाओगे। बताओ इन मेरी पासवारी प्यारी जूकूँ कहाँ विड़ारोगे ? विरथा की बात छोडो। प्रकृत विषय अवलम्वन करो। ये साक्षात् योगमायाशक्ति वङ्गाल ते आई हैं। ये व्रजकी शक्ति नाय जो तुम इन्हें यहाँ सजाय के राखोगे। इन्हें मैं अपनो आदेश प्रकाश दऊँ ताते तुम इन्हें अभाल आदर करि भोग धराय दामोदर के हाथन उनके पूर्वजनके स्थान "गौडग्राम' (गुडगाँव) भेज देओ। वहाँ ये मेरे आदेश प्रकाश से पूजित होवेंगी और भविष्य में हमारे पारिवारिकजनों की आराध्यदेवी के रूप में मानी जावेंगी यह मेरी आज्ञा है। जामें संशय मत राखो। तुम्हें आज्ञा अवमानना को कछु दोष नाय लगेगो।

इसीप्रकार का स्वप्नादेश आपने श्रीजाह्नवादेवी और श्रीनिवास को जाकर भी दिया श्रीगोपालभट्ट की स्वप्न निद्रा भङ्ग हुई। उन्होंने तुरन्त श्रीदामोदरगोस्वामी को बुलाकर श्रीराधास्वरूपा योगमाया को जलमार्ग से (गुडगाँव) भेजने की व्यवस्था की।

इधर श्रीदामोदरदास गोस्वामी ने जलमार्ग से ब्रजवासियों के सहित दिल्ली होते हुये राजपथ से गुडगाँव के समीप * एक ग्राम में पड़ाव किया दूसरे दिन आप गुड़गाँव पहुँचे और वहाँ के प्रमुख गौड ब्राह्मणों को बुलाकर उन्हें यह × योगमाया प्रतिमा पूजनार्थ समर्पित की। उसी समय से यहाँ यह 'गौडीदेवी' के रूप में पूजित होती आ रही हैं।

---

* इसी कारण इस ग्राम का नाम 'व्रजवासन' पड़ा है।

× आज भी श्रीराधारमणीय गोस्वामी परिवार में इन "गौडीदेवी" की जात (यात्रा) के रूप में मानता (मान्यता) चली आ रही है। पूर्व-काल में पारिवारिक बालकों के मुण्डन इन देवी के सामने ही नव दुर्गा पर होते थे किन्तु अब समयानुसार श्रीजी के सन्मुख मन्दिर प्राङ्गण में यह विधि सम्पन्न होती हैं।

॥ श्रीगौरकृष्णोजयति ॥

सेवा में,

श्रीमान् मन्त्री महोदय !

श्रीराधारमण मन्दिर पंचायत कार्यालय
श्रीवृन्दावन

मान्यवर महोदय !

सविनय निवेदन है कि श्रीगौडीय सम्प्रदाय के प्रारम्भ काल से ही श्रीश्री राधारमणजी के सान्निध्य में कलियुग पावनावतार श्रीश्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु की पट्टा, डोर, कौपीन की, जोकि उन्होंने श्रीश्रीगोपालभट्ट गोस्वामीपाद को 'कृपा पूर्वक प्रदान की थी विधिवत् सेवा होती आ रही है। श्रीमन्महाप्रभु के व्यवहृत कन्था-कमण्डलु के दर्शन का सौभाग्य श्रीजगन्नाथपुरी में सभी श्रद्धालु दर्शनार्थियों को प्राप्त है किन्तु श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी के लिये प्रदत्त इस दुर्लभ वस्तु के दर्शन से सभी वञ्चित हैं।

अत: सानुरोध प्रार्थना है कि उक्त दिव्य वस्तु का दर्शन जिससे सम्प्रदाय के सभी श्रद्धालु व्यक्तियों को प्राप्त हो सके तदर्थ यह प्रस्ताव सेवा में सविनय प्रस्तुत किया जा रहा है। हमने यह सुना है कि श्रीराधारमण प्राकट्य मन्दिर (डोल) का हाल ही में जीर्णोद्धार हो रहा है। उक्त स्थान से ही श्रीश्रीराधारमणजी का प्रादुर्भाव तथा श्रीगोस्वामीपाद को उक्त दिव्य मंगल वस्तु की प्राप्ति हुई, जोकि श्रीनीलाचल से उनके लिये भेजी गई थी। अत: इस प्रसङ्ग में यह निवेदन करना सम्भवत: अप्रासङ्गिक न होगा कि इसी प्राचीन-स्थली में उक्त दिव्य वस्तु के दर्शन का सभी को सौभाग्य प्राप्त हो।

आशा है हमारी इस विनीत प्रार्थना पर सहृदयतापूर्वक विचार कर इसे कार्यान्वित करने की अनुज्ञा प्रदान कर अनुगृहीत करेंगे। इस कृपा के लिये सम्प्रदाय चिर आभारी रहेगी।

विशेष द्रष्टव्य—उक्त विषय में कृत सहृदय निर्णय की सूचना श्रीगौडेश्वर सम्मिलनी के मंत्री श्रीपरमेश्वरदास जी, पीपलवालीकुंज केशीघाट को प्रदान करने का अनुग्रह करें।

श्रीवृन्दावन धाम

दिनाङ्क २-५-६५ ई०

विनीत :

श्रीगौराङ्गदास

भूतपूर्व महन्त श्रीराधाकुण्ड

श्यामानन्द, राधाकृष्णदास, माधवदास, श्रीभजगौराङ्गदास, श्रीविहारी सन्तदास, श्रीसुवलदास, वैष्णवदास, श्रीब्रजकिशोरदास, श्रीदयालदास, श्रीमाधवदास, प्रह्लाददास, श्रीसखीचरणदास, हरिदासदास, राधाकृष्णदास, (बरसाना) श्रीनन्दलालदास

आनन्दकिशोरदेव गोस्वामी, भवेशचन्द्रदेव गोस्वामी, श्रीरासबिहारीदास, श्रीहृदयानन्ददास, अधिकारी श्रीश्रीधरचन्द्रदास शास्त्री, श्रीप्रेमानन्द शास्त्री, कृष्णदास भक्तितीर्थ, नृसिंहवल्लभ गोस्वामी, रामदास शास्त्री, श्रीभगवतदास, (राधाकुण्ड) श्रीराधाचरणदास श्रीनरोत्तमदास, (राधाकुण्ड) श्रीअनन्तदास, श्रीराधावल्लभदास, (सूर्यकुण्ड) श्रीनन्नूमलशर्मा (हाथरस) सोहनलाल, (हाथरस) कृष्णप्रसाददास, सियाराम पागल, राधेश्याम भानिया, रामदास, श्रीप्यारीमोहनदास, मदनगोपालदास, श्रीकृष्णचैतन्यदास, विश्वम्भरदास, श्रीनागा सरकारी मोनीबाबा, श्रीहरिवल्लभदास: श्रीगुरुचरणदास, श्रीकृष्णदास ह० अपठित।

स्वीकृत :

दिनाङ्क ८-५-६५ की पंचायत में उपस्थिति

शचीकुमार गोस्वामी सभापति

(मुद्रा)

पंचायत मन्दिर श्रीराधारमणजी, वृन्दावन

एकादशी-व्रतनिर्णय

★

चतुः साम्प्रदायिक वैष्णवों की आवश्यक कर्त्तव्यता में एकादशी का महत्त्वपूर्ण स्थान है, इसे ही श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी विरचित भगवद्भक्ति - विलास स्मृति के एकादशी निर्णय प्रकरण में इसकी महत्ता का दिग्दर्शन कराते हुये १-एकादशी व्रत के दिन अन्नसेवी-जनकी किसी भी प्रकार निष्कृति नहीं है २-और न किसी भी अशौचादि अवस्था में व्रत त्याज्य है न ३-इस दिन नैमित्तिक श्राद्ध ही विधेय है का विशद रूप से परिवर्णन किया है।

वेध :—

दशमी तिथी के साथ यदि मुहूर्तमात्र भी एकादशी का स्पर्श हो जाता है यही वेध है अतः दशमी विद्धा एकादशी का व्रत नहीं करना चाहिये।

शास्त्रों में ४ तिथी एवं ४ नक्षत्रप्रयुक्ता द्वादशी अत्यन्त पवित्र एवं पाप-नाशिनी कही गई हैं अतः द्वादशी में ही व्रत कर्त्तव्य है।

१-उन्मीलिनी :— अरुणोदयप्रवृत्ता सम्पूर्ण एकादशी परदिन प्रातः द्वादशी में वृद्धि को प्राप्त हो किन्तु द्वादशी की किसी भी दशा में वृद्धि न हो।

२-वञ्जुली :— शुक्ल अथवा कृष्णपक्षीया एकादशी की वृद्धि न होकर द्वादशी की वृद्धि अर्थात् एकादशी सम्पूर्ण और परदिन द्वादशी सम्पूर्ण एवं त्रयोदशी में प्रातः मुहूर्त्तार्द्ध द्वादशी, इसमें परदिन द्वादशी मध्य में ही पारण कर्त्तव्य है।

३–त्रिस्पृशा :—अरुणोदय में एकादशी, सम्पूर्ण दिनरात्रि में द्वादशी एवं परदिन प्रभात में त्रयोदशी किन्तु किसी भी दशा में दशमीयुक्त नहीं।

४–पक्षवर्द्धिनी :—अमावास्या अथवा पूर्णिमा की वृद्धि अर्थात् षष्ठिदण्डात्मिका अमावस्या अथवा पूर्णिमा एवं परदिन प्रतिपदामें भी किंचित् परिलक्षित हो।

५–८–पुष्य श्रवण, पुनर्वसु, रोहिणी नक्षत्रयुक्ता द्वादशी जया, विजया, जयन्ती, पापनाशिनी नाम से विख्यात हैं।

विष्णुशृङ्खल :—(१) तिथीक्षय होने के कारण श्रवणनक्षत्रस्पृष्ट द्वादशी जब एकादशी को स्पर्श करती है।

(२) एकादशी एवं श्रवण नक्षत्र का एक साथ होना।

देवदुन्दुभि :—

द्वादशी, एकादशी, श्रवण एवं बुधवार का एक साथ होना।

---

१ निष्कृतिः धर्मशास्त्रोक्ता नैकादश्यान्नभोजिनः।
(विष्णुधर्मोत्तर १२।१६)

२ सूतके मृतके चैव न त्याज्यं द्वादशीव्रतम्।
(पाद्म-पुष्कर-खण्ड १।२८)

३ एकादश्यां यदा राम ! श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत्।
तद्दिनं तु परित्यज्य द्वादश्यां श्राद्धमाचरेत्॥
(विष्णुरहस्य १२।२७)

* श्रीराधारमणोजयति *

प्रतिज्ञापत्र १९४१

आगे श्रीगोस्वामी श्रीगोपालभट्टजी महाराज के समय से अबपर्य्यन्त हम सब गोस्वामिस्वरूप श्रीश्रीराधारमणजी महाराज की सेवा अपने अपने अवसर में अपनी अपनी द्रव्य से करते आयें हैं, अब हमारे धार्मिक शिष्य काशी, पटना, मिर्जापुर, प्रयाग, कानपुर, फरक्कावाद्र, जालन्धर, भरतपुर आदि अनेक नगर निवासीन ने चिट्ठा करके श्रीजी की सेवा को वन्धान कर दियो है, सो हम सबने अत्यन्त आनन्द से स्वीकार कियो, अब जामें यह प्रवन्ध अत्यन्त दृढ़ता से चलो जाय, याके लिए यह दृढ़ प्रतिज्ञा करी जाय है कि प्रतिज्ञा पत्र रजिस्तरी मिती फाल्गुन शुक्ला १ संवत् १९३६ के अनुसार श्रीजी के मन्दिर के सब काम काज के समाधान, तथा भोगराग के प्रबन्ध के लिये जो एक पञ्चायत दस गोस्वामी स्वरूपन की नियत भई है, वह सदैव नियत रहैगी। वा पञ्चायत में कभी कोई वाधा न होगी। कदाचित् पञ्चायत के कोई पञ्च जब कभी अन्तर्धान होयगे, तो शेष पञ्च अन्तहित पञ्च के कुटुम्ब में से, वा और कोई योग्य पुरुष कू हम सब की सम्मति से पञ्च नियत करेंगे। पञ्च जो श्री वृन्दावन में रहैं, वे प्रति सप्ताह श्रीजी के मन्दिर में पञ्चायत करें और वामें मन्दर के सब काम काज की निर्णय तथा समाधान मधुर वाक्य से करें। पञ्चायत में जो निर्णय, वा सिद्धान्त होयगो, वह पुस्तक में तत्काल लिख दियो जायगो, और वामें पञ्चन के हस्ताक्षर होंगे। पञ्च लोग यदि च श्रीजी सम्बन्धी सभी काम काज करेंगे, और उनके सदसत् के उत्तर दाता है, तथापि इन कामन में इनकी विशेष दृष्टि रहैगी। पञ्च लोग श्रीजी की भोग सामिग्री उत्तम हैं या नहीं देखेंगे...और...सामग्री हो वाको प्रबन्ध करेंगे जो टहलुआ... आदि अपने अपने काम अच्छी तरह से न करेंगे, अथवा असमञ्जस करेंगे, पञ्च लोग उन्हें दण्ड देने और निकाल देने के अधिकारी हैं। पञ्च लोग श्रीजी के भोगराग के नकशा, और हिसाब की बही प्रत्येक पञ्चायत में देखेंगे और हिसाब समझेंगे। पञ्च लोग श्रीजी के स्थान, दुकान, तथा जमीन, ग्राम आदि के यावत् प्रबन्ध करेंगे। उनमें भाडैती, जोता, वा नौकर रक्खेंगे, और उनके वा औरन के ऊपर दीवानी, फौजदारी, माल, वा लोकल गवर्न्मेन्ट, वा गवर्नमेन्ट आफ् इण्डिया, वा देसी राज्य पर्य्यन्त

नालिश अपने नाम से और आप कर सकेंगे। विशेषतः सब प्रकार की दस्तावेज भी पञ्च की हैसियत से अपने नाम लिखाय सकेंगे। और कर्ज भी सबसे वसूल करके भण्डार में जमा कर सकेंगे। पर कोई वस्तु उनकी निजकी नहीं समझी जायगी, क्योंकि सब देव द्रव्य हैं, पञ्चायत में सदैव कसरत राय अर्थात् जा पक्ष में बहुत पञ्च की सम्मति होय, वही सिद्धान्त होयगो। यदि दोनों ओर बरोबर सन्मति होय, तो श्रीजी के आगे चिट्ठी डाल करके निष्पत्ति होयगी। विशेष गोस्वामी स्वरूपन की पञ्चायत की आज्ञाकारिणी एक पञ्चायत दस सेवकन की रहैगी, सेवक लोग जब श्री वृन्दावन में आयें, तब मन्दिर को सब विषय देखें, और उचित अनुमति प्रदाम करें और यदि न आवेंगे, तो प्रतिवर्ष उनके पास मन्दिर को सब हिसाब और वृत्तान्त लिख भेजो जायगो। और वह अपनी अपनी अनुमति लिख सकेंगे। गोस्वामी स्वरूप जो कोई अन्याय वा अप्रबन्ध मन्दिर में देखें, वह पहिले पञ्चायत में आयकर के वर्णन करें। पञ्च लोग वाको प्रतिविधान करेंगे और कोई गोस्वामीस्वरूपन कू यह अधिकार नहीं हैं कि पंचन""के मन्दिर के प्रबन्ध कू बिना पञ्चन की आज्ञा के भ्रष्ट कर दे।

यह पत्र परदेश वासी गुसांई स्वरूप, तथा वर्त्तमान वा भविष्य गोस्वामि वंशावलीकू भी मान्य होयगो। और आवश्यक होने से याके नियम बदले जाय सकेंगे। परन्तु जो याके नियम मानने में, अथवा पंचन की रीति मानने में जो भोग राग के विषय वा अन्य मन्दिर के कार्य्य के विषय हो, उपद्रव करेंगे, तो उनको वन्धान जो श्रीजी के भण्डार से उन की सेवा में मिलैगो, बन्द करके दूसरे सेवावाले की सेवा में प्रथम दिन दे दियो जायगो। और वाही दिन सब भोग लग करके बट जायगो।

आज ही यह प्रतिज्ञा भी करी गई कि श्रीजी को स्थान कोई गोस्वामी स्वरूपभाड़े पै न लेंय, एक मास पर्य्यन्त बिना भाड़े ही बर्त्त सकेंगे। मास से अधिक कोई कू न मिलैगो परम आवश्यक होने पर स्थान दियो जायगो।

नाम पंच गोस्वामी	**नाम पंच गोस्वामी**
१. श्री तोतारामजी महाराज	६. श्री नारायणदासजी म०
२. श्री गोपीलालजी महाराज	७. श्री सुन्दरलालजी म०
३. श्री कल्लूलालजी महाराज	८. श्री सोहन लालजी म०
४. श्री गल्लूजी महाराज	९. श्री राधारमणदासजी म०
५. श्री कृष्णदासजी महाराज	१०. श्री बलदेवलाल जी म०

नाम सेवक पंच

१. श्री बाबू माधवजी-काशी
२. राय नृसिंहदासजी-काशी
३. राय जयकृष्णजी-पटना
४. बा० ईश्वरीप्रसादजी-पटना
५. बा० विन्ध्येश्वरीप्रसादजी-मिर्जापुर

नाम सेवक पंच

६. बा० मधुसूदनदासजी-काशी
७. बा० रामगोपालजी-कानपुर
८. साहु कृपादयालुजी-लखनऊ
९. साह माधुरीशरणजी-वृन्दावन
१०. बा० नानकराम बाबा-बुर्हानपुर

ह० श्रीगोस्वामि गोपीलालशर्म्मणाम्
ह० गो० गल्लूजीवस्य
दसखत तोताराम के
ह० गो श्रीबलदेवलालशर्मणाम्
श्री गो० नारायणदासजी दसखत
द: श्रीनन्हेलालजी के
द: श्रीदासीलालजी के
हस्ताक्षर श्रीसुन्दरलालजी
ह०गोस्वामि श्रचन्द्रकिशोर शर्म्मण:
गो० श्रीकृष्णदासजी दसखत
संवती राधारमणदासजी
श्रीकल्लुलालजी
गो० श्रीछंगीलालजी दसखत
दसकत गुसाई मुरलीधरजी के
दसकत गो० राधाचरणदास के

द: ललीताचरणजी के
श्री गो० गोपीचरन के दसकत
श्री गो० गोपाल
श्री गो० नारायणदासजी
द: सोहनलालजी व छकूलालजी
मकसूदनलाल वकल
दसषत चिमनलाल के
श्रीछोटेलालजी
संमतिरत्र श्रीरंगीलालजी शर्म्मण:
द: गोस्वामि मंगनुलालजी
द: गोस्वामि गीरधरलालजी के
दसकत श्रीराधामोहनगोस्वामी के
हस्ताक्षर शोभन गोस्वामी शर्म्मणाम्
हस्ताक्षराणि राधाचरणदासगोस्वामिनः
कृताक्षरोऽत्र मधुसूदनगोस्वामी

प्रस्फुटित पद्य प्रसून

राधारमणसुन्दरः । —गोपाल सहस्रनाम

दामोदरं प्रपद्येऽहं श्रीराधारमणं प्रभुम् । —भगवद्भक्तिविलास १६।१

भक्तिर्या निखिलार्थवर्गजननी या ब्रह्मसाक्षात्कृते-
रानन्दातिशयप्रदा विजयतात् सौख्यात् विमुक्तिर्यया ।
श्रीराधारमणं पदाम्बुजयुगं यस्याः महानाश्रयः,
या कार्या व्रजलोकवत् गुरुतरप्रेम्णैव तस्यै नमः ।।
—बृहद्भागवतामृत दिग्दर्शिनी

नन्दभवन को भूषण माई ।
काल को काल ईस ईसन को राधारमण सकल सुखदाई ।। —नन्ददास

'व्यास' राधिकारवन भवन विनु तेई क्यों पहिचानवे ।—श्रीहरिराम व्यास

सरवस राधारमन भट्टगोपाल उजागर । —भक्तमाल

राधारमण रमणि मनमोहन वृन्दावन अधिदेवा ।

राधारमण शरण सुखदायक शालग्राम श्यामतनधारी ।
—वृन्दावन दर्शन, श्रीकृष्णदास

भव्यं भजामि भजनीयपदारविन्दं सद्भक्तसेव्यनिजभावविभावरूपम् ।
श्रीराधिकारमणमालिगणैरुपेतं वृन्दावनेश्वरमुदारमशेषसेव्यम् ।।
—प्रातःस्मरणीय पद्य

राधारमणपदाम्बुज मधुरिमसिन्धोरनन्तपारस्य ।
अनुभवितैकः सः परं वृन्दारण्यं भजेत योऽन्यः ।।
—श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती, श्रीवृन्दावनमहिमामृत ७।८६

वृन्दावनवासिन को विपिनविलासिन को,
वेद विधि वादिन को आगम अगम है ।
प्रकट प्रकाशन को पुण्य पाकशासन को,
पाप ताप नाशन को पूरन परम है ।।
'गौर' अपरूप रूप रास रस राशिन को,
रसिक उपासिन को साधन सुगम है ।
हृदय हुलासिन को हार हरिदासिन को,
हेम घनश्याम राधारमण प्रथम है ।।
—गौरकृष्ण

—: ★ :—